जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क ३१

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति में आयोजित]

श्रुतस्थविरप्रणीत-उपाङ्गसूत्र

जीवाजीवाभिगमसूत्र

[मूलपाठ, प्रस्तावना, अर्थ, विवेचन तथा परिशिष्ट आदि युक्त]

[द्वितीय खण्ड]

प्रेरणा
(स्व.) उपप्रवर्तक शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

आद्य संयोजक तथा प्रधान सम्पादक
(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

सम्पादन
श्री राजेन्द्रमुनिजी
एम. ए., साहित्यमहोपाध्याय

प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क ३१

☐ निर्देशन
साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रथम संस्करण
वीर निर्वाण सं० २५१७
विक्रम सं० २०४८
नवम्बर १९९१ ई०

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति
श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन,
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
पिन—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य : [illegible] 60/-

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

JĪVĀJĪVĀBHIGAMA SŪTRA

[Original Text, Hindi Version, Introduction and Appendices etc.]

[PART II]

☐
Inspiring Soul
(Late) Up-pravartaka Shasansevi Rev. Swami Shri Brijlalji Maharaj

☐
Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

☐
Editor
Shri Rajendra Muni
M. A., Sahityamahopadhyay

☐
Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

Jinagam Granthmala Publication No. 31

- **Direction**
  Sadhwi Shri Umravkunwar 'Archana'

- **Board of Editors**
  Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
  Upacharya Shri Devendra Muni Shastri
  Shri Ratan Muni

- **Promotor**
  Muni Shri Vinayakumar 'Bhima'
  Sri Mahendra Muni 'Dinakar'

- **First Edition**
  Vir-Nirvana Samvat 2517
  Vikram Samvat 2048, Nov. 1991.

- **Publisher**
  Sri Agam Prakashan Samiti,
  Shri Brij-Madhukar Smriti Bhawan,
  Pipalia Bazar, Beawar (Raj.)
  Pin 305 901

- **Printer**
  Satish Chandra Shukla
  Vedic Yantralaya
  Kesarganj, Ajmer

- Price : Rs. 60/-

समर्पण

जैन आगम-दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड
पण्डित, बहुश्रुत, श्रमणसंघ के
उपाध्यायप्रवर, सद्गुरुवर्य
श्रद्धेय श्री देवेन्द्रमुनिजी म.
को सादर विनय
समर्पित
—राजेन्द्रमुनि

प्रकाशकीय

आगमप्रेमी जैनदर्शन के अध्येताओं के समक्ष जिनागम ग्रन्थमाला के ३१वें अंक के रूप में जीवाजीवाभिगमसूत्र का द्वितीय भाग प्रस्तुत किया जा रहा है। जीवाजीवाभिगमसूत्र में मुख्य रूप से जीव का विभिन्न स्थितियों की अपेक्षा विशद वर्णन किया गया है। जो संक्षेप में जीव की अनेकानेक अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराने के साथ तत्सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओं का समाधान करता है। साधारण पाठकों के लिये तो विस्तृत बोध कराने का साधन है।

प्रस्तुत संस्करण मे निर्धारित रूपरेखा के अनुसार मूल पाठ के साथ हिन्दी में उसका अर्थ तथा स्पष्टीकरण के लिये आवश्यक विवेचन है। इसी कारण ग्रन्थ का अधिक विस्तार हो जाने से दो भागों में प्रकाशित किया गया है। प्रथम भाग पूर्व में प्रकाशित हो गया और यह द्वितीय भाग है।

ग्रन्थ का अनुवाद, विवेचन, सपादन उप-प्रवर्तक श्री राजेन्द्रमुनिजी म. एम. ए., पी-एच. डी. ने किया है। उत्तराध्ययनसूत्र का संपादन आदि आपने ही किया था। एतदर्थ समिति आपको अपना वरिष्ठ सहयोगी मानती हुई हार्दिक अभिनन्दन करती है।

समग्र आगमसाहित्य को जनभोग्य बनाने के लिये जिन महामना युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी "मधुकर" मुनिजी म. ने पवित्र अनुष्ठान प्रारम्भ किया था, अब उनका प्रत्यक्ष सान्निध्य तो नहीं रहा, यह परिताप का विषय है, किन्तु आपश्री के परोक्ष आशीर्वाद सदैव समिति को प्राप्त होते रहे हैं। यही कारण है कि समिति अपने कार्य में प्रगति करती रही और अब हम विश्वास के साथ यह स्पष्ट करने में समर्थ हैं कि आगम बत्तीसी का प्रकाशन कार्य प्राय. पूर्ण हो चुका है।

अन्त में हम अपने सभी सहयोगियों के कृतज्ञ हैं कि उनकी लगन, प्रेरणा से प्रकाशन का कार्य सम्पन्न होने जा रहा है।

रतनचन्द मोदी	**सायरमल चोरड़िया**	**अमरचन्द मोदी**
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामंत्री	मंत्री

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्याव

(कार्यकारिणी समिति)

अध्यक्ष	श्री सागरमलजी बैताला	
कार्यवाहक अध्यक्ष	श्री रतनचन्दजी मोदी	ब
उपाध्यक्ष	श्री धनराजजी विनायकिया	ब्य
	श्री पारसमलजी चोरड़िया	
	श्री हुक्मीचन्दजी पारख	जो
	श्री दुलीचन्दजी चोरड़िया	
	श्री जसराजजी सा. पारख	
महामंत्री	श्री जी० सायरमलजी चोरड़िया	म
	श्री अमरचन्दजी मोदी	ब्य
	श्री ज्ञानराजजी मूथा	
सहमंत्री	श्री ज्ञानचन्दजी विनायकिया	ब्य
कोषाध्यक्ष	श्री जवरीलालजी शिशोदिया	ब्य
	श्री आर. प्रसन्नचन्द्रजी चोरड़िया	म
परामर्शदाता	श्री माणकचन्दजी संचेती	जो
कार्यकारिणी सदस्य	श्री एस. सायरमलजी चोरड़िया	म
	श्री मोतीचन्दजी चोरड़िया	म
	श्री मूलचन्दजी सुराणा	ना
	श्री तेजराजजी भण्डारी	जोध
	श्री भंवरलालजी गोठी	म
	श्री प्रकाशचन्दजी चोपड़ा	ब्या
	श्री जतनराजजी मेहता	मेड़तासि
	श्री भंवरलालजी श्रीश्रीमाल	
	श्री चन्दनमलजी चोरड़िया	म
	श्री सुमेरमलजी मेड़तिया	जोध
	श्री आसूलालजी बोहरा	जोध

सम्पादकीय वक्तव्य

सर्वज्ञ—सर्वदर्शी वीतराग परमात्मा जिनेश्वर देवों की सुधास्यन्दिनी—आगम-वाणी न केवल विश्व के धार्मिक साहित्य की अनमोल निधि है, अपितु वह जगज्जीवों के जीवन का संरक्षण करने वाली संजीवनी है। अरिहन्तों द्वारा उपदिष्ट यह प्रवचन वह अमृतकलश है जो समस्त विषविकारों को दूर कर विश्व के समस्त प्राणियों को नवजीवन प्रदान करता है। जैनागमों का उद्भव ही जगत के जीवों के रक्षण रूप दया के लिए हुआ है।[1] अहिंसा, दया, करुणा, स्नेह, मैत्री ही इसका सार है। अतएव विश्व के जीवों के लिए यह सर्वाधिक हितकर, संरक्षक एवं उपकारक है। यह जैन प्रवचन जगज्जीवों के लिए त्राणरूप है, शरणरूप है, गतिरूप है और आधाररूप है।

पूर्वाचार्यों ने इस आगमवाणी को सागर की उपमा से उपमित किया है। उन्होंने कहा—"यह जैनागम महान् सागर के समान है, यह ज्ञान से अगाध है, श्रेष्ठ पद-समुदाय रूपी जल से लबालब भरा हुआ है, अहिंसा की अनन्त ऊर्मियों-लहरों से तरंगित होने से यह अपार विस्तार वाला है, चूला रूपी ज्वार इसमें उठ रहा है। गुरु की कृपा से प्राप्त होने वाली मणियों से यह भरा हुआ है। इसका पार पाना कठिन है। यह परम साररूप और मंगलरूप है। ऐसे महावीर परमात्मा के आगमरूपी समुद्र की भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिए।[2]

सचमुच जैनागम महासागर की तरह विस्तृत और गम्भीर है। तथापि गुरुकृपा और प्रयत्न से इसमें अवगाहन करके सारभूत रत्नों को प्राप्त किया जा सकता है।

जिनप्रवचन का सार अहिंसा और समता है। जैसा कि सूत्रकृतांग सूत्र में कहा है—सब प्राणियों को आत्मवत् समझकर उनकी हिंसा न करना, यही धर्म का सार है, आत्मकल्याण का मार्ग है।

जैनसिद्धान्त अहिंसा से ओतप्रोत है और आज के दावानल में झुलसते विश्व के लिए अहिंसा की अजस्र जलधारा ही हितावह है। अतः जैन सिद्धान्तों का पठन-पाठन-अनुशीलन एवं उनका व्यापक प्रचार-प्रसार आज के युग की प्राथमिकता है। अहिंसा के अनुशीलन से ही विश्वशान्ति की सम्भावना है, अतएव अहिंसा से ओतप्रोत जैनागमों का अध्ययन एवं अनुशीलन परम आवश्यक है।

जैनागम द्वादशांगी गणिपिटक रूप है। अरिहंत तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञान की प्राप्ति होने के पश्चात् अर्थ रूप से प्रवचन का प्ररूपण करते हैं और उनके चतुर्दशपूर्वधर, विपुलबुद्धिनिधान गणधर उन्हें सूत्ररूप में निबद्ध करते हैं। इस तरह प्रवचन की परम्परा चलती रहती है। अतएव अर्थरूप आगम के प्रणेता श्री तीर्थंकर परमात्मा

---

१. सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए, भगवया पावयणं कहियं। —प्रश्नव्याकरण

२. बोधागाधं सुपदपदवी नीरपूराभिरामं,
जीवाहिंसाऽविरललहरी संगमागाहदेहं।
चूलावेलं गुरुगममणिसंकुलं दूरपारं,
सारं वीरागमजलनिधिं सादरं साधु सेवे॥

हैं और शब्दरूप आगम के प्रणेता गणधर हैं। अनन्त काल से अरिहन्त और उनके गणधरों की परम्परा चलती आ रही है। अतएव उनके उपदेश रूप आगम की परम्परा भी अनादि काल से चली आ रही है। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि यह द्वादशांगी ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, सदाकाल से है, यह कभी नहीं है, ऐसा नहीं है। यह सदा थी, है और रहेगी। भावों की अपेक्षा यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत है।[1]

द्वादशांगी में बारह अंगों का समावेश है। आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद, ये बारह अंग हैं। यही द्वादशांगी गणिपिटक है, जो साक्षात् तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट है। यह अंगप्रविष्ट आगम कहे जाते है, इनके अतिरिक्त अनंगप्रविष्ट—अंगबाह्य आगम वे हैं जो तीर्थंकरों के वचनों से अविरुद्ध रूप में प्रज्ञातिशय-सम्पन्न स्थविर भगवंतों द्वारा रचे गए हैं। इस प्रकार जैनागम दो भागों में विभक्त हैं—अंगप्रविष्ट और अनंगप्रविष्ट (अंगबाह्य)।

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम शास्त्र अनंगप्रविष्ट आगम है। दूसरी विवक्षा से बारह अंगों के बारह उपांग भी कहे गए हैं। तदनुसार औपपातिक आदि को उपांग संज्ञा दी जाती है। आचार्य मलयगिरि ने जिन्होंने जीवाजीवाभिगम पर विस्तृत वृत्ति लिखी है, इसे तृतीय अंग—स्थानांग का उपांग कहा है।

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगमसूत्र की आदि में स्थविर भगवंतों को इस अध्ययन के प्ररूपक के रूप में प्रतिपादित किया गया है—

इह खलु जिणमयं जिणाणुमयं, जिणाणुलोमं, जिणप्पणीयं, जिणपरूवियं जिणक्खायं जिणाणुचिण्णं, जिणपण्णत्तं, जिणदेसियं, जिणपसत्थं, अणुवीइय, तं सद्दहमाणा, तं पत्तियमाणा, तं रोयमाणा थेरा भगवंतो जीवाजीवाभिगमणाममज्झयणं पण्णवइंसु।

समस्त जिनेश्वरों द्वारा अनुमत, जिनानुलोम जिनप्रणीत, जिनप्ररूपित, जिनाख्यात, जिनानुचीर्ण, जिनप्रज्ञप्त और जिनदेशित इस प्रशस्त जिनमत का चिन्तन करके, इस पर श्रद्धा, विश्वास एवं रुचि करके स्थविर भगवन्तों ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन की प्ररूपणा की।

उक्त कथन द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि प्रस्तुत सूत्र की रचना स्थविर भगवन्तों ने की है। वे स्थविर भगवन्त तीर्थंकरों के प्रवचन के सम्यग्ज्ञाता थे। उनके वचनों पर श्रद्धा, विश्वास व रुचि रखने वाले थे। इससे यह ध्वनित किया गया है कि ऐसे स्थविरों द्वारा प्ररूपित आगम भी उसी प्रकार प्रमाणरूप है, जिस प्रकार सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररूपित आगम प्रमाणरूप हैं। क्योंकि स्थविरों की यह रचना तीर्थंकरों के वचनों से अविरुद्ध है। प्रस्तुत पाठ में आए हुये जिनमत के विशेषणों का स्पष्टीकरण उक्त मूलपाठ के विवेचन में किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है, परन्तु मुख्य रूप से जीव का प्रतिपादन होने से अथवा संक्षेप दृष्टि से यह सूत्र जीवाभिगम के नाम से जाना जाता है।

---

१. एवं दुवालसंगं गणिपिडगं ण कयावि णासि, ण कयावि ण भवइ, ण कयावि ण भविस्सइ, धुवं णिच्चं सासयं।
—नन्दीसूत्र

जैन तत्त्वज्ञान प्रधानतया आत्मवादी है। जीव या आत्मा इसका केन्द्रबिन्दु है। वैसे तो जैनसिद्धान्त में नौ तत्त्व माने हैं अथवा पुण्य, पाप को आश्रव, बन्ध तत्त्व में सम्मिलित करने से सात तत्त्व माने हैं, परन्तु वे सब जीव और अजीव कर्म-द्रव्य के सम्बन्ध या वियोग की विभिन्न अवस्था रूप ही हैं। अजीवतत्त्व का प्ररूपण जीवतत्त्व के स्वरूप को विशेष स्पष्ट करने तथा उससे उसके भिन्न स्वरूप को बताने के लिए है। पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष तत्त्व जीव और कर्म के संयोग-वियोग से होने वाली अवस्थाएं हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि जैन तत्त्वज्ञान का मूल आत्मद्रव्य (जीव) है। उसका आरम्भ ही आत्मविचार से होता है तथा मोक्ष उसकी अन्तिम परिणति है। प्रस्तुत सूत्र में उसी आत्मद्रव्य की अर्थात् जीव की विस्तार के साथ चर्चा की गयी है। अतएव यह जीवाभिगम कहा जाता है। अभिगम का अर्थ है ज्ञान। जिसके द्वारा जीव, अजीव का ज्ञान-विज्ञान हो, वह जीवाजीवाभिगम है। अजीव तत्त्व के भेदों का सामान्य रूप से उल्लेख करने के उपरान्त प्रस्तुत सूत्र का सारा अभिधेय जीवतत्त्व को लेकर ही है। जीव के दो भेद—सिद्ध और संसारसमापन्नक के रूप में बताये गये हैं। तदुपरान्त संसारसमापन्नक जीवों के विभिन्न विवक्षाओं को लेकर किए गए भेदों के विषय में नौ प्रतिपत्तियों-मन्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। ये नौ ही प्रतिपत्तियां भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं को लेकर प्रतिपादित हैं, अतएव भिन्न-भिन्न होने के बावजूद ये परस्पर अविरोधी हैं और तथ्यपरक हैं।

रागद्वेषादि विभावपरिणतियों से परिणत यह जीव संसार में कैसी-कैसी अवस्थाओं का, किन-किन रूपों का, किन-किन योनियों में जन्म-मरण आदि का अनुभव करता है, आदि विषयों का उल्लेख इन नौ प्रतिपत्तियों में किया गया है। त्रस स्थावर के रूप में, स्त्री-पुरुष-नपुंसक के रूप में, नारक तिर्यंच देव और मनुष्य के रूप में, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय के रूप में, पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय के रूप में तथा अन्य अपेक्षाओं से अन्य-अन्य रूपों में जन्म-मरण करता हुआ यह जीवात्मा जिन-जिन स्थितियों का अनुभव करता है, उनका सूक्ष्म वर्णन किया गया है। द्विविध प्रतिपत्ति में त्रस स्थावर के रूप में जीवों के भेद बताकर—१. शरीर, २. अवगाहना, ३. संहनन, ४. संस्थान, ५. कषाय, ६. संज्ञा, ७. लेश्या, ८. इन्द्रिय, ९. समुद्घात, १०. संज्ञी-असंज्ञी, ११. वेद, १२. पर्याप्त-अपर्याप्त १३. दृष्टि, १४. दर्शन, १५. ज्ञान, १६. योग, १७. उपयोग, १८. आहार, १९. उपपात, २०. स्थिति, २१. समवहत-असमवहत, २२. च्यवन और २३ गति-आगति, इन २३ द्वारों से उनका निरूपण किया है, इसी प्रकार आगे की प्रतिपत्तियों में भी जीव के विभिन्न भेदों में विभिन्न द्वारों को घटित किया गया है। स्थिति, संचिट्ठणा (कायस्थिति), अन्तर और अल्पबहुत्व द्वारों का यथासंभव सर्वत्र उल्लेख किया गया है। अंतिम प्रतिपत्ति में सिद्ध, संसारी भेदों की विवक्षा न करते हुए सर्वजीवों के भेदों की प्ररूपणा की गई है।

प्रस्तुत सूत्र में नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों के प्रसंग में अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक का निरूपण किया गया है। तिर्यग्लोक के निरूपण में द्वीप-समुद्रों की वक्तव्यता, कर्मभूमि-अकर्मभूमि की वक्तव्यता, वहाँ की भौगोलिक और सांस्कृतिक स्थितियों का विशद विवेचन भी किया गया है, जो विविध दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार यह सूत्र और इसकी विषय-वस्तु जीव के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देती है। अतएव इसका जीवाभिगम नाम सार्थक है। यह आगम जैन तत्वज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है।

प्रस्तुत सूत्र का मूल प्रमाण ४७५० (चार हजार सात सौ पचास) श्लोक ग्रन्थाग्र है। इस पर आचार्य मलयगिरि ने १४,००० (चौदह हजार) ग्रन्थाग्र प्रमाणवृत्ति लिखकर इस गम्भीर आगम के मर्म को प्रकट किया है। वृत्तिकार ने अपने बुद्धिवैभव से आगम के मर्म को हम साधारण लोगों के लिए उजागर कर हमें बहुत उपकृत किया है।

है और शब्दरूप आगम के प्रणेता गणधर हैं। अनन्त काल से अरिहन्त और उनके गणधरों की परम्परा चलती आ रही है। अतएव उनके उपदेश रूप आगम की परम्परा भी अनादि काल से चली आ रही है। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि यह द्वादशांगी ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, सदाकाल से है, यह कभी नहीं है, ऐसा नहीं है। यह सदा थी, है और रहेगी। भावों की अपेक्षा यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत है।[1]

द्वादशांगी में बारह अंगों का समावेश है। आचारांग, सूत्रकृतांग, ठाणांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद, ये बारह अंग हैं। यही द्वादशांगी गणिपिटक है, जो साक्षात् तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट है। यह अंगप्रविष्ट आगम कहे जाते हैं, इनके अतिरिक्त अनंगप्रविष्ट—अंगबाह्य आगम वे हैं जो तीर्थंकरों के वचनों से अविरुद्ध रूप में प्रज्ञातिशय-सम्पन्न स्थविर भगवंतों द्वारा रचे गए हैं। इस प्रकार जैनागम दो भागों में विभक्त हैं—अंगप्रविष्ट और अनंगप्रविष्ट (अंगबाह्य)।

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम शास्त्र अनंगप्रविष्ट आगम है। दूसरी विवक्षा से बारह अंगों के बारह उपांग भी कहे गए हैं। तदनुसार औपपातिक आदि को उपांग संज्ञा दी जाती है। आचार्य मलयगिरि ने जिन्होंने जीवाजीवाभिगम पर विस्तृत वृत्ति लिखी है, इसे तृतीय अंग—स्थानांग का उपांग कहा है।

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगमसूत्र की आदि में स्थविर भगवंतों को इस अध्ययन के प्ररूपक के रूप में प्रतिपादित किया गया है—

इह खलु जिणमयं जिणाणुमयं, जिणाणुलोमं, जिणप्पणीयं, जिणपरूवियं जिणक्खायं जिणाणुचिण्णं, जिणपण्णत्तं, जिणदेसियं, जिणपसत्थं, अणुव्वीइय, तं सद्दहमाणा, तं पत्तियमाणा, तं रोयमाणा थेरा भगवंतो जीवाजीवाभिगमणाममज्झयणं पण्णवइंसु।

समस्त जिनेश्वरों द्वारा अनुमत, जिनानुलोम जिनप्रणीत, जिनप्ररूपित, जिनाख्यात, जिनानुचीर्ण, जिनप्रज्ञप्त और जिनदेशित इस प्रशस्त जिनमत का चिन्तन करके, इस पर श्रद्धा, विश्वास एवं रुचि करके स्थविर भगवन्तों ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन की प्ररूपणा की।

उक्त कथन द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि प्रस्तुत सूत्र की रचना स्थविर भगवन्तों ने की है। ये स्थविर भगवन्त तीर्थंकरों के प्रवचन के सम्यग्ज्ञाता थे। उनके वचनों पर श्रद्धा, विश्वास व रुचि रखने वाले थे। इससे यह ध्वनित किया गया है कि ऐसे स्थविरों द्वारा प्ररूपित आगम भी उसी प्रकार प्रमाणरूप हैं, जिस प्रकार सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररूपित आगम प्रमाणरूप हैं। क्योंकि स्थविरों की यह रचना तीर्थंकरों के वचनों से अविरुद्ध है। प्रस्तुत पाठ में आए हुये जिनमत के विशेषणों का स्पष्टीकरण उक्त मूलपाठ के विवेचन में किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है, परन्तु मुख्य रूप से जीव का प्रतिपादन होने से अथवा संक्षेप दृष्टि से यह सूत्र जीवाभिगम के नाम से जाना जाता है।

---

१. एवं दुवालसंगं गणिपिडगं ण कयावि णासि, ण कयावि ण भवइ, ण कयावि ण भविस्सइ, धुवं णिच्चं सासयं।
—नन्दीसूत्र

जैन तत्त्वज्ञान प्रधानतया आत्मवादी है। जीव या आत्मा इसका केन्द्रबिन्दु है। वैसे तो जैनसिद्धान्त ने नौ तत्त्व माने हैं अथवा पुण्य, पाप को आस्रव, बन्ध तत्त्व में सम्मिलित करने से सात तत्त्व माने हैं, परन्तु ये सब जीव और अजीव कर्म-द्रव्य के सम्बन्ध या वियोग की विभिन्न अवस्था रूप ही हैं। अजीवतत्त्व का प्ररूपण जीवतत्त्व के स्वरूप को विशेष स्पष्ट करने तथा उससे उसके भिन्न स्वरूप को बताने के लिए है। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष तत्त्व जीव और कर्म के संयोग-वियोग से होने वाली अवस्थाएं हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि जैन तत्त्वज्ञान का मूल आत्मद्रव्य (जीव) है। उसका प्रारम्भ ही आत्मविचार से होता है तथा मोक्ष उसकी अन्तिम परिणति है। प्रस्तुत सूत्र में उसी आत्मद्रव्य की अर्थात् जीव की विस्तार के साथ चर्चा की गयी है। अतएव यह जीवाभिगम कहा जाता है। अभिगम का अर्थ है ज्ञान। जिसके द्वारा जीव, अजीव का ज्ञान-विज्ञान हो, वह जीवाजीवाभिगम है। अजीव तत्त्व के भेदों का सामान्य रूप से उल्लेख करने के उपरान्त प्रस्तुत सूत्र का सारा अभिधेय जीवतत्त्व को लेकर ही है। जीव के दो भेद—सिद्ध और संसारसमापन्नक के रूप में बताये गये है। तदुपरान्त संसारसमापन्नक जीवों के विभिन्न विवक्षाओं को लेकर किए गए भेदों के विषय में नौ प्रतिपत्तियों-मन्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। ये नौ ही प्रतिपत्तियां भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं को लेकर प्रतिपादित हैं, अतएव भिन्न-भिन्न होने के बावजूद ये परस्पर अविरोधी हैं और तथ्यपरक हैं।

रागद्वेषादि विभावपरिणतियों से परिणत यह जीव संसार में कैसी-कैसी अवस्थाओं का, किन-किन रूपों का, किन-किन योनियों में जन्म-मरण आदि का अनुभव करता है, आदि विषयों का उल्लेख इन नौ प्रतिपत्तियों में किया गया है। त्रस स्थावर के रूप मे, स्त्री-पुरुष-नपुंसक के रूप में, नारक तिर्यंच देव और मनुष्य के रूप में, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय के रूप में, पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय के रूप में तथा अन्य अपेक्षाओं से अन्य-अन्य रूपों में जन्म-मरण करता हुआ यह जीवात्मा जिन-जिन स्थितियों का अनुभव करता है, उनका सूक्ष्म वर्णन किया गया है। द्विविध प्रतिपत्ति में त्रस स्थावर के रूप में जीवों के भेद बताकर—१. शरीर, २. अवगाहना, ३. संहनन, ४. संस्थान, ५. कषाय, ६. संज्ञा, ७. लेश्या, ८. इन्द्रिय, ९. समुद्घात, १०. संज्ञी-असंज्ञी, ११. वेद, १२. पर्याप्त-अपर्याप्त १३. दृष्टि, १४. दर्शन, १५. ज्ञान, १६. योग, १७. उपयोग, १८. आहार, १९. उपपात, २०. स्थिति, २१. समवहत-असमवहत, २२. च्यवन और २३ गति-आगति, इन २३ द्वारों से उनका निरूपण किया है, इसी प्रकार आगे की प्रतिपत्तियों में भी जीव के विभिन्न भेदों में विभिन्न द्वारों को घटित किया गया है। स्थिति, संचिट्ठणा (कायस्थिति), अन्तर और अल्पबहुत्व द्वारों का यथासंभव सर्वत्र उल्लेख किया गया है। अंतिम प्रतिपत्ति में सिद्ध, संसारी भेदों की विवक्षा न करते हुए सर्वजीवों के भेदों की प्ररूपणा की गई है।

प्रस्तुत सूत्र में नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों के प्रसंग मे अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक का निरूपण किया गया है। तिर्यग्लोक के निरूपण में द्वीप-समुद्रों की वक्तव्यता, कर्मभूमि-अकर्मभूमि की वक्तव्यता, वहां की भौगोलिक और सांस्कृतिक स्थितियों का विशद विवेचन भी किया गया है, जो विविध दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार यह सूत्र और इसकी विषय-वस्तु जीव के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देती है। अतएव इसका जीवाभिगम नाम सार्थक है। यह आगम जैन तत्त्वज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है।

प्रस्तुत सूत्र का मूल प्रमाण ४७५० (चार हजार सात सौ पचास) श्लोक ग्रन्थाग्र है। इस पर आचार्य मलयगिरि ने १४,००० (चौदह हजार) ग्रन्थाग्र प्रमाणवृत्ति लिखकर इस गम्भीर आगम के मर्म को प्रकट किया है। वृत्तिकार ने अपने बुद्धिवैभव से आगम के मर्म को हम साधारण लोगों के लिए उजागर कर हमें बड़ा उपकार किया है।

सम्पादन के विषय में—

प्रस्तुत संस्करण के मूल पाठ का मुख्यतः आधार सेठ श्री देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड सूरत से प्रकाशित वृत्तिसहित जीवाभिगमसूत्र का मूल पाठ है। परन्तु अनेक स्थलों पर उस संस्करण में प्रकाशित मूल पाठ में वृत्तिकार द्वारा मान्य पाठ में अन्तर भी है। कई स्थलों में पाये जाने वाले इस भेद से ऐसा लगता है कि वृत्तिकार के सामने कोई अन्य प्रति (आदर्श) रही हो। अतएव अनेक स्थलों पर हमने वृत्तिकार-सम्मत पाठ अधिक संगत लगने से उसे मूलपाठ में स्थान दिया है। ऐसे पाठान्तरों का उल्लेख स्थान-स्थान पर फुटनोट (टिप्पण) में किया गया है। स्वयं वृत्तिकार ने इस बात का उल्लेख किया है कि इस आगम के सूत्रपाठों में कई स्थानों पर भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यह स्मरण रखने योग्य है कि यह भिन्नता शब्दों को लेकर है, तात्पर्य में कोई अंतर नहीं है। तात्त्विक अंतर न होकर वर्णनात्मक स्थलों में शब्दों का और उनके क्रम का अन्तर दृष्टिगोचर होता है। ऐसे स्थलों पर हमने टीकाकारसम्मत पाठ को मूल में स्थान दिया है।

प्रस्तुत आगम के अनुवाद और विवेचन में भी मुख्य आधार आचार्य श्री मलयगिरि की वृत्ति ही रही है। हमने अधिक से अधिक यह प्रयास किया है कि इस तात्त्विक आगम की सैद्धान्तिक विषय-वस्तु को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप में जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत किया जावे। अतएव वृत्ति में स्पष्ट की गई प्रायः सभी मुख्य-मुख्य बातें हमने विवेचन में दी हैं, ताकि संस्कृत भाषा को न समझने वाले जिज्ञासुजन भी उनसे लाभान्वित हो सकें। मैं समझता हूँ कि मेरे इस प्रयास से हिन्दीभाषी जिज्ञासुओं को वे सब तात्त्विक बातें समझने को मिल सकेंगी जो वृत्ति में संस्कृत भाषा में समझायी गई हैं। इस दृष्टि से इस संस्करण की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। जिज्ञासुजन यदि इससे लाभान्वित होंगे तो मैं अपने प्रयास को सार्थक समझूंगा।

अन्त में मैं स्वयं को धन्य मानता हूँ कि मुझे प्रस्तुत आगम को तैयार करने का सुअवसर मिला। आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर की ओर से मुझे प्रस्तुत जीवाभिगमसूत्र का सम्पादन करने का दायित्व सौंपा गया। सूत्र की गम्भीरता को देखते हुए मुझे अपनी योग्यता के विषय में संकोच अवश्य पैदा हुआ। परन्तु श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर मैंने यह दायित्व स्वीकार कर लिया और उसके निष्पादन में निष्ठा के साथ जुड़ गया। जैसा भी मुझ से बन पड़ा, वह इस रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

कृतज्ञता ज्ञापन

श्रुतसेवा के मेरे इस प्रयास में श्रद्धेय गुरुवर्य उपाध्याय—श्री पुष्कर मुनिजी म., श्रमणसंघ के उपाचार्यश्री सुप्रसिद्ध साहित्यकार गुरुवर्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म. का मार्गदर्शन एवं पण्डित श्री रमेशमुनिजी म., श्री सुरेन्द्र मुनिजी, विदुषी महासती डॉ. श्री दिव्यप्रभाजी, श्री अनुपमाजी बी. ए. आदि का सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके फलस्वरूप मैं यह भगीरथ कार्यसम्पन्न करने में सफल हो सका हूँ।

आगम सम्पादन करते समय पं. श्री बसन्तीलालजी नलवाया, रतलाम का सहयोग मिला, उसे भी विस्मृत नहीं कर सकता।

यदि मेरे इस प्रयास से जिज्ञासु आगमरसिकों को तात्त्विक लाभ पहुंचेगा तो मैं अपने प्रयास को सार्थक समझूंगा। अन्त में मैं यह शुभ कामना करता हूँ कि जिनेश्वर देवों द्वारा प्ररूपित तत्त्वों के प्रति जन-जन के मन में श्रद्धा, विश्वास और रुचि उत्पन्न हो, ताकि वे ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना करके मुक्तिपथ के पथिक बन सकें।

—राजेन्द्रमुनि
एम. ए., पी-एच. डी.

श्री अमर जैन आगम भण्डार
पीपाड़सिटी, ११ सितम्बर ९१

अनुक्रमणिका

जीवाजीवाभिगमसुत्तं

[बिइयं खंडं]

जीवाजीवाभिगमसूत्र

[द्वितीय खण्ड]

तृतीय प्रतिपत्ति

लवणसमुद्र की वक्तव्यता

१५४. जंबुद्दीवं णामं दीवं लवणे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वम्रो समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ। लवणे णं भंते! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए? गोयमा! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए।

लवणे णं भंते! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एगासीइसहस्साइं सयमेगोणचत्तालीसे किंचिविसेसाहिए लवणोदहिणो चक्कवालपरिक्खेवेणं।

से णं एक्काए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ, दोण्हवि वण्णओ। सा णं पउमवरवेदिया म्रद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसयं विक्खंभेणं लवणसमुद्दसमियापरिक्खेवेणं, सेसे तहेव। से णं वनसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं जाव विहरइ।

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, म्रपराजिए।

कहि णं भंते! लवणसमुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमपेरंते धायइखंडस्स दीवस्स पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीम्रोदाए महाणईए उप्पि एत्थ णं लवणस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, म्रट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं एवं तं चेव सव्वं जहा जम्बुद्दीवस्स विजए दारे[1] रायहाणी पुरत्थिमेणं अण्णंमि लवणसमुद्दे।[2]

कहि णं भंते! लवणसमुद्दे वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! लवणसमुद्दे दाहिणपेरंते धातइखंडस्स दाहिणद्धस्स उत्तरेणं सेसं तं चेव। एवं जयंते वि, णवरि सीयाए महाणईए उप्पि भाणियव्वं। एवं अपराजिए वि, णवरं दिसिभागो भाणियव्वो।

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते? गोयमा!

तिण्णेव सयसहस्सा पंचाणउइं भवे सहस्साइं।
दो जोयणसय असीआ कोसं दारंतरे लवणे॥ १॥

जाव म्रबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

१. विजयदारसरिसमेयपि।
२. जिन्हीं प्रतियों में यहां चारों द्वारों का पूरा वर्णन मूलपाठ में दिया हुआ है, परन्तु वह पहले कहा जा चुका है और टीकानुसारी भी नहीं है, अतएव उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

तृतीय प्रतिपत्ति

लवणसमुद्र की वक्तव्यता

१५४. जंबुद्दीवं णामं दीवं लवणे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ। लवणे णं भंते! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए? गोयमा! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए।

लवणे णं भंते! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एगासीइसहस्साइं सयमेगोणचत्तालीसे किंचिविसेसाहिए लवणोदहिणो चक्कवालपरिक्खेवेणं।

से णं एक्काए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ, दोण्हवि वण्णओ। सा णं पउमवरवेइया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसयं विक्खंभेणं लवणसमुद्दसमियापरिक्खेवेणं, सेसं तहेव। से णं वनसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं जाव विहरइ।

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

कहि णं भंते! लवणसमुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमपेरंते धायइखंडस्स दीवस्स पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए उप्पिं एत्थ णं लवणस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं एवं तं चेव सव्वं जहा जम्बुद्दीवस्स विजए दारे[1] रायहाणी पुरत्थिमेणं अण्णंमि लवणसमुद्दे।[2]

कहि णं भंते! लवणसमुद्दे वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! लवणसमुद्दे दाहिणपेरंते धायइखंडस्स दाहिणद्धस्स उत्तरेणं सेसं तं चेव। एवं जयंते वि, णवरि सीयाए महाणईए उप्पिं भाणियव्वं। एवं अपराजिए वि, णवरं दिसिभागो भाणियव्वो।

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते? गोयमा!

तिण्णेव सयसहस्सा पंचाणउइं भवे सहस्साइं।
दो जोयणसय असीआ कोसं दारंतरे लवणे॥ १॥

जाव अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

---

१. विजयदारसरिसमेयंपि।

२. किन्हीं प्रतियों में यहां चारों द्वारों का पूरा वर्णन मूलपाठ में दिया हुआ है, परन्तु वह पहले कहा जा चुका है और टीकानुसारी भी नहीं है, अतएव उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

लवणस्स णं भंते ! पएसा धातइखंडं दीवं पुट्ठा ? तहेव जहा जम्बूदीवे धायइखंडे वि सो चेव गमो।

लवणे णं भंते । समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता सो चेव विही, एवं धायइखंडे वि।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—लवणसमुद्दे लवणसमुद्दे ? गोयमा ! लवणे णं समुद्दे उदगे आविले रइले लोणे लिंदे खारए कडुए अप्पेज्जे बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सिरीसवाणं णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं। सोत्थिए एत्थ लवणाहिवई देवे महिड्ढिए पलिओवमट्ठिईए। से णं तत्थ सामाणिय जाव लवणसमुद्दस्स सुत्थियाए रायहाणिए अण्णेसिं जाव विहरइ। से एएट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ लवणे णं समुद्दे लवणे णं समुद्दे। अदुत्तरं च णं गोयमा ! लवणसमुद्दे सासए जाव णिच्चे।

१५४. *गोल और वलय की तरह गोलाकार में संस्थित लवणसमुद्र जम्बूद्वीप नामक द्वीप को चारों ओर से घेरे हुए अवस्थित है। हे भगवन् ! लवणसमुद्र समचक्रवाल-संस्थान से संस्थित है या विषमचक्रवाल-संस्थान से संस्थित है ? गोतम ! लवणसमुद्र समचक्रवाल-संस्थान से संस्थित है, विषमचक्रवाल-संस्थान से संस्थित नहीं है।*

भगवन् ! लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है ?

गौतम ! लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ दो लाख योजन का है और उसकी परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस योजन से कुछ अधिक है।[1]

वह लवणसमुद्र एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से परिवेष्टित है। दोनों का वर्णनक कहना चाहिए। वह पद्मवरवेदिका आधा योजन ऊंची और पांच सौ धनुष प्रमाण चौड़ी है। लवणसमुद्र के समान ही उसकी परिधि है। शेष वर्णन जम्बूद्वीप की पद्मवरवेदिका के समान जानना चाहिए। यह वनखण्ड कुछ कम दो योजन का है, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये, यावत् वहां बहुत से वाणव्यन्तर देव-देवियां अपने पुण्यकर्म के फल को भोगते हुए विचरते हैं।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र के कितने द्वार हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र के चार द्वार हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र का विजयद्वार कहां है ?

गौतम ! लवणसमुद्र के पूर्वीय पर्यन्त में और पूर्वार्ध धातकीखण्ड के पश्चिम में शीतोदा महानदी के ऊपर लवणसमुद्र का विजय नामक द्वार है। वह आठ योजन ऊंचा और चार योजन चौड़ा है, आदि वह सब कथन करना चाहिए जो जम्बूद्वीप के विजयद्वार के लिए कहा गया है। इस विजय देव की राजधानी पूर्व में असंख्य द्वीप, समुद्र लांघने के बाद अन्य लवणसमुद्र में है।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र में वैजयन्त नामक द्वार कहां है ?

गौतम ! लवणसमुद्र के दाक्षिणात्य पर्यन्त में धातकीखण्ड द्वीप के दक्षिणार्ध भाग के उत्तर में वैजयन्त नामक द्वार है। शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। इसी प्रकार जयन्तद्वार के विषय में

---

१. वृत्ति में 'पंचदश योजनशतसहस्राणि एकाशीतिं सहस्राणि शतमेकोनचत्वारिंशं च किंचिद्विशेषोनं परिक्षेपेण' ऐसा उल्लेख है [illegible]

जानना चाहिए। विशेषता यह है कि यह शीता महानदी के ऊपर है। इसी प्रकार अपराजितद्वार के विषय में जानना चाहिए। विशेषता यह है कि यह लवणसमुद्र के उत्तरी पर्यन्त में और उत्तरार्ध धातकीखण्ड के दक्षिण में स्थित है। इसकी राजधानी अपराजितद्वार के उत्तर में असंख्य द्वीप समुद्र जाने के बाद अन्य लवणसमुद्र में है।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र के इन द्वारों का एक द्वार से दूसरे के अपान्तराल का अन्तर कितना कहा गया है ?

गौतम ! तीन लाख पंचानवें हजार दो सौ अस्सी (३९५२८०) योजन और एक कोस का एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर है।[1]

हे भगवन् ! लवणसमुद्र के प्रदेश धातकीखण्डद्वीप से छुए हुए हैं क्या ? हां गौतम ! छुए हुए हैं, आदि सब वर्णन वैसा ही कहना चाहिए जैसा जम्बूद्वीप के विषय में कहा गया है। धातकीखण्ड के प्रदेश लवणसमुद्र से स्पृष्ट हैं, आदि कथन भी पूर्ववत् जानना चाहिए। लवणसमुद्र में मर कर जीव धातकीखण्ड मे पैदा होते हैं क्या ? आदि कथन भी पूर्ववत् जानना चाहिए। धातकीखण्ड से मरकर लवणसमुद्र में पैदा होने के विषय में भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र, लवणसमुद्र क्यों कहलाता है ?

गौतम ! लवणसमुद्र का पानी अस्वच्छ है, रजवाला है, नमकीन है, लिन्द्र (गोबर जैसे स्वाद वाला) है, खारा है, कडुआ है, द्विपद-चतुष्पद-मृग-पशु-पक्षी-सरीसृपों के लिए वह अपेय है, केवल लवणसमुद्रयोनिक जीवों के लिए ही यह पेय है, (तद्योनिक होने से वे जीव ही उसका आहार करते हैं।) लवणसमुद्र का अधिपति सुस्थित नामक देव है जो महर्द्धिक है, पल्योपम की स्थिति वाला है। यह अपने सामानिक देवों आदि अपने परिवार का और लवणसमुद्र की सुस्थिता राजधानी और अन्य बहुत से वहां के निवासी देव-देवियों का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। इस कारण हे गौतम ! लवणसमुद्र, लवणसमुद्र कहलाता है। दूसरी बात गौतम ! यह है कि "लवणसमुद्र" यह नाम शाश्वत है यावत् नित्य है। (इसलिए यह नाम अनिमित्तिक है।)

१५५. लवणे णं भंते ! समुद्दे कति चंदा पभासिसु वा पभासिति वा पभासिस्संति वा ? एवं पंचण्ह वि पुच्छा। गोयमा ! लवणसमुद्दे चत्तारि चंदा पभासिसु वा ३, चत्तारि सूरिया तविसु वा ३, बारसुत्तरं नक्खत्तसयं जोगं जोएंसु वा ३, तिण्णि बावण्णा महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३, दुण्णिसयसहस्सा सत्तट्ठि च सहस्सा नव य सया तारागणकोडाकोडीणं सोभं सोभिंसु वा ३।

१५५. हे भगवन् ! लवणसमुद्र में कितने चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं और उद्योत करेंगे ? इस प्रकार चन्द्र को मिलाकर पांचों ज्योतिष्कों के विषय में प्रश्न समझने चाहिए।

गौतम ! लवणसमुद्र में चार चन्द्रमा उद्योत करते थे, करते हैं और करेंगे। चार सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे, एक सौ बारह नक्षत्र चन्द्र से योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे।

---

१. एक-एक द्वार की पृथुता चार-चार योजन की है। एक-एक द्वार में एक-एक कोस मोटी दो शाखाएं हैं। एक द्वार की पूरी पृथुता साढ़े चार योजन की है। चारों द्वारों की पृथुता १८ योजन की है। लवणसमुद्र की परिधि में १८ योजन कम करके चार का भाग देने से उक्त अन्तर आता है।

तीन सौ बावन महाग्रह चार चरते थे, चार चरते हैं और चार चरेंगे। दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।[1]

जलवृद्धि का कारण

१५६. कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु अतिरेगं अतिरेगं वड्ढति वा हायति वा ?

गोयमा ! जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चउद्दिसिं बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पंचाणउइं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि महालिंजरसंठाणसंठिया महइमहालया महापायाला पण्णत्ता, तं जहा—वलयामुहे, केउए, जूवे, ईसरे। ते णं महापाताला एगमेगं जोयणसयसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं मज्झे एगपएसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसयसहस्सं विक्खंभेणं, उवरिं मुहमूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं।

तेसिं णं महापायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दसजोयणसयबाहल्ला पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति सासया णं ते कुड्डा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं असासया। तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, तं जहा—काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे।

तेसिं णं महापायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, तं जहा हेट्ठिल्ले तिभागे, मज्झिल्ले तिभागे, उवरिल्ले तिभागे। ते णं तिभागा तेत्तीसं जोयणसहस्सा तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसयं जोयणतिभागं च बाहल्लेणं। तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ संचिट्ठइ। तत्थ णं जे से मज्झिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाए य आउकाए य संचिट्ठइ। तत्थ णं जे से उवरिल्ले तिभागे एत्थ णं आउकाए संचिट्ठइ। अदुत्तरं च गोयमा ! लवणसमुद्दे तत्थ तत्थ देसे बहवे खुड्डालिंजरसंठाणसंठिया खुड्डपायालकलसा पण्णत्ता। ते णं खुड्डापायाला एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं, मज्झे एगपएसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं उप्पि मुहमूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं।

तेसिं णं खुड्डागपायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य जाव असासया वि। पत्तेयं पत्तेयं अद्धपलिओवमट्ठिइयाहिं देवयाहिं परिग्गहिया।

---

१. चत्तारि चेव चन्दा चत्तारि य सूरिया लवणतोए।
बारं नक्खत्तसयं गहाण तिन्नेव बावन्ना ॥ १ ॥
दो चेव सयसहस्सा सत्तट्ठी खलु भवे सहस्सा य।
नव य सया लवणजले तारागणकोडिकोडीणं ॥ २ ॥

लवणसमुद्र में तारागणों की संख्या अंकों में—

२६७९०००००००००००००००० इतनी है।

तेसि णं खुड्डगपायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, तं जहा—

हेट्ठिल्ले तिभागे, मज्झिल्ले तिभागे, उवरिल्ले तिभागे। ते णं तिभागा तिण्णि तेत्तीसे जोयणसए जोयणतिभागं च बाहल्लेणं पण्णत्ते। तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाए, मज्झिल्ले तिभागे वाउकाए आउकाए य, उवरिल्ले आउकाए। एवामेव सपुव्वावरेणं लवणसमुद्दे सत्त पायालसहस्सा अट्ठ य चुलसीया पायालसया भवंतीति मक्खाया।

तेसि णं महापायालाणं खुड्डगपायालाण य हेट्ठिममज्झिमिल्लेसु तिभागेसु बहवे ओराला वाया संसेयंति संमुच्छिमंति एयंति चलंति कंपंति खुब्भंति घट्टंति फंदंति, तं तं भावं परिणमंति, तया णं से उदए उण्णामिज्जइ, जया णं तेसि महापायालाणं खुड्डगपायालाण य हेट्ठिल्लमज्झिमिल्लेसु तिभागेसु नो बहवे ओराला जाव तं तं भावं न परिणमंति, तया णं से उदए न उन्नामिज्जइ। अंतरा वि य णं तेवायं उदीरेंति, अंतरा वि य णं से उदगे उन्नामिज्जइ, अंतरा वि य ते वायं नो उदीरेंति, अंतरा वि य णं से उदए नो उन्नामिज्जइ, एवं खलु गोयमा! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुदिट्ठपुण्णमासिणीसु अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा।

१५६. हे भगवन्! लवणसमुद्र का पानी चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथियों में अतिशय बढ़ता है और फिर कम हो जाता है, इसका क्या कारण है?

हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप की चारों दिशाओं में बाहरी वेदिकान्त से लवणसमुद्र में पिच्यानवें हजार (९५०००) योजन आगे जाने पर महाकुम्भ के आकार के बहुत विशाल चार महापातालकलश हैं, जिनके नाम हैं—वलयामुख, केयूप, यूप और ईश्वर। ये पातालकलश एक लाख योजन जल में गहरे प्रविष्ट हैं, मूल में इनका विष्कम्भ दस हजार योजन है और वहां से एक-एक प्रदेश की एक-एक श्रेणी से वृद्धिगत होते हुए मध्य में एक-एक लाख योजन चौड़े हो गये हैं। फिर एक-एक प्रदेश श्रेणी से हीन होते-होते ऊपर मुखमूल में दस हजार योजन के चौड़े हो गये हैं।[1]

इन पातालकलशों की भित्तियां सर्वत्र समान हैं। ये सब एक हजार योजन की मोटी हैं। ये सर्वथा वज्ररत्न की हैं, आकाश और स्फटिक के समान स्वच्छ हैं, यावत् प्रतिरूप हैं। इन कुड्यों (भित्तियों) में बहुत से जीव उत्पन्न होते हैं और निकलते हैं, बहुत से पुद्गल एकत्रित होते रहते हैं और बिखरते रहते हैं, यहां पुद्गलों का चय-अपचय होता रहता है। ये कुड्य (भित्तियां) द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से शाश्वत हैं और वर्ण-गंध-रस-स्पर्शादि पर्यायों से अशाश्वत हैं। उन पातालकलशों में पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं, उनके नाम हैं—काल, महाकाल, वेलंब और प्रभंजन।

उन महापातालकलशों के तीन त्रिभाग कहे गये हैं—१. निचला त्रिभाग, २. मध्य का त्रिभाग और ३. ऊपर का त्रिभाग। ये प्रत्येक त्रिभाग तेतीस हजार तीन सौ तेतीस योजन और एक योजन का त्रिभाग (३३३३३⅓) जितने मोटे हैं। इनके निचले त्रिभाग में वायुकाय है, मध्यम त्रिभाग में

---

१. उक्तं च—जोयणसहस्सदसगं मूले उवरिं च होंति विच्छिन्ना।
मज्झे य सयसहस्सं तित्तियमेत्तं च ओगाढा॥ —संग्रहणीगाथा

वायुकाय और अप्काय है और ऊपर के त्रिभाग में केवल अप्काय है। इसके अतिरिक्त हे गौतम ! लवणसमुद्र में इन महापातालकलशों के बीच में छोटे कुम्भ की आकृति के छोटे-छोटे बहुत से छोटे पातालकलश हैं। वे छोटे पातालकलश एक-एक हजार योजन पानी में गहरे प्रविष्ट हैं, एक-एक सौ योजन की चौड़ाई वाले हैं और एक-एक प्रदेश की श्रेणी से वृद्धिगत होते हुए मध्य में एक हजार योजन के चौड़े हो गये हैं और फिर एक-एक प्रदेश की श्रेणी से हीन होते हुए मुखमूल में ऊपर एक-एक सौ योजन के चौड़े रह गये हैं।[1]

उन छोटे पातालकलशों की भित्तियां सर्वत्र समान हैं और दस योजन की मोटी हैं, सर्वात्मना वज्रमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं। उनमें बहुत से जीव उत्पन्न होते हैं, निकलते हैं, बहुत से पुद्‌गल एकत्रित होते हैं, बिखरते हैं, उन पुद्‌गलों का चय-अपचय होता रहता है। वे भित्तियां द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत हैं और वर्णादि पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत हैं। उन छोटे पातालकलशों में प्रत्येक में अर्धपल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

उन छोटे पातालकलशों के तीन त्रिभाग कहे गये हैं—१. निचला त्रिभाग, २. मध्य का त्रिभाग और ३. ऊपर का त्रिभाग। ये त्रिभाग तीन सौ तेतीस योजन और योजन का त्रिभाग (३३३⅓) प्रमाण मोटे हैं। इनमें से निचले त्रिभाग में वायुकाय है, मझले त्रिभाग में वायुकाय और अप्काय है और ऊपर के त्रिभाग में अप्काय है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर लवणसमुद्र में सात हजार आठ सौ चौरासी (७८८४) पातालकलश कहे गये हैं।

उन महापाताल और क्षुद्रपाताल कलशों के निचले और बिचले त्रिभागों में बहुत से ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाले अथवा प्रबल शक्ति वाले वायुकाय उत्पन्न होने के अभिमुख होते हैं, संमूर्च्छन जन्म से आत्मलाभ करते हैं, कंपित होते हैं, विशेषरूप से कंपित होते हैं, जोर से चलते हैं, परस्पर में घर्षित होते हैं, शक्तिशाली होकर इधर-उधर और ऊपर फैलते हैं, इस प्रकार वे भिन्न-भिन्न भाव में परिणत होते हैं तब वह समुद्र का पानी उनसे क्षुभित होकर ऊपर उछाला जाता है। जब उन महापाताल और क्षुद्रपाताल कलशों के निचले और बिचले त्रिभागों में बहुत से प्रबल शक्ति वाले वायुकाय उत्पन्न नहीं होते यावत् उस-उस भाव में परिणत नहीं होते तब वह पानी नहीं उछलता है। अहोरात्र में दो बार (प्रतिनियत काल में) और पक्ष में चतुर्दशी आदि तिथियों में (तथाविध जगत्स्वभाव से) लवणसमुद्र का पानी उन वायुकाय से प्रेरित होकर विशेष रूप से उछलता है। प्रतिनियत काल को छोड़कर अन्य समय में नहीं उछलता है।[2] इसलिए हे गौतम ! लवणसमुद्र का जल चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या

१. उक्तं च—जोयणसयविच्छिण्णा मूले उवरिं दससयाणि मज्झंमि।
बोगाढा य सहस्सं दसजोयणिया य से कुड्डा॥ —संग्रहणीगाथा

२. उक्तं च—अन्ने वि य पायाला खुड्डालंजरगसंठिया लवणे।
अट्ठसया चुलसीया सत्त सहस्सा य सव्वे वि॥१॥
पायालाण विभागा सव्वाण वि तिन्नि तिन्नि विन्नेया।
हेट्ठिमभागे वाऊ, मज्झे वाऊ य उदगं य॥२॥
उवरिं उदगं भनियं पढमगबीएसु वाउ संखुभिओ।
उड्ढं वामेइ उदगं परिवड्ढइ जलनिही खुभिओ॥३॥ —संग्रहणीगाथाएं

और पूर्णिमा तिथियों में विशेष रूप से बढ़ता है और घटता है (अर्थात् लवणसमुद्र में ज्वार और भाटा का क्रम चलता है। जब उन्नामक वायुकाय का सद्भाव होता है तब जलवृद्धि और जब उन्नामक वायु का अभाव होता है तब जलवृद्धि का अभाव होता है।)

१५७. लवणे णं भंते ! समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं कतिखुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्डइ वा हायइ वा ?

गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्डइ वा हायइ वा। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चई, लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्डइ वा हायइ वा ? गोयमा ! उड्डमंतेसु पायालेसु वड्डइ आपूरिएसु पायालेसु हायइ, से तेणट्ठेणं, गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्डइ वा हायइ वा।

१५७. हे भगवन् ! लवणसमुद्र (का जल) तीस मुहूर्तों में (एक अहोरात्र में) कितनी बार विशेषरूप से बढ़ता है या घटता है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र का जल तीस मुहूर्तों में (एक अहोरात्र में) दो बार विशेष रूप से उछलता है और घटता है।

हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है कि लवणसमुद्र का जल तीस मुहूर्तों में दो बार विशेष रूप से उछलता है और फिर घटता है ?

हे गौतम ! निचले और मध्य के त्रिभागों में जब वायु के संक्षोभ से पातालकलशों में से पानी ऊँचा उछलता है तब समुद्र में पानी बढ़ता है और जब वे पातालकलश वायु के स्थिर होने पर जल से आपूरित बने रहते हैं, तब पानी घटता है। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि लवणसमुद्र तीस मुहूर्तों में दो बार विशेष रूप से उछलता है और घटता है। (तथाविध जगत्-स्वभाव होने से ऐसी स्थिति एक अहोरात्र में दो बार होती है।)

लवणशिखा की वक्तव्यता

१५८. लवणसिहा णं भंते ! केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं अइरेगं वड्डइ वा हायइ वा ? गोयमा ! लवणसिहा णं दस जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं देसूणं अद्धजोयणं अइरेगं वड्डइ वा हायइ वा।

लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स कति णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारेंति ? कइ नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति ? कइ नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति ? गोयमा ! लवणसमुद्दस्स बायालीसं णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारेंति, बावत्तरिं णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति, सट्ठिं णागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति, एवमेव सपुव्वावरेण एगा णागसयसाहस्सी चोवत्तरिं च णागसहस्सा भवंतीति मक्खाया।

१५८. हे भगवन् ! लवणसमुद्र की शिखा चक्रवालविष्कम्भ से कितनी चौड़ी है और कितनी बढ़ती है और कितनी घटती है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र की शिखा चक्रवालविष्कंभ की अपेक्षा दस हजार योजन चौड़ी है और कुछ कम आधे योजन तक वह बढ़ती है और घटती है।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को कितने हजार नागकुमार देव धारण करते हैं ? बाह्य वेला को कितने हजार नागकुमार देव धारण करते हैं ? कितने हजार नागकुमार देव अग्रोदक को धारण करते हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को बयालीस हजार नागकुमार देव धारण करते हैं। बाह्यवेला को बहत्तर हजार नागकुमार देव धारण करते हैं। साठ हजार नागकुमार देव अग्रोदक को धारण करते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर इन नागकुमारों की संख्या एक लाख चौहत्तर हजार कही गई है।

विवेचन—लवणसमुद्र की शिखा सब ओर से चक्रवालविष्कंभ से समप्रमाण वाली और दस हजार योजन चक्रवाल विस्तार वाली है। वह शिखा कुछ कम अर्धयोजन (दो कोस) प्रमाण अतिशय से बढ़ती है और उतनी ही घटती है। इसकी स्पष्टता इस प्रकार है—

लवणसमुद्र में जम्बूद्वीप से और धातकीखण्ड द्वीप से पंचानवै-पंचानवै हजार योजन तक गोतीर्थ है। गोतीर्थ का अर्थ है तडागादि में प्रवेश करने का क्रमशः नीचे-नीचे का भूप्रदेश। मध्यभाग का अवगाह दस हजार योजन का है। जम्बूद्वीप की वेदिकान्त के पास और धातकीखण्ड की वेदिका के पास अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण गोतीर्थ है। इसके आगे समतल भूभाग से लेकर क्रमशः प्रदेशहानि से तब तक उत्तरोत्तर नीचा-नीचा भूभाग समझना चाहिए, जहां तक पंचानवै हजार योजन की दूरी आ जाय। पंचानवै हजार योजन की दूरी तक समतल भूभाग की अपेक्षा एक हजार योजन की गहराई है। इसलिए जम्बूद्वीपवेदिका और धातकीखण्डवेदिका के पास उस समतल भूभाग में जलवृद्धि अंगुलासंख्येय भाग प्रमाण होती है। इससे आगे समतल भूभाग में प्रदेशवृद्धि से जलवृद्धि क्रमशः बढ़ती हुई जाननी चाहिए, जब तक दोनों ओर ९५ हजार योजन की दूरी आ जाय। वहां समतल भूभाग की अपेक्षा सात सौ योजन की जलवृद्धि होती है। अर्थात् वहां समतल भूभाग से एक हजार योजन की गहराई है और उसके ऊपर सात सौ योजन की जलवृद्धि होती है। उससे आगे मध्यभाग में दश हजार योजन विस्तार में एक हजार योजन की गहराई है और जलवृद्धि सोलह हजार योजन प्रमाण है। पाताल-कलशगत वायु के क्षुभित होने से उनके ऊपर एक अहोरात्र में दो बार कुछ कम दो कोस प्रमाण अतिशय रूप में उदक की वृद्धि होती है और जब पातालकलशगत वायु उपशान्त होता है, तब वह जलवृद्धि नहीं होती है। यही बात इन गाथाओं में कही है—

पंचाणउयसहस्से गोतित्थं उभयओ वि लवणस्स।
जोयणसयाणि सत्त उदग परिवुड्ढीवि उभयो वि॥ १॥

दसजोयणसाहस्सा लवणसिहा चक्कवालओ रुंदा।
सोलससहस्स उच्चा सहस्समेगं च ओगाढा॥ २॥

देसूणमद्धजोयण लवणसिहोवरि दुगं दुवे कालो।

लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को अर्थात् जम्बूद्वीप की ओर बढ़ती हुई शिखा को और उस पर बढ़ते हुए जल को सीमा से आगे बढ़ने से रोकने वाले भवनपतिनिकाय के अन्तर्गत आने वाले बयालीस हजार नागकुमार देव है। इसी तरह लवणसमुद्र की बाह्य वेला अर्थात् धातकीखण्ड की ओर अभिमुख होकर बढ़ने वाली शिखा और उसके ऊपर की अतिरेक वृद्धि को आगे बढ़ने से रोकने वाले बहत्तर हजार नागकुमार देव हैं। लवणसमुद्र के अग्रोदक को (देशोन अर्धयोजन से ऊपर बढने वाले जल को) रोकने वाले साठ हजार नागकुमार देव हैं। ये नागकुमार देव लवणसमुद्र की वेला को मर्यादा में रखते हैं। इन सब वेलंधर नागकुमारों की सख्या एक लाख चौहत्तर हजार है।

१५९. (अ)—कति णं भंते ! वेलंधरा णागराया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि वेलंधरा णागराया पण्णत्ता, तं जहा—गोथूभे, सिवए, संखे, मणोसिलए।

एतेसि णं भंते ! चउण्हं वेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वया पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—गोथूभे, उदगभासे, संखे, दगसीमाए।

कहि णं भंते ! गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ? गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिमेणं लवणं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते सत्तरस एकवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि तीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं मूले दसबावीसे जोयणसए आयामविक्खंभेणं, मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसए उवरिं चत्तारि चउवीसे जोयणसए आयामविक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, मज्झे दो जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे जाव पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। दोण्ह वि वण्णओ।

गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए बावट्ठं जोयणद्धं च उड्ढं उच्चत्तेणं तं चेव पमाणं अद्धं आयामविक्खंभेणं वण्णओ जाव सीहासणं सपरिवारं।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ गोथूभे आवासपव्वए गोथूभे आवासपव्वए ?

गोयमा ! गोथूभे णं आवासपव्वए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ जाव गोथूभवण्णाइं बहुइं उप्पलाइं तहेव जाव गोथूभे तत्थ देवे महिड्डिए जाव पलिओवमट्ठईए परिवसति। से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव गोथूभगस्स आवासपव्वयस्स गोथूभाए रायहाणीए जाव विहरइ। से तेणट्ठेणं जाव णिच्चा।

रायहाणी पुच्छा ? गोयमा ! गोथूभस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णम्मि लवणसमुद्दे तं चेव पमाणं तहेव सव्वं।

१५९. (अ) हे भगवन् ! वेलंधर नागराज कितने कहे गये हैं ? गौतम ! वेलंधर नागराज चार कहे गये हैं, उनके नाम हैं गोस्तूप, शिवक, शंख और मनःशिलाक।

हे भगवन् ! इन चार वेलंधर नागराजों के कितने आवासपर्वत कहे गये हैं ? गौतम ! चार आवासपर्वत कहे गये हैं। उनके नाम हैं—गोस्तूप, उदकभास, शंख और दकसीम।

हे भगवन् ! गोस्तूप वेलंधर नागराज का गोस्तूप नामक आवासपर्वत कहां है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के पूर्व में लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर गोस्तूप वेलंधर नागराज का गोस्तूप नाम का आवासपर्वत है। वह सत्रह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊंचा, चार सौ तीस योजन एक कोस पानी में गहरा, मूल में दस सौ बाईस (१०२२) योजन लम्बा-चौड़ा, बीच में सात सौ तेईस (७२३) योजन लम्बा-चौड़ा और ऊपर चार सौ चौबीस (४२४) योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि मूल में तीन हजार दो सौ बत्तीस (३२३२) योजन से कुछ कम, मध्य में दो हजार दो सौ चौरासी (२२८४) योजन से कुछ अधिक और ऊपर एक हजार तीन सौ इकतालीस (१३४१) योजन से कुछ कम है। वह मूल में विस्तीर्ण मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतला है, गोपुच्छ के आकार से संस्थित है, सर्वात्मना कनकमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से चारों ओर से परिवेष्टित है। दोनों का वर्णन कहना चाहिए।

गोस्तूप आवासपर्वत के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है, आदि सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् वहां बहुत से नागकुमार देव और देवियां स्थित होती हैं। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के बहुमध्य देशभाग में एक बड़ा प्रासादावतंसक है जो साढ़े बासठ योजन ऊंचा है, सवा इकतीस योजन का लम्बा-चौड़ा है, आदि वर्णन विजयदेव के प्रासादावतंसक के समान जानना चाहिए यावत् सपरिवार सिंहासन का कथन करना चाहिए।

हे भगवन् ! गोस्तूप आवासपर्वत, गोस्तूप आवासपर्वत क्यों कहा जाता है ?

हे गौतम ! गोस्तूप आवासपर्वत पर बहुत-सी छोटी-छोटी बावड़ियां आदि हैं, जिनमें गोस्तूप वर्ण के बहुत सारे उत्पल कमल आदि हैं यावत् वहां गोस्तूप नामक महर्धिक और एक पल्योपम की स्थितिवाला देव रहता है। वह गोस्तूप देव चार हजार सामानिक देवों यावत् गोस्तूप आवासपर्वत और गोस्तूपा राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। इस कारण वह गोस्तूप आवासपर्वत कहा जाता। यावत् वह गोस्तूपा आवासपर्वत (द्रव्य से) नित्य है। अतएव उसका यह नाम अनादिकाल से चला आ रहा है।

हे भगवन् ! गोस्तूप देव की गोस्तूपा राजधानी कहां है ? हे गौतम ! गोस्तूप आवासपर्वत के पूर्व में तिर्यक्दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने के बाद अन्य लवणसमुद्र में गोस्तूपा राजधानी है। उसका प्रमाण आदि वर्णन विजया राजधानी की तरह कहना चाहिए।

१५९. (आ) कहि णं भंते ! सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासणामे आवासपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते, तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स, णवरि सव्वअंकामए अच्छे जाव पडिरूवे जाव अट्ठो भाणियव्वो। गोयमा ! दओभासे णं आवासपव्वए लवणसमुद्दे अट्ठजोयणियखेत्ते दगं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोवेइ, तवेइ, पभासेइ, सिवए एत्थ देवे महिड्ढिए जाव रायहाणी से दक्खिणेणं सिविगा दओभासस्स सेसं तं चेव।

कहि णं भंते ! संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं बायालीसं जोयणसहस्साइं एत्थ णं संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वए, तं चेव पमाणं, णवरं सव्वरयणामए अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण जाव अट्ठो बहुओ खुड्डा खुड्डियाओ जाव बहूइं उप्पलाइं संखाभाइं संखवण्णाइं। संखे एत्थ देवे महिड्ढिए जाव रायहाणीए, पच्चत्थिमेणं संखस्स आवासपव्वयस्स संखा नाम रायहाणी, तं चेव पमाणं।

कहि णं भंते ! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स उत्तरेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते, तं चेव पमाणं। णवरि सव्वफलिहामए अच्छे जाव अट्ठो; गोयमा ! दगसीमंते णं आवासपव्वए सीतासीतोदगाणं महाणदीणं तत्थ गए सोए पडिहम्मइ, से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे, मणोसिलए एत्थ देवे महिड्ढिए जाव से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव विहरइ।

कहि णं भंते ! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स मणोसिलाणामं रायहाणी ? गोयमा ! दगसीमस्स आवासपव्वयस्स उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वोईवइत्ता अण्णम्मि लवणसमुद्दे एत्थ णं मणोसिलिया णामं रायहाणी पण्णत्ता, तं चेव पमाणं जाव मणोसिलए देवे।

कणगंकरयय-फालिहमया य वेलंधराणमावासा।
अणुवेलंधरराईण पव्वया होंति रयणमया॥

१५९. (आ) हे भगवन् ! शिवक वेलंधर नागराज का दकाभास नामक आवास पर्वत कहां है ? गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण में लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर शिवक वेलंधर नागराज का दकाभास नामका आवासपर्वत है। जो गोस्तूप आवासपर्वत का प्रमाण है, वही इसका प्रमाण है। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना अंकरत्नमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। यावत् यह दकाभास क्यों कहा जाता है ? गौतम ! लवणसमुद्र में दकाभास नामक आवासपर्वत आठ योजन के क्षेत्र में पानी को सब ओर अति विशुद्ध अंकरत्नमय होने से अवभासित करता है, (चन्द्र की तरह) उद्योतित करता है, (सूर्य की तरह) तापित करता है, (ग्रह की तरह) चमकाता है तथा शिवक नाम का महर्द्धिक देव यहां रहता है, इसलिए यह दकाभास कहा जाता है। यावत् शिवका राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। यह शिवका राजधानी दकाभास पर्वत के दक्षिण में अन्य लवणसमुद्र में है, आदि कथन विजया राजधानी की तरह कहना चाहिए।

हे भगवन् ! शंख नामक वेलंधर नागराज का शंख नामक आवासपर्वत कहां है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर शंख वेलंधर नागराज का शंख नामक आवासपर्वत है। उसका प्रमाण गोस्तूप की तरह है। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना रत्नमय है, स्वच्छ है। वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से घिरा हुआ है यावत् यह शंख नामक आवासपर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! उस शंख आवासपर्वत पर छोटी छोटी वावड़ियां आदि हैं, जिनमें बहुत से कमलादि हैं। जो शंख की आभावाले, शंख के रंगवाले हैं और शंख की आकृति वाले हैं तथा वहां शंख नामक महर्द्धिक देव रहता है। वह शंख नामक राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। शंख नामक राजधानी शंख आवासपर्वत के पश्चिम में है, आदि विजया राजधानीवत् प्रमाण आदि कहना चाहिए।

हे भगवन् ! मनःशिलक वेलंधर नागराज का दकसीम नामक आवासपर्वत किस स्थान पर है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत की उत्तरदिशा में लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर मनःशिलक वेलंधर नागराज का दकसीम नाम का आवासपर्वत है। उसका प्रमाण आदि पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना स्फटिक रत्नमय है, स्वच्छ है यावत् यह दकसीम क्यों कहा जाता है ? गौतम ! इस दकसीम आवासपर्वत से शीता-शीतोदा महानदियों का प्रवाह यहां आकर प्रतिहत हो जाता है—लौट जाता है। इसलिए यह उदक की सीमा करने वाला होने से "दकसीम" कहलाता है। यह शाश्वत (नित्य) है इसलिए यह नाम अनिमित्तक भी है। यहां मनःशिलक नाम का महर्द्धिक देव रहता है यावत् वह चार हजार सामानिक देवों आदि का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। हे भगवन् ! मनःशिलक वेलंधर नागराज की मनःशिला राजधानी कहां है ? गौतम ! दकसीम आवासपर्वत के उत्तर में तिरछी दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में मनःशिला नाम की राजधानी है। उसका प्रमाण आदि सब वक्तव्यता विजया राजधानी के तुल्य कहना चाहिए यावत् वहां मनःशिलक नामक देव महर्द्धिक और एक पल्योपम की स्थिति वाला रहता है। वेलंधर नागराजों के आवासपर्वत क्रमशः कनकमय, अंकरत्नमय, रजतमय और स्फटिकमय हैं। अनुवेलंधर नागराजों के पर्वत रत्नमय ही हैं।

१६०. कहि णं भंते ! अणुवेलंधरणागरायाओ पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि अणुवेलंधर-णागरायाओ पण्णत्ता, तं जहा—कक्कोडए, कद्दमए, केलासे, अरुणप्पभे।

एतेसि णं भंते ! चउण्हं अणुवेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वया पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—कक्कोडए, कद्दमए, केलासे, अरुणप्पभे।

कहि णं भंते ! कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ? गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं कक्कोडगस्स नागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते, सत्तरस-इक्कवीसाइं जोयणसयाइं तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स णवरि सव्वरयणामए अच्छे जाव निरवसेसं जाव सपरिवारं; अट्ठो से बहूइं उप्पलाइं कक्कोडगप्पभाइं सेसं तं चेव णवरि कक्कोडगपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं, एवं तं चेव सव्वं।

कद्दमस्स वि सो चेव गमो अपरिसेसिओ, णवरि दाहिणपुरत्थिमेणं आवासो विज्जुप्पभा रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं।

कइलासे वि एवं चेव णवरि दाहिणपच्चत्थिमेणं केलासा वि रायहाणी तए चेव दिसाए।

अरुणप्पभे वि उत्तरपच्चत्थिमेणं रायहाणी वि ताए चेव दिसाए। चत्तारि वि एगप्पमाणा सव्वरयणामया य।

१६०. हे भगवन् ! अनुवेलंधर नागराज (वेलंधरों की आज्ञा में चलने वाले) कितने है ? गौतम ! अनुवेलंधर नागराज चार हैं, उनके नाम है—कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ।

हे भगवन् ! इन चार अनुवेलंधर नागराजों के कितने आवासपर्वत हैं ? गौतम ! चार आवासपर्वत हैं, यथा—कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ।

हे भगवन् ! कर्कोटक अनुवेलंधर नागराज का कर्कोटक नाम का आवासपर्वत कहां है ?

गौतम ! जंबूद्वीप के मेरुपर्वत के उत्तर-पूर्व में (ईशानकोण में) लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर कर्कोटक नागराज का कर्कोटक नामक आवासपर्वत है जो सत्रह सौ इकवीस (१७२१) योजन ऊंचा है आदि वही प्रमाण कहना चाहिए जो गोस्तूप पर्वत का है। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना रत्नमय है, स्वच्छ है यावत् सपरिवार सिंहासन तक सब वक्तव्यता पूर्ववत् जानना चाहिए। कर्कोटक नाम देने का कारण यह है कि यहां की बावड़ियों आदि में जो उत्पल कमल आदि हैं, वे कर्कोटक के आकार-प्रकार और वर्ण के हैं। शेष पूर्ववत् कहना चाहिए। यावत् उसकी राजधानी कर्कोटक पर्वत के उत्तर-पूर्व में तिरछे असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में है। प्रमाण आदि सब पूर्ववत् है।

१. कर्दम नामक[1] आवासपर्वत के विषय में भी पूरा वर्णन पूर्ववत् है। विशेषता यह है कि मेरुपर्वत के दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण) में लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन जाने पर यह कर्दम-पर्वत स्थित है। विद्युत्प्रभा इसकी राजधानी है जो इस आवासपर्वत से दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण) में असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में है, आदि वर्णन पूर्वोक्त विजया राजधानी की तरह जानना चाहिए।

कैलाश नामक आवासपर्वत के विषय में पूरा वर्णन पूर्ववत् है। विशेषता यह है कि यह मेरु से दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) में है। इसकी राजधानी कैलाशा है और वह कैलाशपर्वत के दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) में असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में है।

अरुणप्रभ नामक आवासपर्वत मेरुपर्वत के उत्तर-पश्चिम (वायव्यकोण) में है। राजधानी भी अरुणप्रभ आवासपर्वत के वायव्यकोण में असंख्य द्वीप-समुद्रों के बाद अन्य लवणसमुद्र में है। शेष सब वर्णन विजया राजधानी की तरह है। ये चारों आवासपर्वत एक ही प्रमाण के हैं और सर्वात्मना रत्नमय हैं।

---

१. कर्दम आवासपर्वत का देव स्वभावतः यक्षकर्दमप्रिय है। यक्षकर्दम का अर्थ है—कुंकुम, अगुरु,कपूर, कस्तूरी, चन्दन आदि के मिश्रण से जो सुगन्धित द्रव्य निर्मित होता है, वह यक्षकर्दम है। पूर्वपद का लोप होने से कर्दम कहा गया है।

हे भगवन् ! शंख नामक वेलंधर नागराज का शंख नामक आवासपर्वत कहां है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर शंख वेलंधर नागराज का शंख नामक आवासपर्वत है। उसका प्रमाण गोस्तूप की तरह है। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना रत्नमय है, स्वच्छ है। वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से घिरा हुआ है यावत् यह शंख नामक आवासपर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! उस शंख आवासपर्वत पर छोटी छोटी बावड़ियां आदि हैं, जिनमें बहुत से कमलादि हैं। जो शंख की आभावाले, शंख के रंगवाले हैं और शंख की आकृति वाले हैं तथा वहां शंख नामक महर्द्धिक देव रहता है। वह शंख नामक राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। शंख नामक राजधानी शंख आवासपर्वत के पश्चिम में है, आदि विजया राजधानीवत् प्रमाण आदि कहना चाहिए।

हे भगवन् ! मनःशिलक वेलंधर नागराज का दकसीम नामक आवासपर्वत किस स्थान पर है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत की उत्तरदिशा में लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर मनःशिलक वेलंधर नागराज का दकसीम नाम का आवासपर्वत है। उसका प्रमाण आदि पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना स्फटिक रत्नमय है, स्वच्छ है यावत् यह दकसीम क्यों कहा जाता है ? गौतम ! इस दकसीम आवासपर्वत से शीता-शीतोदा महानदियों का प्रवाह यहां आकर प्रतिहत हो जाता है—लौट जाता है। इसलिए यह उदक की सीमा करने वाला होने से "दकसीम" कहलाता है। यह शाश्वत (नित्य) है इसलिए यह नाम अनिमित्तक भी है। यहां मनःशिलक नाम का महर्द्धिक देव रहता है यावत् वह चार हजार सामानिक देवों आदि का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। हे भगवन् ! मनःशिलक वेलंधर नागराज की मनःशिला राजधानी कहां है ? गौतम ! दकसीम आवासपर्वत के उत्तर में तिरछी दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में मनःशिला नाम की राजधानी है। उसका प्रमाण आदि सब-वक्तव्यता विजया राजधानी के तुल्य कहना चाहिए यावत् वहां मनःशिलक नामक देव महर्द्धिक और एक पल्योपम की स्थिति वाला रहता है। वेलंधर नागराजों के आवासपर्वत क्रमशः कनकमय, अंकरत्नमय, रजतमय और स्फटिकमय हैं। अनुवेलंधर नागराजों के पर्वत रत्नमय ही हैं।

१६०. कहि णं भंते ! अणुवेलंधरणागरायाओ पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि अणुवेलंधरणागरायाओ पण्णत्ता, तं जहा—कक्कोडए, कद्दमए, कैलासे, अरुणप्पभे।

एतेसिं भंते ! चउण्हं अणुवेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वया पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—कक्कोडए, कद्दमए, केलासे, अरुणप्पभे।

कहि णं भंते ! कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ? गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं कक्कोडगस्स नागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते, सत्तरस-इक्कवीसाइं जोयणसयाइं तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स णवरि सव्वरयणामए अच्छे जाव निरवसेसं जाव सपरिवारं; अट्ठो से बहूइं उप्पलाइं कक्कोडगप्पभाइं सेसं तं चेव णवरि कक्कोडगपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं, एवं तं चेव सव्वं।

कद्दमस्स वि सो चेव गमो अपरिसेसिओ, णवरि दाहिणपुरत्थिमेणं आवासो विज्जुप्पभा यहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं।

कइलासे वि एवं चेव णवरि दाहिणपच्चत्थिमेणं केलासा वि रायहाणी तए चेव दिसाए।

अरुणप्पभे वि उत्तरपच्चत्थिमेणं रायहाणी वि ताए चेव दिसाए। चत्तारि वि एगप्पमाणा व्वरयणामया य।

१६०. हे भगवन्! अनुवेलंधर नागराज (वेलंधरों की आज्ञा में चलने वाले) कितने हैं? तम! अनुवेलंधर नागराज चार हैं, उनके नाम हैं—कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ।

हे भगवन्! इन चार अनुवेलंधर नागराजों के कितने आवासपर्वत हैं? गौतम! चार ावासपर्वत हैं, यथा—कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ।

हे भगवन्! कर्कोटक अनुवेलंधर नागराज का कर्कोटक नाम का आवासपर्वत कहां है?

गौतम! जंबूद्वीप के मेरुपर्वत के उत्तर-पूर्व में (ईशानकोण में) लवणसमुद्र में बयालीस हजार ोजन आगे जाने पर कर्कोटक नागराज का कर्कोटक नामक आवासपर्वत है जो सत्रह सौ इकवीस १७२१) योजन ऊंचा है आदि वही प्रमाण कहना चाहिए जो गोस्तूप पर्वत का है। विशेषता यह है क यह सर्वात्मना रत्नमय है, स्वच्छ है यावत् सपरिवार सिंहासन तक सब वक्तव्यता पूर्ववत् जानना ाहिए। कर्कोटक नाम देने का कारण यह है कि यहां की बावड़ियों आदि में जो उत्पल कमल आदि , वे कर्कोटक के आकार-प्रकार और वर्ण के हैं। शेष पूर्ववत् कहना चाहिए। यावत् उसकी राजधानी र्कोटक पर्वत के उत्तर-पूर्व में तिरछे असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में है। माण आदि सब पूर्ववत् है।

१. कर्दम नामक[1] आवासपर्वत के विषय में भी पूरा वर्णन पूर्ववत् है। विशेषता यह है कि रुपर्वत के दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण) में लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन जाने पर यह कर्दम- र्वत स्थित है। विद्युत्प्रभा इसकी राजधानी है जो इस आवासपर्वत से दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण) में संख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में है, आदि वर्णन पूर्वोक्त विजया राजधानी की रह जानना चाहिए।

कैलाश नामक आवासपर्वत के विषय में पूरा वर्णन पूर्ववत् है। विशेषता यह है कि यह मेरु दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्यकोण) में है। इसकी राजधानी कैलाशा है और वह कैलाशपर्वत के क्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्यकोण) में असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में है।

अरुणप्रभ नामक आवासपर्वत मेरुपर्वत के उत्तर-पश्चिम (वायव्यकोण) में है। राजधानी ी अरुणप्रभ आवासपर्वत के वायव्यकोण में असंख्य द्वीप-समुद्रों के बाद अन्य लवणसमुद्र में है। शेष ब वर्णन विजया राजधानी की तरह है। ये चारों आवासपर्वत एक ही प्रमाण के हैं और सर्वात्मना त्नमय हैं।

---

१. कर्दम आवासपर्वत का देव स्वभावतः यक्षकर्दमप्रिय है। यक्षकर्दम का अर्थ है—कुंकुम, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, चन्दन आदि के मिश्रण से जो सुगन्धित द्रव्य निर्मित होता है, वह यक्षकर्दम है। पूर्वपद का लोप होने से कर्दम कहा गया है।

गौतमद्वीप का वर्णन

१६१. कहि णं भंते ! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ? गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं सत्ततीसं जोयणसहस्साइं नव य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं जंबूदीवंतेणं अद्धेकोणणउए जोयणाइं चत्तालीसं पंचणउइभागे जोयणस्स ऊसिए जलंताओ, लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ।

से णं एगाए य पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता तहेव वण्णओ दोण्ह वि। गोयमदीवस्स णं अंतो जाव बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव आसयंति। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स एगे महं अइक्कीलावासे णामे भोमेज्जविहारे पण्णत्ते बावट्ठि जोयणाइं अद्धजोयणं य उड्ढं उच्चत्तेणं, एकतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं अणेगखंभसयसन्निविट्ठे भवणवण्णओ भाणियव्वो।

अइक्कीलावासस्स णं भोमेज्जविहारस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीणं फासो। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ एगा मणिपेढिया पण्णत्ता। सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा जाव पडिरूवा। तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, वण्णओ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमदीवे गोयमदीवे ? तत्थ-तत्थ तहिं-तहिं बहूई उप्पलाइं जाव गोयमप्पभाइं से एएणट्ठेणं गोयमा ! जाव णिच्चे।

कहि णं भंते ! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स सुट्ठियाणामं रायहाणी पण्णत्ता ? गोयमा ! गोयमदीवस्स पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे जाव अण्णम्मि लवणसमुद्दे, बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एवं तहेव सव्वं णेयव्वं जाव सुट्ठिए देवे।

१६१. हे भगवन् ! लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतमद्वीप कहां है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतमद्वीप नाम का द्वीप है। वह गौतमद्वीप बारह हजार योजन लम्बा-चौड़ा और सैंतीस हजार नौ सौ अड़तालीस (३७९४८) योजन से कुछ कम परिधि वाला है। वह जम्बूद्वीपान्त की दिशा में साढ़े अठयासी (८८½) योजन और ४०/९५ योजन जलान्त से ऊपर उठा हुआ है तथा लवणसमुद्र की ओर जलान्त से दो कोस ऊपर उठा हुआ है।

यह गौतमद्वीप एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है। यहां दोनों का वर्णनक कहना चाहिए। गौतमद्वीप के अन्दर यावत् बहुसमरमणीय भूमिभाग है। उसका भूमिभाग मुरज के मढ़े हुए चमड़े की तरह समतल है, आदि सब वर्णन कहना चाहिए यावत् वहां

में लवणाधिपति सुस्थित देव का एक विशाल अतिक्रीडावास नाम का भौमेय विहार है जो साढ़े बासठ योजन ऊंचा और सवा इकतीस योजन चौड़ा है, अनेक सौ स्तम्भों पर सन्निविष्ट है, आदि भवन का वर्णनक कहना चाहिए।

उस अतिक्रीडावास नामक भौमेय विहार में बहुसमरमणीय भूमिभाग है, आदि वर्णन करना चाहिए यावत् मणियों का स्पर्श, उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य में एक मणिपीठिका है। वह मणिपीठिका दो योजन लम्बी-चौड़ी, एक योजन मोटी और सर्वात्मना मणिमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक देवशयनीय है। उसका पूर्ववत् वर्णन जानना चाहिए।

हे भगवन् ! गौतमद्वीप, गौतमद्वीप क्यों कहलाता है ?

गौतम ! गौतमद्वीप में यहां-वहां बहुत से उत्पल कमल आदि है जो गौतम (गोमेदरत्न) की आकृति और आभा वाले हैं, इसलिए गौतमद्वीप कहलाता है। यह गौतमद्वीप द्रव्यापेक्षया शाश्वत है। अतः इसका नाम भी शाश्वत होने से अनिमित्तक है।[1]

हे भगवन् ! लवणाधिपति सुस्थित देव की सुस्थिता नाम की राजधानी कहा है ?

गौतम ! गौतमद्वीप के पश्चिम में तिरछे असंख्य द्वीप-समुद्रों को पार करने के बाद अन्य लवणसमुद्र में सुस्थिता राजधानी है, जो अन्य लवणसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर आती है, इत्यादि सब वक्तव्यता गोस्तूप राजधानीवत् जाननी चाहिए यावत् वहां सुस्थित नाम का महर्द्धिक देव है।

जम्बूद्वीपगत चन्द्रद्वीपों का वर्णन

१६२. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, जंबुद्दीवंतेणं अद्धेकोणणउइ जोयणाइं चत्तालीसं पंचाणउइं भागे जोयणस्स ऊसिया जलंताओ, लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिया जलंताओ, बारसजोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं सेसं तं चेव जहा गोयमदीवस्स परिक्खेवो। पउम-वरवेइया पत्तेयं-पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता, दोण्हवि वण्णओ, बहुसमरमणिज्जभूमिभागा जाव जोइसिया देवा आसयंति।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोयणाइं बहुमज्झदेसभागे मणि-पेढियाओ दो जोयणाइं जाव सीहासणा सपरिवारा भाणियव्वा तहेव अट्ठो; गोयमा ! बहुसु खुड्डासु खुड्डियासु बहूइं उप्पलाइं चंदवण्णाभाइं चंदा एत्थ देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितिया परिवसंति।

ते णं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव चंददीवाणं चंदाण य रायहाणीणं

१. वृत्तिकार के अनुसार गौतमद्वीप नाम का कारण शाश्वत होने से अनिमित्तक है। वृत्तिकार पुस्तकान्तर का उल्लेख करते हुए "गोयमदीवे णं दीवे तत्थ-तत्थ तहिं तहिं बहूइं उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं गोयमपभाइं गोयमवण्णाइं गोयमवण्णाभाइं" इस पाठ का होना मानते हैं।

अन्नेसिं य बहूणं जोइसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति। से तेणट्ठेणं गोयमा! चंदद्दीवा जाव णिच्चा।

कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंदाओ नाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चंदद्दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियं जाव अण्णम्मि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव पमाणं जाव महिड्ढिया चंदा देवा।

कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव उच्चत्तं आयामविक्खंभेणं परिक्खेवो वेदिया, वनसंडो, भूमिभागा जाव आसयंति, पासायवडेंसगाणं तं चेव पमाणं मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो उप्पलाइं सूरप्पभाइं सूरा एत्थ देवा जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णम्मि जंबुद्दीवे दीवे सेसं तं चेव जाव सूरा देवा।

१६२. हे भगवन्! जम्बूद्वीपगत दो चन्द्रमाओं के दो चन्द्रद्वीप कहां पर हैं?

गौतम! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पूर्व में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर वहां जम्बूद्वीपगत दो चन्द्रों के दो चन्द्रद्वीप कहे गये हैं। ये द्वीप जम्बूद्वीप की दिशा में साढे अठासी (८८½) योजन और ४०/९५ योजन पानी से ऊपर उठे हुए हैं और लवणसमुद्र की दिशा में दो कोस पानी से ऊपर उठे हुए हैं। ये बारह हजार योजन लम्बे-चौड़े हैं; शेष परिधि आदि सब वक्तव्यता गौतमद्वीप की तरह जाननी चाहिए। ये प्रत्येक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से परिवेष्टित हैं। दोनों का वर्णनक कहना चाहिए। उन द्वीपों में बहुसमरमणीय भूमिभाग कहे गये हैं यावत् वहां बहुत से ज्योतिष्क देव उठते-बैठते हैं। उन बहुसमरमणीय भागों में प्रासादावतंसक हैं, जो साढे बासठ योजन ऊँचे हैं, आदि वर्णन गौतमद्वीप की तरह जानना चाहिए। मध्यभाग में दो योजन की लम्बी-चौड़ी, एक योजन मोटी मणिपीठिकाएं हैं, इत्यादि सपरिवार सिंहासन पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

हे भगवन्! ये चन्द्रद्वीप क्यों कहलाते हैं?

हे गौतम! उन द्वीपों की बहुत-सी छोटी-छोटी बावड़ियों आदि में बहुत से उत्पलादि कमल हैं, जो चन्द्रमा के समान आकृति और आभा (वर्ण) वाले हैं और वहां चन्द्र नामक महर्द्धिक देव, जो पल्योपम की स्थिति वाले हैं, रहते हैं। वे वहां अलग-अलग चार हजार सामानिक देवों यावत् चन्द्रद्वीपों और चन्द्रा राजधानियों और अन्य बहुत से ज्योतिष्क देवों और देवियों का आधिपत्य करते हुए अपने पुण्य-कर्मों का विपाकानुभव करते हुए विचरते हैं। इस कारण हे गौतम! वे चन्द्रद्वीप कहलाते हैं। हे गौतम! वे चन्द्रद्वीप द्रव्यापेक्षया नित्य हैं अतएव उनके नाम भी शाश्वत हैं।

हे भगवन्! जम्बूद्वीप के चन्द्रों की चन्द्रा नामक राजधानियां कहां हैं? गौतम! चन्द्रद्वीपों के पूर्व में तिर्यक् असंख्य द्वीप-समुद्रों को पार करने पर अन्य जम्बूद्वीप में बारह हजार योजन आगे जाने पर वहां वे राजधानियां हैं। उनका प्रमाण आदि पूर्वोक्त गौतमादि राजधानियों की तरह जानना चाहिए यावत् वहां चन्द्र नामक महर्द्धिक देव हैं।

हे भगवन् ! जम्बूद्वीप के दो सूर्यों के दो सूर्यद्वीप कहां हैं ? गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप के दो सूर्यों के दो सूर्यद्वीप हैं। उनका उच्चत्व, आयाम-विष्कंभ, परिधि, वेदिका, वनखण्ड, भूमिभाग, वहां देव-देवियों का बैठना-उठना, प्रासादावतंसक, उनका प्रमाण, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन आदि चन्द्रद्वीप की तरह कहना चाहिए।

हे भगवन् ! सूर्यद्वीप, सूर्यद्वीप क्यों कहलाते हैं ? हे गौतम ! उन द्वीपों की बावड़ियों आदि में सूर्य के समान वर्ण और आकृति वाले बहुत सारे उत्पल आदि कमल हैं, इसलिए वे सूर्यद्वीप कहलाते हैं। ये सूर्यद्वीप द्रव्यपेक्षया नित्य हैं। अतएव इनका नाम भी शाश्वत है। इनमें सूर्य देव, सामानिक देव आदि का यावत् ज्योतिष्क देव-देवियों का आधिपत्य करते हुए विचरते हैं यावत् इनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों से पश्चिम में असंख्यात द्वीप-समुद्रों को पार करने के बाद अन्य जम्बूद्वीप में बारह हजार योजन आगे जाने पर स्थित हैं। उनका प्रमाण आदि पूर्वोक्त चन्द्रादि राजधानियों की तरह जानना चाहिए यावत् वहां सूर्य नामक महर्द्धिक देव है।

१६३. कहि णं भंते ! अब्भितरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं अब्भिंतरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता। जहा जम्बुद्दीवगा चंदा तहा भाणियव्वा, णवरि रायहाणीओ अण्णंमि लवणे सेसं तं चेव। एवं अब्भितरलावणगाणं सूराणवि लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ।

कहि णं भंते ! बाहिरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ लवणसमुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं बाहिरलावणगाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, धायइसंडदीवंतेणं अद्धेकोणणवतिजोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिया जलंताओ, लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिया बारस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खमेणं पउमवरवेइया वनसंडा बहुसमरमणिज्जा भूमि-भागा मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा सो चेव अट्ठो रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि लवणसमुद्दे तहेव सव्वं।

कहि णं भंते ! बाहिरलावणगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! लवणसमुद्दपच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ लवणसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयण-सहस्साइं धायइसंडदीवंतेणं अद्धेकोणणउइं जोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउइभागे जोयणस्स दो कोसे ऊसिया सेसं तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे लवणे चेव बारस जोयणा तहेव सव्वं भाणियव्वं।

१६३. हे भगवन् ! लवणसमुद्र में रहकर जम्बूद्वीप की दिशा में शिखा से पहले विचरने वाले (आभ्यन्तर लावणिक) चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहां हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पूर्व में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर आभ्यन्तर लावणिक चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप हैं। जैसे जम्बूद्वीप के चन्द्रद्वीपों का वर्णन किया, वैसा इनका भी कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी राजधानियां अन्य लवणसमुद्र में हैं, शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी तरह आभ्यन्तर लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर वहां स्थित हैं, आदि सब वर्णन राजधानी पर्यन्त चन्द्रद्वीपों के समान जानना चाहिए।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र में रह कर शिखा से बाहर विचरण करने वाले बाह्य लावणिक चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां है ?

गौतम ! लवणसमुद्र की पूर्वीय वेदिकान्त से लवणसमुद्र के पश्चिम में बारह हजार योजन जाने पर बाह्य लावणिक चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप हैं, जो धातकीखण्डद्वीपान्त की तरफ साढे अठ्यासी योजन और ४०/९५ योजन जलांत से ऊपर हैं और लवणसमुद्रान्त की तरफ जलांत से दो कोस ऊँचे हैं। ये बारह हजार योजन के लम्बे-चोड़े, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, बहुसमरमणीय भूमिभाग, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन, नाम का प्रयोजन, राजधानियां जो अपने-अपने द्वीप के पूर्व में तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्रों को पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में हैं, आदि सब कथन पूर्ववत जानना चाहिए।

हे भगवन् ! बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप नाम के द्वीप कहां हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र की पश्चिमी वेदिकान्त से लवणसमुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन जाने पर बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप नामक द्वीप हैं, जो धातकीखण्ड द्वीपांत की तरफ साढे अठ्यासी योजन और ४०/९५ योजन जलांत से ऊपर हैं और लवणसमुद्र की तरफ जलांत से दो कोस ऊँचे हैं। शेष सब वक्तव्यता राजधानी पर्यन्त पूर्ववत् कहनी चाहिए। ये राजधानियां अपने-अपने द्वीपों से पश्चिम में तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने के बाद अन्य लवणसमुद्र में बारह हजार योजन के बाद स्थित हैं, आदि सब कथन करना चाहिए।

धातकीखंडद्वीपगत चन्द्रद्वीपों का वर्णन

१६४. कहि णं भंते ! धायइसंडदीवगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! धायइसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं धायइसंडदीवाणं चंदाणं णामं दीवा पण्णत्ता, सव्वओ समंता दो कोसा ऊसिया जलंताओ बारस जोयणसहस्साइं तहेव विक्खंभ-परिक्खेवो भूमिभागो पासायवडिंसगा मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो तहेव रायहाणीओ, सकाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सेसं तं चेव।

एवं सूरदीवावि। नवरं धायइसंडस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ सूराणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सव्वं तहेव।

१६४. हे भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां हैं।

गौतम ! धातकीखण्डद्वीप की पूर्वी वेदिकान्त से कालोदधिसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर धातकीखण्ड के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप हैं। (धातकीखण्ड में १२ चन्द्र है।) वे सब ओर से जलांत से दो कोस ऊँचे हैं । ये बारह हजार योजन के लम्बे-चौड़े हैं । इनकी परिधि, भूमिभाग, प्रासादावतंसक, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन, नाम-प्रयोजन, राजधानियां आदि पूर्ववत् जानना चाहिए। वे राजधानियां अपने-अपने द्वीपों से पूर्वदिशा में अन्य धातकीखण्डद्वीप में हैं। शेष सब पूर्ववत् ।

इसी प्रकार धातकीखण्ड के सूर्यद्वीपों के विषय में भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि धातकीखण्डद्वीप की पश्चिमी वेदिकान्त से कालोदधिसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर ये द्वीप आते हैं। इन सूर्यों की राजधानियां सूर्यद्वीपों के पश्चिम में असंख्य द्वीपसमुद्रों के बाद अन्य धातकीखण्डद्वीप में हैं, आदि सब वक्तव्यता पूर्ववत् जाननी चाहिए।

कालोदधिसमुद्रगत चन्द्रद्वीपों का वर्णन

१६५. कहि णं भंते ! कालोयगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयसमुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं कालोयगचंदाणं चंददीवा पण्णत्ता सव्वओ समंता दो कोसा ऊसिया जलंताओ, सेसं तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे बारस जोयणसहस्साइं तं चेव सव्वं जाव चंदा देवा देवा।

एवं सूराणवि । णवरं कालोयगपच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयसमुद्दपुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे तहेव सव्वं ।

एवं पुक्खरवरगाणं चंदाणं पुक्खरवरस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता चंददीवा अण्णम्मि पुक्खरवरे दीवे रायहाणीओ तहेव ।

एवं सूराणवि दीवा पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवे समुद्दगाणं समुद्दे चेव एगाणं अब्भितरपासे एगाणं बाहिरपासे रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवेसु समुद्दगाणं समुद्देसु सरिणामएसु ।

१६५. हे भगवन् ! कालोदधिसमुद्रगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां हैं ? हे गौतम ! कालोदधिसमुद्र के पूर्वीय वेदिकांत से कालोदधिसमुद्र के पश्चिम में बारह हजार योजन आगे जाने पर कालोदधिसमुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप है। ये सब ओर से जलांत से दो कोस ऊंचे हैं। शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् राजधानियां अपने-अपने द्वीप के पूर्व में असंख्य द्वीप-समुद्रों के बाद अन्य कालोदधिसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर आती हैं, आदि सब पूर्ववत् यावत् वहां चन्द्रदेव हैं।

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पूर्व में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर आभ्यन्तर लावणिक चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप हैं। जैसे जम्बूद्वीप के चन्द्रद्वीपों का वर्णन किया, वैसा इनका भी कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी राजधानियां अन्य लवणसमुद्र में हैं, शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी तरह आभ्यन्तर लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर वहां स्थित हैं, आदि सब वर्णन राजधानी पर्यन्त चन्द्रद्वीपों के समान जानना चाहिए।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र में रह कर शिखा से बाहर विचरण करने वाले बाह्य लावणिक चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र की पूर्वीय वेदिकान्त से लवणसमुद्र के पश्चिम में बारह हजार योजन जाने पर बाह्य लावणिक चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप हैं, जो धातकीखण्डद्वीपान्त की तरफ साढे अठ्यासी योजन और $\frac{४०}{९५}$ योजन जलांत से ऊपर हैं और लवणसमुद्रान्त की तरफ जलांत से दो कोस ऊंचे हैं। ये बारह हजार योजन के लम्बे-चौड़े, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, बहुसमरमणीय भूमिभाग, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन, नाम का प्रयोजन, राजधानियां जो अपने-अपने द्वीप के पूर्व में तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्रों को पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में हैं, आदि सब कथन पूर्ववत जानना चाहिए।

हे भगवन् ! बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप नाम के द्वीप कहां हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र की पश्चिमी वेदिकान्त से लवणसमुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन जाने पर बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप नामक द्वीप हैं, जो धातकीखण्ड द्वीपांत की तरफ साढे अठ्यासी योजन और $\frac{४०}{९५}$ योजन जलांत से ऊपर हैं और लवणसमुद्र की तरफ जलांत से दो कोस ऊंचे है। शेष सब वक्तव्यता राजधानी पर्यन्त पूर्ववत् कहनी चाहिए। ये राजधानियां अपने-अपने द्वीपों से पश्चिम में तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने के बाद अन्य लवणसमुद्र में बारह हजार योजन के बाद स्थित हैं, आदि सब कथन करना चाहिए।

धातकीखंडद्वीपगत चन्द्रद्वीपों का वर्णन

१६४. कहि णं भंते ! धायइसंडदीवगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! धायइसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं धायइसंडदीवाणं चंदाणं णामं दीवा पण्णत्ता, सव्वओ समंता दो कोसा ऊसिया जलंताओ बारस जोयणसहस्साइं तहेव विक्खंभ-परिक्खेवो भूमिभागो पासायवडिसगा मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो तहेव रायहाणीओ, सकाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सेसं तं चेव।

एवं सूरदीवावि। नवरं धायइसंडस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ सूराणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सव्वं तहेव।

इक्षुवरसमुद्र, नंदीश्वरद्वीप, नन्दीश्वरसमुद्र, अरुणवरद्वीप, अरुणवरसमुद्र, कुण्डलद्वीप, कुण्डलसमुद्र, रुचकद्वीप, रुचकसमुद्र, आभरणद्वीप, आभरणसमुद्र, वस्त्रद्वीप, वस्त्रसमुद्र, गन्धद्वीप, गन्धसमुद्र, उत्पलद्वीप, उत्पलसमुद्र, तिलकद्वीप, तिलकसमुद्र, पृथ्वीद्वीप, पृथ्वीसमुद्र, निधिद्वीप, निधिसमुद्र, रत्नद्वीप, रत्नसमुद्र, वर्षधरद्वीप, वर्षधरसमुद्र, द्रहद्वीप, द्रहसमुद्र, नंदीद्वीप, नदीसमुद्र, विजयद्वीप, विजयसमुद्र, वक्षस्कारद्वीप, वक्षस्कारसमुद्र, कपिद्वीप, कपिसमुद्र, इन्द्रद्वीप, इन्द्रसमुद्र, पुरद्वीप, पुरसमुद्र, मन्दरद्वीप, मन्दरसमुद्र, आवासद्वीप, आवाससमुद्र, कूटद्वीप, कूटसमुद्र, नक्षत्रद्वीप, नक्षत्रसमुद्र, चन्द्रद्वीप, चन्द्रसमुद्र, सूर्यद्वीप, सूर्यसमुद्र, इत्यादि अनेक नाम वाले द्वीप और समुद्र हैं।

देवद्वीपादि में विशेषता

१६७. (अ) कहि णं भंते ! देवद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ? गोयमा ! देवदीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ देवोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तेणेव कमेण जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवद्दीवं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं देवदीवयाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ। सेसं तं चेव। देवदीवा चंदादीवा एवं सूराणं वि। णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पच्चत्थिमेण य भाणियव्वा, तम्मि चेव समुद्दे।

कहि णं भंते ! देवसमुद्दगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ? गोयमा ! देवोदगस्स समुद्दगस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ देवोदगं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं तेणेव कमेणं जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेजाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं देवोदगाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ। तं चेव सव्वं। एवं सूराणवि। णवरि देवोदगस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ देवोदगसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता। एवं णागे जक्खे भूएवि चउण्हं दीव-समुद्दाणं।

१६७. (अ) हे भगवन् ! देवद्वीपगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहां हैं ? गौतम ! देवद्वीप की पूर्वदिशा के वेदिकान्त से देवोदसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर वहां देवद्वीप के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप हैं, इत्यादि पूर्ववत् राजधानी पर्यन्त कहना चाहिए। अपने ही चन्द्रद्वीपों की पश्चिमदिशा में उसी देवद्वीप में असंख्यात हजार योजन जाने पर वहां देवद्वीप के चन्द्रों की चन्द्रा नामक राजधानियां हैं। शेष वर्णन विजया राजधानीवत् कहना चाहिए।

हे भगवन् ! देवद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप नामक द्वीप कहां हैं ? गौतम ! देवद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से देवोदसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर देवद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप हैं। अपने-अपने ही सूर्यद्वीपों की पूर्वदिशा में उसी देवद्वीप में असंख्यात हजार योजन जाने पर उनकी राजधानियां हैं।

हे भगवन् ! देवसमुद्रगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहां हैं ? गौतम ! देवोदकसमुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से देवोदकसमुद्र में पश्चिमदिशा में बारह हजार योजन जाने पर यहां देवसमुद्रगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप हैं, आदि क्रम से राजधानी पर्यन्त कहना चाहिए। उनकी राजधानियां अपने-अपने

इसी प्रकार कालोदधिसमुद्र के सूर्यद्वीपों के संबंध में भी जानना चाहिए। विशेषता यह है कि कालोदधिसमुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से और कालोदधिसमुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन आगे जाने पर ये आते हैं। इसी तरह पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् इनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पश्चिम में अन्य कालोदधि में हैं, आदि सब पूर्ववत् कहना चाहिए। इसी प्रकार पुष्करवरद्वीप के पूर्वी वेदिकान्त से पुष्करवरसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर चन्द्रद्वीप हैं, इत्यादि पूर्ववत्। अन्य पुष्करवरद्वीप में उनकी राजधानियां हैं। राजधानियों के सम्बन्ध में सब पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी तरह से पुष्करवरद्वीपगत सूर्यों के सूर्यद्वीप पुष्करवरद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से पुष्करवरसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर स्थित हैं, आदि पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् राजधानियां अपने द्वीपों की पश्चिमदिशा में तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लांघने के बाद अन्य पुष्करवरद्वीप में बारह हजार योजन की दूरी पर हैं। पुष्करवरसमुद्रगत सूर्यों के सूर्यद्वीप पुष्करवर-समुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से पश्चिमदिशा में बारह हजार योजन आगे जाने पर स्थित हैं। राजधानियां अपने द्वीपों की पूर्वदिशा में तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्रों का उल्लंघन करने पर अन्य पुष्करवर-समुद्र में बारह हजार योजन से परे हैं।

इसी प्रकार शेष द्वीपगत चन्द्रों की राजधानियां चन्द्रद्वीपगत पूर्वदिशा की वेदिकान्त से अनन्तर समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर कहनी चाहिए। शेष द्वीपगत सूर्यों के सूर्यद्वीप अपने द्वीपगत पश्चिम वेदिकान्त से अनन्तर समुद्र में हैं, चन्द्रों की राजधानियां अपने-अपने चन्द्रद्वीपों से पूर्वदिशा में अन्य अपने-अपने नाम वाले द्वीप में हैं, सूर्यों की राजधानियां अपने-अपने सूर्यद्वीपों से पश्चिमदिशा में अन्य अपने सदृश नाम वाले द्वीप में बारह हजार योजन के बाद हैं।

शेष समुद्रगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप अपने-अपने समुद्र के पूर्व वेदिकान्त से पश्चिमदिशा में बारह हजार योजन के बाद हैं। सूर्यों के सूर्यद्वीप अपने-अपने समुद्र के पश्चिमी वेदिकांत से पूर्वदिशा में बारह हजार योजन के बाद हैं। चन्द्रों की राजधानियां अपने-अपने द्वीपों की पूर्वदिशा में अन्य अपने जैसे नाम वाले समुद्रों में हैं। सूर्यों की राजधानियां अपने-अपने द्वीपों की पश्चिमदिशा में हैं।

१६६. इमे णामा अणुगंतव्वा[1]—

जंबुद्दीवे लवणे धायइ-कालोद-पुक्खरे वरुणे।
खीर-घय-इक्खु (वरो य) णंदी अरुणवरे कुंडले रुयगे ॥१॥
आभरण-वत्थ-गंधे उप्पल-तिलए य पुढवि-णिहि-रयणे।
वासहर-दह-नईओ विजयावक्खार-कप्पिंदा ॥२॥
पुर-मंदरमावासा कूडा णक्खत्त-चंद-सूरा य। एवं भाणियव्वं।

१६६. असंख्यात द्वीप और समुद्रों में से कितनेक द्वीपों और समुद्रों के नाम इस प्रकार हैं—

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदसमुद्र, पुष्करवरद्वीप, पुष्करवरसमुद्र, वारुणिवरद्वीप, वारुणिवरसमुद्र, क्षीरवरद्वीप, क्षीरवरसमुद्र, घृतवरद्वीप, घृतवरसमुद्र, इक्षुवरद्वीप,

1. वृत्ति में इस सूत्र की व्याख्या नहीं है, न इस सूत्र का उल्लेख ही है।

आगे जाने पर सूर्यों के सूर्यद्वीप आते हैं। इनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पूर्व में स्वयंभूरमण-समुद्र में असंख्यात हजार योजन आगे जाने पर आती हैं यावत् वहां सूर्यदेव हैं।[1]

१६८. अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे वेलंधराइ वा णागराया खन्नाइ[2] वा अग्घाइ वा सीहाइ वा विजाई वा हासवुड्ढीइ वा ? हंता अत्थि !

जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे अत्थि वेलंधराइ वा णागराया अग्घा सीहा विजाई वा हासवुड्ढीइ वा तहा णं बाहिरेसु वि समुद्देसु अत्थि वेलंधराइ वा नागरायाइ वा अग्घाइ वा खन्नाइ वा सीहाइ वा विजाई वा हासवुड्ढीइ वा ? णो तिणट्ठे समट्ठे।

१६८. हे भगवन् ! लवणसमुद्र में वेलंधर नागराज हैं क्या ? अग्घा, खन्ना, सीहा, विजाति मच्छकच्छप हैं क्या ? जल की वृद्धि और ह्रास है क्या ?

गौतम ! हां हैं।

हे भगवन् ! जैसे लवणसमुद्र में वेलंधर नागराज हैं, अग्घा, खन्ना, सीहा, विजाति ये मच्छकच्छप हैं ? वैसे अढ़ाई द्वीप से बाहर के समुद्रों में भी ये सब हैं क्या ?

हे गौतम ! बाह्य समुद्रों में ये नहीं हैं।

१६९. लवणे णं भंते ! किं समुद्दे ऊसिओदगे किं पत्थडोदगे किं खुभियजले किं अखुभियजले ?

गोयमा ! लवणे णं समुद्दे ऊसिओदगे नो पत्थडोदगे, खुभियजले नो अखुभियजले।

तहा णं बाहिरगा समुद्दा किं ऊसिओदगा पत्थडोदगा खुभियजला अखुभियजला ?

गोयमा ! बाहिरगा समुद्दा नो ऊसिओदगा पत्थडोदगा, न खुभियजला अक्खुभियजला पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठंति।

अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे बहवो ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वा वासं वासंति वा ?

हंता अत्थि।

जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति वा तहा णं बाहिरएसु वि समुद्देसु बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति ?

णो तिणट्ठे समट्ठे।

---

१. आह च मूलटीकाकारो अपि—"एवं शेषद्वीपगतचन्द्रादित्यानामपि द्वीपा अनन्तरसमुद्रेष्ववगन्तव्या, राजधान्यश्च तेषां पूर्वापरतो असंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् गत्वा ततोऽस्मिन् सदृशनाम्नि द्वीपे भवन्ति; अन्त्यानिमान् पंचद्वीपान् मुक्त्वा देव-नाग-यक्ष-भूतस्वयंभूरमणाख्यान्। न तेषु चन्द्रादित्यानां राजधान्यो अन्यस्मिन् द्वीपे, अपितु स्वस्मिन्नेव पूर्वापरतो वेदिकान्तादसंख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्य भवन्तीति।" इह सूत्रेषु बहुधा पाठभेदा, परमेतावानेव सर्वत्राप्यर्थोऽनर्थभेदान्तरमित्येतद्व्याख्यानुसारेण सर्वेऽपि अनुगंतव्या न मोग्धव्यमिति।

२. आह च चूर्णिकृत्—"अग्घा खन्ना सीहा विजाई इति मच्छकच्छभा।"

द्वीपों के पश्चिम में देवोदकसमुद्र में असंख्यात हजार योजन जाने पर स्थित हैं। शेष वर्णन विजया राजधानी के समान कहना चाहिए।

देवसमुद्रगत सूर्यों के विषय में भी ऐसा ही कहना चाहिए। विशेषता यह है कि देवोदक-समुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से देवोदक समुद्र में पूर्वदिशा में बारह हजार योजन जाने पर ये स्थित हैं। इनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पूर्व में देवोदकसमुद्र में असंख्यात हजार योजन आगे जाने पर आती हैं। इसी प्रकार नाग, यक्ष, भूत और स्वयंभूरमण चारों द्वीपों और चारों समुद्रों के चन्द्र-सूर्यों के द्वीपों के विषय में कहना चाहिए।

स्वयंभूरमणद्वीपगत चन्द्र-सूर्यद्वीप

१६७. (आ) कहि णं भंते ! सयंभूरमणदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ? सयंभूरमणस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणोदगं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभूरमणोदगं समुद्दं पुरत्थिमेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव। एवं सूराणवि। सयंभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमिल्लाणं सयंभूरमणोदं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता सेसं तं चेव।

कहि णं भंते ! सयंभूरमणसमुद्दगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ? सयंभूरमणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणसमुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, सेसं तं चेव। एवं सूराणवि। सयंभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणोदं समुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभूरमणं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं सयंभूरमणसमुद्दगाणं सूराणं जाव सूरा देवा।

१६७. (आ) हे भगवन् ! स्वयंभूरमणद्वीपगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नाम द्वीप कहां हैं ? गौतम ! स्वयंभूरमणद्वीप के पूर्वीय वेदिकान्त से स्वयंभूरमणसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर वहां स्वयंभूरमणद्वीपगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप हैं। उनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पूर्व में स्वयंभूरमण-समुद्र के पूर्वदिशा की ओर असंख्यात हजार योजन जाने पर आती हैं, आदि पूर्ववत् कथन करना चाहिए। इसी तरह सूर्यद्वीपों के विषय में भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वयंभूरमणद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से स्वयंभूरमणसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर ये द्वीप स्थित हैं। इनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पश्चिम में स्वयभूरमणसमुद्र में पश्चिम की ओर असंख्यात हजार योजन जाने पर आती हैं, आदि सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

हे भगवन् ! स्वयंभूरमणसमुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां हैं ? गौतम ! स्वयंभूरमणसमुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से स्वयंभूरमणसमुद में पश्चिम की ओर बारह हजार योजन जाने पर ये द्वीप आते हैं, आदि पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी तरह स्वयंभूरमणसमुद्र के सूर्यों के विषय में समझना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वयंभूरमणसमुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से स्वयंभूरमणसमुद्र में पूर्व की ओर बारह हजार योजन

विहत्थि-रयणी-कुच्छी-धणु (उव्वेहपरिवुड्ढीए) गाउय-जोयण-जोयणसय-जोयणसहस्साइं गंता जोयण-सहस्सं उव्वेहपरिवुड्ढीए ।

लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं उस्सेह-परिवुड्ढीए पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइं पदेसे गंता सोलसपएसे उस्सेह-परिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स एएणेव कमेणं जाव पंचाणउइं-पंचाणउइं जोयणसहस्साइं गंता सोलसजोयण उस्सेह-परिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

१७०. हे भगवन् ! लवणसमुद्र की गहराई की वृद्धि किस क्रम से है अर्थात् कितनी दूर जाने पर कितनी गहराई की वृद्धि होती है ?

गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों तरफ (जम्बूद्वीपवेदिकान्त से और लवणसमुद्रवेदिकान्त से) पंचानवै-पंचानवै प्रदेश (यहां प्रदेश से प्रयोजन त्रसरेणु है) जाने पर एक प्रदेश की उद्वेध-वृद्धि (गहराई में वृद्धि) होती है, ९५-९५ वालाग्र जाने पर एक बालाग्र उद्वेध-वृद्धि होती है, ९५-९५ लिक्षा जाने पर एक लिक्षा की उद्वेध-वृद्धि होती है, ९५-९५ यवमध्य जाने पर एक यवमध्य की उद्वेध-वृद्धि होती है, इसी तरह ९५-९५ अंगुल, वितस्ति (वेंत), रत्नि (हाथ), कुक्षि, धनुष, कोस, योजन, सौ योजन, हजार योजन जाने पर एक-एक अंगुल यावत् एक हजार योजन की उद्वेध-वृद्धि होती है ।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र की उत्सेध-वृद्धि (ऊंचाई में वृद्धि) किस क्रम से होती है अर्थात् कितनी दूर जाने पर कितनी ऊंचाई में वृद्धि होती है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों तरफ ९५-९५ प्रदेश जाने पर सोलह प्रदेशप्रमाण उत्सेध-वृद्धि होती है । हे गौतम ! इस क्रम से यावत् ९५-९५ हजार योजन जाने पर सोलह हजार योजन की उत्सेध-वृद्धि होती है ।

विवेचन—लवणसमुद्र के जम्बूद्वीप वेदिकान्त के किनारे से और लवणसमुद्र वेदिकान्त के किनारे से दोनों तरफ ९५-९५ प्रदेश (त्रसरेणु) जाने पर एक प्रदेश की गहराई में वृद्धि होती है । ९५-९५ बालाग्र जाने पर एक-एक बालाग्र की गहराई में वृद्धि होती है । इसी प्रकार लिक्षा-यवमध्य-अंगुल-वितस्ति-रत्नि-कुक्षि-धनुष गव्यूत (कोस), योजन, सौ योजन, हजार योजन आदि का भी कथन करना चाहिए । अर्थात् ९५-९५ लिक्षाप्रमाण आगे जाने पर एक लिक्षाप्रमाण गहराई में वृद्धि होती है यावत् ९५ हजार योजन जाने पर एक हजार योजन की गहराई में वृद्धि होती है ।

९५ हजार योजन जाने पर जब एक हजार योजन की उत्सेधवृद्धि है तो त्रैराशिक सिद्धान्त से ९५ योजन पर कितनी वृद्धि होगी, यह जानने के लिए ९५०००/१०००/९५ इन तीन राशियों की स्थापना करनी चाहिए । आदि और मध्य की राशि के तीन-तीन शून्य ('शून्यं शून्येन पातयेत्' के अनुसार) हटा देने चाहिए तो ९५/१/९५ यह राशि रहती है । मध्यराशि एक का अन्त्यराशि ९५ से गुणा करने पर ९५ गुणनफल आता है, इसमें प्रथम राशि ९५ का भाग देने पर एक भागफल आता है । अर्थात् एक योजन की वृद्धि होती है, यही बात इन गाथाओं में कही है—

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—बाहिरगा णं समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडियाए चिट्ठंति ?

गोयमा ! बाहिरएसु णं समुद्देसु बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ बाहिरगा समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा जाव समभरघडत्ताए चिट्ठंति।

१६९. हे भगवन् ! लवणसमुद्र का जल उछलने वाला है या प्रस्तट की तरह स्थिर अर्थात् सर्वतः सम रहने वाला है ? उसका जल क्षुभित होने वाला है या अक्षुभित रहता है ?

गौतम ! लवणसमुद्र का जल उछलने वाला है, स्थिर नहीं है, क्षुभित होने वाला है, अक्षुभित रहने वाला नहीं।

हे भगवन् ! जैसे लवणसमुद्र का जल उछलने वाला है, स्थिर नहीं है, क्षुभित होने वाला है, अक्षुभित रहने वाला नहीं, वैसे क्या बाहर के समुद्र भी क्या उछलते जल वाले हैं या स्थिर जल वाले, क्षुभित जल वाले हैं या अक्षुभित जल वाले ?

गौतम ! बाहर के समुद्र उछलते जल वाले नहीं हैं, स्थिर जल वाले हैं, क्षुभित जल वाले नहीं, अक्षुभित जल वाले हैं। वे पूर्ण हैं, पूरे-पूरे भरे हुए हैं, पूर्ण भरे होने से मानो बाहर छलकना चाहते हैं, विशेष रूप से बाहर छलकना चाहते हैं, लबालब भरे हुए घट की तरह जल से परिपूर्ण हैं।

हे भगवन् ! क्या लवणसमुद्र में बहुत से बड़े मेघ सम्मूर्छिम जन्म के अभिमुख होते हैं, पैदा होते हैं अथवा वर्षा बरसाते हैं ?

हां, गौतम ! वहां मेघ होते हैं और वर्षा बरसाते है।

हे भगवन् ! जैसे लवणसमुद्र में बहुत से बड़े मेघ पैदा होते हैं और वर्षा बरसाते हैं, वैसे बाहर के समुद्रों में भी क्या बहुत से मेघ पैदा होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

हे गौतम ! ऐसा नहीं है।

हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है कि बाहर के समुद्र पूर्ण हैं, पूरे-पूरे भरे हुए हैं, मानो बाहर छलकना चाहते हैं, विशेष छलकना चाहते हैं और लबालब भरे हुए घट के समान जल से परिपूर्ण हैं ?

हे गौतम ! बाहर के समुद्रों में बहुत से उदकयोनि के जीव आते-जाते हैं और बहुत से पुद्गल उदक के रूप में एकत्रित होते हैं, विशेष रूप से एकत्रित होते हैं, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि बाहर के समुद्र पूर्ण हैं, पूरे-पूरे भरे हुए हैं यावत् लबालब भरे हुए घट के समान जल से परिपूर्ण हैं।

१७०. लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं उव्वेह-परिवुड्ढीए पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइं-पंचाणउइं वालग्गाइं पदेसे गंता पदेसउव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते। पंचाणउइं-पंचाणउइं वालग्गाइं गंता वालग्गं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते। पंचाणउइं-पंचाणउइं लिक्खाओ गंता लिक्खाउव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते। पंचाणउइं जवाओ जवमज्झे अंगुल-

लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थविरहिए खेत्ते पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स दसजोयणसहस्साइं गोतित्थविरहिए खेत्ते पण्णत्ते।

लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए उदगमाले पण्णत्ते ?

गोयमा ! दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते।

१७१. हे भगवन् ! लवणसमुद्र का[1] गोतीर्थ भाग कितना बड़ा है ?

(क्रमशः नीचा-नीचा गहराई वाला भाग गोतीर्थ कहलाता है।)

हे गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों किनारों पर ९५ हजार योजन का[2] गोतीर्थ है। (क्रमशः नीचा-नीचा गहरा होता हुआ भाग है।)

हे भगवन् ! लवणसमुद्र का कितना बड़ा भाग गोतीर्थ से विरहित कहा गया है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र का दस हजार योजन प्रमाणक्षेत्र गोतीर्थ से विरहित है। (अर्थात् इतना दस हजार योजन प्रमाण क्षेत्र समतल है।)

हे गौतम ! लवणसमुद्र की उदकमाला (समपानी पर सोलह हजार योजन ऊँचाई वाली जलमाला) कितनी बड़ी है ?

गौतम ! उदकमाला दस हजार योजन की है।[3] (जितना गहराई रहित भाग है, उस पर रही हुई जलराशि को उदकमाला कहते हैं।)

१७२. लवणे णं भंते ! समुद्दे किसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! गोतित्थसंठिए, नावासंठाणसंठिए, सिप्पिसंपुडसंठिए, आसखंधसंठिए, वलभिसंठिए वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं ? केवइयं परिक्खेवेणं ? केवइयं उव्वेहेणं ? केवइयं उस्सेहेणं ? केवइयं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एकासीइं च सहस्साइं सयं [च इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, सोलसजोयणसहस्साइं उस्सेहेणं सत्तरसजोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

१७२. हे भगवन् ! लवणसमुद्र का संस्थान कैसा है ?

गौतम ! लवणसमुद्र गोतीर्थ के आकार का, नाव के आकार का, सीप के पुट के आकार का, घोड़े के स्कंध के आकार का, वलभीगृह के आकार का, वर्तुल और वलयाकार संस्थान वाला है।

---

१. गोतीर्थमेव गोतीर्थम्—क्रमेण नीचो नीचतरः प्रवेशमार्गः।

२. "पंचाणउइं सहस्से गोतित्थे उभयओ वि लवणस्स।"

३. उदकमाला—समपानीयोपरिभूता षोडशयोजनसहस्रोच्छ्रया प्रज्ञप्ता।

पंचाणउए सहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओ वि ।
जोयणसहस्समेगं लवणे ओगाहओ होइ ॥ १ ॥

पंचाणउईण लवणे गंतूण जोयणाणि उभओ वि ।
जोयणमेगं लवणे ओगाहेणं मुणेयव्वा ॥ २ ॥

तात्पर्य यह हुआ कि ९५ योजन जाने पर यदि एक योजन गहराई में वृद्धि होती है तो ९५ गव्यूत पर्यन्त जाने पर एक गव्यूत की वृद्धि, ९५ धनुष पर्यन्त जाने पर एक धनुष की वृद्धि होती है, यह सहज ही ज्ञात हो जाता है। यह बात गहराई को लेकर कही गई है। इसके आगे लवणसमुद्र की ऊंचाई की वृद्धि को लेकर प्रश्न किया गया है और उत्तर दिया गया है।

प्रश्न किया गया है कि लवणसमुद्र के दोनों किनारों से आरम्भ करने पर कितनी-कितनी दूर जाने पर कितनी-कितनी जलवृद्धि होती है ? उत्तर में कहा गया है कि—लवणसमुद्र के पूर्वोक्त दोनों किनारों पर समतल भूभाग में जलवृद्धि अंगुल का असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है और आगे समतल से प्रदेशवृद्धि से जलवृद्धि क्रमशः बढ़ती हुई ९५ हजार योजन जाने पर सात सौ योजन की वृद्धि होती है। उससे आगे दस हजार योजन के विस्तारक्षेत्र में सोलह हजार योजन की वृद्धि होती है। तात्पर्य यह है कि लवणसमुद्र के दोनों किनारों से ९५ प्रदेश (त्रसरेणु) जाने पर १६ प्रदेश की उत्सेधवृद्धि कही गई है। ९५ बालाग्र जाने पर १६ बालाग्र की उत्सेधवृद्धि होती है। इसी तरह यावत् ९५ हजार योजन जाने पर १६ हजार योजन की उत्सेधवृद्धि होती है।

यहां त्रैराशिक भावना यह है कि ९५ हजार योजन जाने पर सोलह (१६) हजार योजन की उत्सेधवृद्धि होती है तो ९५ योजन जाने पर कितनी उत्सेधवृद्धि होगी ? राशित्रय की स्थापना—९५०००/१६०००/९५ दोनों—प्रथम और मध्यराशि के तीन तीन शून्य हटाने पर ९५/१६/९५ की राशि रहती है। मध्यमराशि १६ को तृतीय राशि ९५ से गुणा करने पर १५२० आते हैं। इसमें प्रथम राशि ९५ का भाग देने पर १६ भागफल होता है। अर्थात् ९५ योजन जाने पर १६ योजन की जलवृद्धि होती है। कहा है—

पंचाणउइसहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओ वि ।
उस्सेहेणं लवणो सोलस साहिस्सओ भणिओ ॥१॥

पंचणउई लवणे गंतूणं जोयणाणि उभओ वि ।
उस्सेहेणं लवणो सोलस किल जोयणे होइ ॥२॥

यदि ९५ योजन जाने पर १६ योजन का उत्सेध है तो ९५ गव्यूत जाने पर १६ गव्यूत का, ९५ धनुष जाने पर १६ धनुष का उत्सेध भी सहज ज्ञात हो जाता है।

गोतीर्थ-प्रतिपादन

१७१. लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थे पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं गोतित्थं पण्णत्ते ।

१७३. जइ णं भंते ! लवणसमुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एकासीइं च सहस्साइं सयं इगुयालं किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेणं सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते, कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णं एक्कोदगं करेइ ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे भरहेरवएसु वासेसु अरहंत चक्कवट्टि बलदेवा वासुदेवा चारणा विज्जाधरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया पगइभद्दया पगइविणीया पगइउवसंता पगइपयणु-कोह-माण-माया-लोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दगा विणीया, तेसिं णं पणिहाए लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेइ नो उप्पीलेइ नो चेव णं एगोदगं करेइ ।

गंगासिंधुरत्तारत्तवईसु सलिलासु देवयाओ महिड्ढीयाओ जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, तेसिं णं पणिहाय लवणसमुद्दे जाव नो चेव णं एगोदगं करेइ ।

चुल्लहिमवंतसिहरेसु वासहरपव्वएसु देवा महिड्ढिया तेसिं णं पणिहाय हेमवतेरण्णवएसु वासेसु मणुया पगइभद्दगा०, रोहितंस-सुवण्णकूल-रुप्पकूलासु सलिलासु देवयाओ महिड्ढियाओ तासिं पणिहाए० सद्दावइवियडावइवट्टवेयड्ढपव्वएसु देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, महाहिमवतरुप्पिसु वासहरपव्वएसु देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया, हरिवासरम्मयवासेसु मणुया पगईभद्दगा, गंधावइमालवंतपरियाएसु वट्टवेयड्ढपव्वएसु देवा महिड्ढिया० निसहनीलवंतेसु वासधरपव्वएसु देवा महिड्ढिया० सव्वाओ दहदेवयाओ भाणियव्वाओ, पउमदहतिगिच्छकेसरिदहावसाणेसु देवा महिड्ढियाओ तासिं पणिहाए० पुव्वविदेहावरविदेहेसु वासेसु अरहंतचक्कवट्टिबलदेववासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावगा सावियाओ मणुया पगइभद्दया तेसिं पणिहाए लवण०, सीयासीतोदगासु सलिलासु देवया महिड्ढिया० देवकुरुउत्तरकुरुसु मणुया पगइभद्दगा० मंदरे पव्वए देवया महिड्ढिया०

पन्नाससयसहस्सा जोयणाण भवे अणूणाइं ।
लवणसमुद्दासेयं जोयणसंधाए घणगणियं ॥३॥

यहां यह शंका होती है कि लवणसमुद्र सब जगह सत्रह हजार योजन प्रमाण नहीं है, मध्यभाग में तो उसका विस्तार दस हजार योजन है । फिर यह घनगणित कैसे संगत होता है । यह शंका सत्य है, किन्तु जब लवणशिखा के ऊपर दोनों वेदिकान्तों के ऊपर सीधी डोरी डाली जाती है तो जो अपान्तराल में जलशून्य क्षेत्र बनता है वह भी करणगति अनुसार सजल मान लिया जाता है. इस विषय में मेरुपर्वत का उदाहरण है । वह सर्वत्र एकादशभाग परिहानिरूप कहा जाता है परन्तु सर्वत्र इतनी हानि नहीं है । कहीं कितनी है, कहीं कितनी है । केवल मूल से लेकर शिखर तक डोरी डालने पर अपान्तराल में जो आकाश है वह सब मेरु का गिना जाता है । ऐसा मानकर गणितज्ञों ने सर्वत्र एकादश-परिभागहानि का कथन किया है । जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने भी विशेषणवती ग्रन्थ में यही बात कही है—"एवं उभयवेइयंताओ सोलस-सहस्सुस्सेहस्सकण्णगईए जं लवणसमुद्दाभव्वं जत्तसुन्नपि खेत्तं तस्स गणियं । जहा मंदरपव्वयस्स एक्कारसभागपरिहाणी कण्णगईए आगासस्स वि तदाभव्वंतिकाउं भणिया तहा लवणसमुद्दस्स वि ।"

इसका अर्थ पूर्व विवरण से स्पष्ट ही है ।

—वृत्तिकार

हे भगवन् ! लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ कितना है, उसकी परिधि कितनी है ? उसकी गहराई कितनी है, उसकी ऊँचाई कितनी है ? उसका समग्र प्रमाण कितना है ?

गौतम ! लवणसमुद्र चक्रवाल-विष्कंभ से दो लाख योजन का है, उसकी परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनचालीस (१५८११३९) योजन से कुछ कम है, उसकी गहराई एक हजार योजन है, उसका उत्सेध (ऊँचाई) सोलह हजार योजन का है। उद्वेध और उत्सेध दोनों मिलाकर समग्र रूप से उसका प्रमाण सत्तरह हजार योजन है।

विवेचन—लवणसमुद्र का आकार विविध अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार का बताया गया है। क्रमशः निम्न, निम्नतर गहराई बढ़ने के कारण गोतीर्थ के आकार का कहा गया है। दोनों तरफ समतल भूभाग की अपेक्षा क्रम से जलवृद्धि होने के कारण नाव के आकार का कहा है। उद्वेध का जल और जलवृद्धि का जल एकत्र मिलने की अपेक्षा से सीप के पुट के आकार का कहा है। दोनों तरफ ९५ हजार योजन पर्यन्त उन्नत होने से सोलह हजार योजन प्रमाण ऊँची शिखा होने से अश्वस्कन्ध की आकृति वाला कहा गया है। दस हजार योजन प्रमाण विस्तार वाली शिखा वलभी गृहाकार प्रतीत होने से वलभी (भवन की अट्टालिका—चांदनी) के आकार का कहा गया है। लवणसमुद्र गोल है तथा चूड़ी के आकार का है।

लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ, परिधि, उद्वेध, उत्सेध और समग्र प्रमाण मूलार्थ से ही स्पष्ट है।[1]

---

1. यहां पूर्वाचार्यों ने लवणसमुद्र के घन और प्रतर का गणित भी निकाला है जो जिज्ञासुओं के लिए यहां दिया जा रहा है। प्रतरभावना इस प्रकार है—लवणसमुद्र के दो लाख योजन विस्तार में से दस हजार योजन निकाल कर शेष राशि का आधा किया जाता है—ऐसा करने से ९५००० की राशि होती है। इस राशि में पहले के निकाले हुए दस हजार की राशि मिला दी जाती है तो १०५००० होते हैं। इस राशि को कोटी कहा जाता है। इस कोटी से लवणसमुद्र का मध्यभागवर्ती परिरय (परिधि) ९४८६८३ का गुणा किया जाता है तो प्रतर का परिमाण निकल आता है। वह परिमाण है—९९६११७१५००० । कहा है—

वित्थाराओ सोहिय दस सहस्साइं सेस अद्धम्मि ।
तं चेव पक्खिवित्ता लवणसमुद्दस्स सा कोडी ॥१॥
लक्खं पंचसहस्सा कोडीए तीए संगुणेऊणं ।
लवणस्स मज्झपरिहिं ताहे पयरं इमं होइ ॥२॥
नवनउई कोडिसया एगट्ठी कोडिलक्खसत्तरसा ।
पन्नरस सहस्साणि य पयरं लवणस्स निद्दिट्ठं ॥३॥

घनगणित इस प्रकार है—लवणसमुद्र की १६००० योजन की शिखा और एक हजार योजन उद्वेध कुल सत्तरह हजार योजन की संख्या से पूर्वोक्त प्रतर के परिमाण को गुणित करने से लवणसमुद्र का घन निकल आता है। वह है—१६९३३९९१५५०००००० योजन। कहा है—

जोयणसहस्स सोलस लवणसिहा अहोगया सहस्सेगं ।
पयरं सत्तरसहस्ससंगुणं लवणघणगणियं ॥१॥
सोलस कोडाकोडी तेणउइ कोडिसयसहस्साओ ।
उणयालीससहस्सा नवकोडिसया य पन्नरसा ॥२॥

(आगे के पृष्ठ में)

धातकीखण्ड की वक्तव्यता

१७४. लवणसमुद्दं धायइसंडे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ ।

धायइसंडे णं भंते ! दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ?

गोयमा ! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए ।

धायइसंडे णं भंते ! दीवे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, एकयालीसं जोयणसयसहस्साइं दस-जोयणसहस्साइं णवएगट्ठे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, दोण्ह वि वण्णओ दीवसमिया परिक्खेवेणं ।

धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए ।

कहि णं भंते ! धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! धायइसंडपुरत्थिमपेरंते कालोयसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीयाए महाणवीए उप्पिं एत्थ णं धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, तं चेव पमाणं । रायहाणीओ अण्णंमि धायइसंडे दीवे । दीवस्स वत्तव्वया भाणियव्वा । एवं चत्तारिवि दारा भाणियव्वा ।

धायइसंडस्सं णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दस जोयणसयसहस्साइं सत्तावीसं च जोयणसहस्साइं सत्तपणतीसे जोयणसए तिन्नि य कोसे दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स पएसा कालोयगं समुद्दं पुट्ठा ? हंता, पुट्ठा । ते णं भंते ! किं धायइसंडे दीवे कालोए समुद्दे ? ते धायइसंडे, नो खलु ते कालोयसमुद्दे । एवं कालोयस्सवि ।

धायइसंडदीवे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता कालोए समुद्दे पच्चायंति ?

गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया नो पच्चायंति । एवं कालोएवि अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया नो पच्चायंति ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—धायइसंडे दीवे धायइसंडे दीवे ?

गोयमा ! धायइसंडे णं दीवे तत्थ तत्थ पएसे धायइरुक्खा धायइवणा धायइवणसंडा णिच्चं

जंबूए णं सुदंसणाए जंबूदीवाहिवई प्रणाढिए नामं देवे महिड्ढिए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसति, तस्स पणिहाए लवणसमुद्दे नो उवीलेइ नो उप्पीलेइ नो चेव णं एकोदगं करेइ, अदुत्तरं च णं गोयमा ! लोगट्ठिई लोगाणुभावे जण्णं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेइ नो उप्पीलेइ नो चेव णं एगोदगं करेइ ।

१७३. हे भगवन् ! यदि लवणसमुद्र चक्रवाल-विष्कंभ से दो लाख योजन का है, पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनचालीस योजन से कुछ कम उसकी परिधि है, एक हजार योजन उसकी गहराई है और सोलह हजार योजन उसकी ऊँचाई है कुल मिलाकर सत्तरह हजार योजन उसका प्रमाण है । तो भगवन् ! वह लवणसमुद्र जम्बूद्वीप नामक द्वीप को जल से आप्लावित क्यों नहीं करता, क्यों प्रबलता के साथ उत्पीड़ित नहीं करता ? और क्यों उसे जलमग्न नहीं कर देता ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत-ऐरवत क्षेत्रों में अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, जंघाचारण आदि विद्याधर मुनि, श्रमण, श्रमणियां, श्रावक और श्राविकाएं हैं, (यह कथन तीसरे-चौथे-पांचवें आरे की अपेक्षा से है ।) (प्रथम आरे की अपेक्षा) वहां के मनुष्य प्रकृति से भद्र, प्रकृति से विनीत, उपशान्त, प्रकृति से मन्द क्रोध-मान-माया-लोभ वाले, मृदु-मार्दवसम्पन्न, आलीन, भद्र और विनीत हैं, उनके प्रभाव से लवणसमुद्र जंबूद्वीप को जल-आप्लावित, उत्पीड़ित और जलमग्न नहीं करता है । (छठे आरे की अपेक्षा से) गंगा-सिन्धु-रक्ता और रक्तवती नदियों में महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थितवाली देवियां रहती हैं । उनके प्रभाव से लवणसमुद्र जंबूद्वीप को जलमग्न नहीं करता ।

क्षुल्लकहिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वतों में महर्द्धिक देव रहते हैं, उनके प्रभाव से,

हेमवत-ऐरण्यवत वर्षों (क्षेत्रों) में मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत हैं, उनके प्रभाव से,

रोहितांश, सुवर्णकूला और रूप्यकूला नदियों में जो महर्द्धिक देवियां हैं, उनके प्रभाव से,

शब्दापाति विकटापाति वृत्तवैताढ्य पर्वतों में महर्द्धिक पल्योपम की स्थितिवाले देव रहते हैं, उनके प्रभाव से,

महाहिमवंत और रुक्मि वर्षधरपर्वतों में महर्द्धिक यावत् पल्योपम स्थितिवाले देव रहते हैं, उनके प्रभाव से,

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्रों में मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत हैं, गंधापति और मालवंत नाम के वृत्तवैताढ्य पर्वतों में महर्द्धिक देव हैं, निषध और नीलवंत वर्षधरपर्वतों में महर्द्धिक देव हैं, इसी तरह सब द्रहों की देवियों का कथन करना चाहिए, पद्मद्रह तिगिंछद्रह केसरिद्रह आदि द्रहों में महर्द्धिक देव रहते हैं, उनके प्रभाव से,

पूर्वविदेहों और पश्चिमविदेहों में अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, जंघाचारण विद्याधर मुनि, श्रमण, श्रमणियां, श्रावक, श्राविकाएं एवं मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत हैं, उनके प्रभाव से,

मेरुपर्वत के महर्द्धिक देवों के प्रभाव से, (उत्तरकुरु में) जम्बू सुदर्शना में अनाहत नामक जंबूद्वीप का अधिपति महर्द्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाला देव रहता है, उसके प्रभाव से लवणसमुद्र जंबूद्वीप को जल से आप्लावित, उत्पीड़ित और जलमग्न नहीं करता है ।

गौतम ! दूसरी बात यह है कि लोकस्थिति और लोकस्वभाव (लोकमर्यादा या जगत्-स्वभाव) ही ऐसा है कि लवणसमुद्र जंबूद्वीप को जल से आप्लावित, उत्पीड़ित और जलमग्न नहीं करता है ।

॥ तृतीय प्रतिपत्ति में मन्दरोद्देशक समाप्त ॥

धातकीखण्ड की वक्तव्यता

१७४. लवणसमुद्दं धायइसंडे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ताणं चिट्ठइ।

धायइसंडे णं भंते ! दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ?

गोयमा ! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए।

धायइसंडे णं भंते ! दीवे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, एकयालीसं जोयणसयसहस्साइं दस-जोयणसहस्साइं णवएगट्ठे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, दोण्ह वि वण्णओ दीवसमिया परिक्खेवेणं।

धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

कहि णं भंते ! धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! धायइसंडपुरत्थिमपेरंते कालोयसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीयाए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, तं चेव पमाणं। रायहाणीओ अण्णंमि धायइसंडे दीवे। दीवस्स वत्तव्वया भाणियव्वा। एवं चत्तारिवि दारा भाणियव्वा।

धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दस जोयणसयसहस्साइं सत्तावीसं च जोयणसहस्साइं सत्तपणतीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स पएसा कालोयगं समुद्दं पुट्ठा ? हंता, पुट्ठा। ते णं भंते ! किं धायइसंडे दीवे कालोए समुद्दे ? ते धायइसंडे, नो खलु ते कालोयसमुद्दे। एवं कालोयस्सवि।

धायइसंडदीवे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता कालोए समुद्दे पच्चायंति ?

गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया नो पच्चायंति। एवं कालोएवि अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया नो पच्चायंति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—धायइसंडे दीवे धायइसंडे दीवे ?

गोयमा ! धायइसंडे णं दीवे तत्थ तत्थ पएसे धायइरुक्खा धायइवणा धायइवणसंडा णिच्चं

कुसुमिया जाव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति । धायइमहाधायइरुक्खेसु सुदंसणपियदंसणा दुवे देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, से एएणट्ठेणं एवं वुच्चइ—धायइसंडे दीवे धायइसंडे दीवे । अदुत्तरं च णं गोयमा ! जाव णिच्चे ।

धायइसंडे णं दीवे कति चंदा पभासिंसु वा पभासिंति वा पभासिस्संति वा ? कइ सूरिया तविंसु वा ३ । कइ महग्गहा चारं चरिंसु वा ३ ? कइ णक्खत्ता जोगं जोइंसु वा ३ ? कइ तारागण-कोडाकोडीओ सोभिंसु वा ३ ?

गोयमा ! बारस चंदा पभासिंसु वा ३ एवं—

चउवीसं ससिरविणो णक्खत्तसता य तिन्नि छत्तीसा ।
एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायइसंडे ॥१॥
अट्ठेव सयसहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं ।
धायइसंडे दीवे तारागण कोडिकोडीणं ॥२॥
सोभिंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा ।

१७४. धातकीखण्ड नाम का द्वीप, जो गोल वलयाकार संस्थान से संस्थित है, लवणसमुद्र को सब ओर से घेरे हुए संस्थित है ।

भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है या विषमचक्रवाल संस्थान-संस्थित है ?

गौतम ! धातकीखण्ड समचक्रवाल संस्थान-संस्थित है, विषमचक्रवालसंस्थित नहीं है ।

भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप चक्रवाल-विष्कंभ से कितना चौड़ा है और उसकी परिधि कितनी है ?

गौतम ! यह चार लाख योजन चक्रवालविष्कंभ वाला और इकतालीस लाख दस हजार नौ सौ इकसठ योजन से कुछ कम परिधि वाला है ।[1]

यह धातकीखण्ड एक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है । दोनों का वर्णनक कहना चाहिए । धातकीखण्डद्वीप के समान ही उनकी परिधि है ।

भगवन् ! धातकीखण्ड के कितने द्वार हैं ?

गौतम ! धातकीखण्ड के चार द्वार हैं, यथा—विजय, वैजयंत, जयन्त और अपराजित ।

---

१. एगयालीसं लक्खा दस य सहस्साणि जोयणाणं तु ।
नव य सया एगट्ठा किंचूणो परिरओ तस्स ॥१॥

हे भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप का विजयद्वार कहां पर स्थित है ?

गौतम ! धातकीखण्ड के पूर्वी दिशा के अन्त में और कालोदसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिमदिशा में शीता महानदी के ऊपर धातकीखण्ड का विजयद्वार है। जम्बूद्वीप के विजयद्वार की तरह ही इसका प्रमाण आदि जानना चाहिए। इसकी राजधानी अन्य धातकीखण्डद्वीप में है, इत्यादि वर्णन जंबूद्वीप की विजया राजधानी के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार विजयद्वार सहित चारों द्वारों का वर्णन समझना चाहिए।

हे भगवन् ! धातकीखण्ड के एक द्वार से दूसरे द्वार का अपान्तराल अन्तर कितना है ?

गौतम ! दस लाख सत्तावीस हजार सात सौ पैंतीस (१०२७७३५) योजन और तीन कोस का अपान्तराल अन्तर है।[1] (एक-एक द्वार की द्वारशाखा सहित मोटाई साढे चार योजन है। चार द्वारों की मोटाई १८ योजन हुई। धातकीखण्ड की परिधि ४११०९६१ योजन में से १८ योजन कम करने से ४११०९४३ योजन होते हैं। इनमें चार का भाग देने से एक-एक द्वार का उक्त अन्तर निकल आता है।)

भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप के प्रदेश कालोदधिसमुद्र से छुए हुए हैं क्या ? हां गौतम ! छुए हुए हैं।

भगवन् ! वे प्रदेश धातकीखण्ड के हैं या कालोदसमुद्र के ?

गौतम ! वे प्रदेश धातकीखण्ड के हैं, कालोदसमुद्र के नहीं। इसी तरह कालोदसमुद्र के प्रदेशों के विषय में भी कहना चाहिए।

भगवन् ! धातकीखण्ड से निकलकर (मरकर) जीव कालोदसमुद्र में पैदा होते हैं क्या ?

गौतम ! कोई जीव पैदा होते हैं, कोई जीव नहीं पैदा होते हैं। इसी तरह कालोदसमुद्र से निकलकर धातकीखण्डद्वीप में कोई जीव पैदा होते हैं और कोई नही पैदा होते हैं।

भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है कि धातकीखण्ड, धातकीखण्ड है ?

गौतम ! धातकीखण्डद्वीप में स्थान-स्थान पर यहां वहां धातकी के वृक्ष, धातकी के वन और धातकी के वनखण्ड नित्य कुसुमित रहते हैं यावत् शोभित होते हुए स्थित है, धातकी महावृक्ष [illegible] पर सुदर्शन और प्रियदर्शन नाम के दो महर्द्धिक पल्योपम स्थितिवाले देव रहते हैं, इस कारण धातकी-खण्ड, धातकीखण्ड कहलाता है। गौतम ! दूसरी बात यह है कि धातकीखण्ड [illegible] है। (द्रव्यापेक्षया नित्य और पर्यायापेक्षया अनित्य है) अतएव शाश्वत काल से [illegible] नाम अनिमित्तक है।

भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित हुए, होते हैं और [illegible] तपित होते थे, होते हैं और होंगे ? कितने महाग्रह चलते थे, चलते हैं और [illegible] चन्द्रादि से योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे ? और कितने कोटाकोटि [illegible] होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे ?

---

१. पणतीसा सत्त सया सत्तावीसा सहस्स दस लक्खा।
धाइयखंडे दारंतरं तु अवरं कोसतियं ॥१॥

गौतम ! धातकीखण्डद्वीप में बारह चन्द्र उद्योत करते थे, करते हैं और करेंगे। इसी प्रकार बारह सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे।[1] तीन सौ छत्तीस नक्षत्र चन्द्र सूर्य से योग करते थे, करते हैं और करेंगे। (एक-एक चन्द्र के परिवार में २८ नक्षत्र हैं। बारह चन्द्रों के ३३६ नक्षत्र हैं।) एक हजार छप्पन महाग्रह चलते थे, चलते हैं और चलेंगे। (प्रत्येक चन्द्र के परिवार में ८८ महाग्रह हैं। बारह चन्द्रों के १२ × ८८ = १०५६ महाग्रह हैं।) आठ लाख तीन हजार सात सौ कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।[2]

कालोदसमुद्र की वक्तव्यता

१७५. धायइसंडं णं दीवं कालोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ।

कालोदे णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठाणसंठिए विसमचक्कवालसंठाणसंठिए ?

गोयमा ! समचक्कवालसंठाणसंठिए नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए।

कालोदे णं भंते ! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठजोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं एकाणउइजोयणसयसहस्साइं सत्तरि-सहस्साइं छच्च पंचुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं, संपरिक्खित्ते, दोण्हवि वण्णओ।

कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

कहि णं भंते ! कालोदस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कालोदे समुद्दे पुरत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीतोदाए महाणईए उप्पि एत्थ णं कालोदस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते। अट्ठेव जोयणाइं तं चेव पमाणं जाव रायहाणीओ।

कहि णं भंते ! कालोयस्स समुद्दस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कालोयस्स समुद्दस्स दक्खिणपेरंते पुक्खरवरदीवस्स दक्खिणद्धस्स उत्तरेणं, एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स वेजयंते नामं दारे पण्णत्ते।

---

१. 'चउवीसं ससिरविणो' का अर्थ १२ चन्द्र और १२ सूर्य समझना चाहिये।

२. उक्तं च—बारस चंदा सूरा नक्खत्तसया य तिन्नि छत्तीसा।
एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायइसंडे ॥१॥
अट्ठेव सयसहस्सा तिन्नि सहस्सा य सत्त य सया य।
धायइसंडे दीवे तारागणकोडिकोडीओ ॥२॥

कहि णं भंते ! कालोयसमुद्दस्स जयंते नामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स पच्चत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणईए उप्पि जयंते णामं दारे पण्णत्ते ।

कहि णं भंते ! कालोयसमुद्दस्स अपराजिए नामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स उत्तरद्धपेरंते पुक्खरवरदीवोत्तरद्धस्स दाहिणओ एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स अपराजिए णामं दारे पण्णत्ते । सेसं तं चेव ।

कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा !—बावीससयसहस्सा बाणउइं खलु भवे सहस्साइं ।
छच्च सया बायाला दारंतरं तिन्नि कोसा य ॥१॥

दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

कालोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स पएसा पुक्खरवरदीवं पुट्ठा ? तहेव, एवं पुक्खरवरदीवस्सवि जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तहेव भाणियव्वं ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—कालोए समुद्दे कालोए समुद्दे ?

गोयमा ! कालोयस्स णं समुद्दस्स उदगे आसले मासले पेसले कालए मासरासिवण्णाभे पगईए उदगरसे णं पण्णत्ते, काल-महाकाला एत्थ दुवे देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव णिच्चे ।

कालोए णं भंते ! समुद्दे कति चंदा पभासिंसु वा ३ पुच्छा ?

गोयमा ! कालोए णं समुद्दे बायालीसं चंदा पभासिंसु वा ३ ।

बायालीसं चंदा बायालीसं य दिणयरा दित्ता ।
कालोदहिम्मि एते चरंति संबद्धलेसागा ॥१॥

णक्खत्ताण सहस्सं एगं छावत्तरं च सयमण्णं ।
छच्चसया छण्णउया महागया तिण्णि य सहस्सा ॥२॥

अट्ठावीसं कालोदहिम्मि बारस य सयसहस्साइं ।
नव य सया पन्नासा तारागणकोडिकोडीणं ॥३॥

सोभिंसु वा ३ ॥

१७५. गोल और वलयाकार आकृति का कालोद (कालोदधि) नाम का समुद्र धातकीखण्ड द्वीप को सब ओर से घेर कर रहा हुआ है ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र समचक्रवाल रूप में संस्थित है या विषमचक्रवालसंस्थान से संस्थित है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र समचक्रवाल रूप से संस्थित है, विषमचक्रवाल रूप से नहीं ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का चक्रवालविष्कंभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र आठ लाख योजन का चक्रवालविष्कंभ से है और इक्यानवें लाख सत्तर हजार छह सौ पांच योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है । (एक हजार योजन उसकी गहराई है ।)[1]

यह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से परिवेष्टित है । दोनों का वर्णनक कहना चाहिए ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र के कितने द्वार हैं ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के चार द्वार हैं—विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का विजयद्वार कहां स्थित है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के पूर्वदिशा के अन्त में और पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में शीतोदा महानदी के ऊपर कालोदसमुद्र का विजयद्वार है । वह आठ योजन का ऊँचा है आदि प्रमाण पूर्ववत् यावत् राजधानी पर्यन्त जानना चाहिए ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का वैजयंतद्वार कहां है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के दक्षिण पर्यन्त में, पुष्करवरद्वीप के दक्षिणार्ध भाग के उत्तर में कालोदसमुद्र का वैजयंतद्वार है ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का जयन्तद्वार कहां है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के पश्चिमान्त में, पुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्ध के पूर्व में शीता महानदी के ऊपर जयंत नाम का द्वार है ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का अपराजितद्वार कहां है ।

गौतम ! कालोदसमुद्र के उत्तरार्ध के अन्त में और पुष्करवरद्वीप के उत्तरार्ध के दक्षिण में कालोदसमुद्र का अपराजितद्वार है । शेष वर्णन पूर्वोक्त जम्बूद्वीप के अपराजितद्वार के समान जानना चाहिए । (विशेष यह है कि राजधानी कालोदसमुद्र में कहनी चाहिए ।)

भगवन् ! कालोदसमुद्र के एक द्वार से दूसरे का अपान्तराल अन्तर कितना है ?

गौतम ! बावीस लाख बानवें हजार छह सौ छियालीस योजन और तीन कोस का एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर है । (चारों द्वारों की मोटाई १८ योजन कालोदसमुद्र की परिधि में से घटाने पर

---

१. उक्तं च—अट्ठेव सयसहस्सा कालोओ चक्कवालओ रुंदो ।
जोयणसहस्समेगं ओगाहेण मुणेयव्वो ॥१॥
इगनउइसयसहस्सा हवंति तह सत्तरि सहस्सा य ।
छच्च सया पंचहिया कालोदहिपरिरओ एसो ॥२॥

९१७०५८७ होते हैं। इनमें ४ का भाग देने पर २२९२६४६ योजन और तीन कोस का प्रमाण आ जाता है।)

भगवन्! कालोदसमुद्र के प्रदेश पुष्करवरद्वीप से छुए हुए हैं क्या? इत्यादि कथन पूर्ववत् करना चाहिये, यावत् पुष्करवरद्वीप के जीव मरकर कालोद समुद्र में कोई उत्पन्न होते हैं और कोई नहीं।

भगवन्! कालोदसमुद्र, कालोदसमुद्र क्यों कहलाता है?

गौतम! कालोदसमुद्र का पानी आस्वाद्य है, मांसल (भारी होने से), पेशल (मनोज्ञ स्वाद वाला) है, काला है, उड़द की राशि के वर्ण का है और स्वाभाविक उदकरस वाला है, इसलिए वह कालोद कहलाता है। वहां काल और महाकाल नाम के पल्योपम की स्थिति वाले महर्द्धिक दो देव रहते हैं। इसलिए वह कालोद कहलाता है। गौतम! दूसरी बात यह है कि कालोदसमुद्र शाश्वत होने से उसका नाम भी शाश्वत और अनिमित्तक है।

भगवन्! कालोदसमुद्र में कितने चन्द्र उद्योत करते थे आदि प्रश्न पूर्ववत् जानना चाहिए?

गौतम! कालोदसमुद्र में बयालीस चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं और उद्योत करेंगे। गाथा में कहा है कि

कालोदधि में बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य सम्बद्धलेश्या वाले विचरण करते हैं। एक हजार एक सौ छिहत्तर नक्षत्र और तीन हजार छह सौ छियानवें महाग्रह और अट्ठाईस लाख बारह हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारागण शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।[1]

पुष्करवरद्वीप की वक्तव्यता

१७६. (अ) कालोयं णं समुद्दं पुक्खरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठई, तहेव जाव समचक्कवालसंठाणसंठिए नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए।

पुक्खरवरे णं भंते! दीवे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! सोलस जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,—

एगा जोयणकोडी बाणउइं खलु भवे सयसहस्सा।
अउणाणउइं अट्ठसया चउणउया य परिरओ पुक्खरवरस्स।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं संपरिक्खित्ते। दोण्हवि वण्णओ।

पुक्खरवरस्स णं भंते! कति दारा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

कहि णं भंते! पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! पुक्खरवरदीवपुरच्छिमपेरंते पुक्खरोदसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं

१. प्रस्तुत पाठ में आई तीन गाथाएं वृत्तिकार के सामने रही हुई प्रतियों में नहीं थी, ऐसा लगता है, इसीलिए उन्होंने "अन्यत्राप्युक्तं" ऐसा वृत्ति में लिखकर उक्त तीन गाथाएं उद्धृत की है। —सम्पादक

पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, तं चेव सव्वं। एवं चत्तारिवि दारा। सीयासीओदा णत्थि भाणियव्वाओ।

पुक्खरवरस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं।
अगुणुत्तरा य चउरो दारंतर पुक्खरवरस्स ॥१॥

पएसा दोण्हवि पुट्ठा, जीवा दोसुवि भाणियव्वा।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ पुक्खरवरदीवे पुक्खरवरदीवे?

गोयमा! पुक्खरवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे पउमरुक्खा पउमवणा पउमवणसंडा णिच्चं कुसुमिया जाव चिट्ठंति; पउममहापउमरुक्खे एत्थ णं पउमपुंडरीया णामं दुवे देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ पुक्खरवरदीवे पुक्खरवरदीवे जाव णिच्चे।

पुक्खरवरे णं भंते! दीवे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३? एवं पुच्छा—

चोयालं चंदसयं चउयालं चेव सूरियाण सयं।
पुक्खरवरदीवंमि चरंति एता पभासेंता ॥ १ ॥

चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं चेव होंति णक्खत्ता।
छच्च सया बावत्तर महग्गहा बारह सहस्सा ॥ २ ॥

छण्णउइ सयसहस्सा चत्तालीसं भवे सहस्साइं।
चत्तारि सया पुक्खरवर तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥

सोभिंसु वा सोभन्ति वा सोभिस्संति वा।

१७६. (अ) गोल और वलयाकार संस्थान से संस्थित पुष्करवर नाम का द्वीप कालोदसमुद्र को सब ओर से घेर कर रहा हुआ है। उसी प्रकार कहना चाहिए यावत् यह समचक्रवाल संस्थान वाला है, विषमचक्रवाल संस्थान वाला नहीं है।

भगवन्! पुष्करवरद्वीप का चक्रवालविष्कंभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है?

गौतम! वह सोलह लाख योजन चक्रवालविष्कंभ वाला है और उसकी परिधि एक करोड़ बानवै लाख नवासी हजार आठ सौ चौरानवै (१९२८९८९४) योजन है।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से परिवेष्टित है। दोनों का वर्णनक कहना चाहिए।

भगवन्! पुष्करवरद्वीप के कितने द्वार हैं?

गौतम! चार द्वार हैं— विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित।

भगवन् ! पुष्करवरद्वीप का विजयद्वार कहाँ है ?

गौतम ! पुष्करवरद्वीप के पूर्वी पर्यन्त में और पुष्करोदसमुद्र के पूर्वार्ध के पुष्करवरद्वीप का विजयद्वार है, आदि वर्णन जंबूद्वीप के विजयद्वार के समान कहना चाहि प्रकार चारों द्वारों का वर्णन जानना चाहिए । लेकिन शीता शीतोदा नदियों का सद् कहना चाहिये ।

भगवन् ! पुष्करवरद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कितना है ?

गौतम ! अड़तालीस लाख बावीस हजार चार सौ उनहत्तर (४८२२४६९) योजन है । (चारों द्वारों की मोटाई १८ योजन है । पुष्करवरद्वीप की परिधि १९२८९८९४ यो १८ योजन कम करने पर १९२८९८७६ योजन की राशि को ४ से भाग देने पर उक्त प्रमा आता है ।)

पुष्करवरद्वीप के प्रदेश पुष्करवरसमुद्र से स्पृष्ट है और वे प्रदेश उसी के हैं, पुष्करवरसमुद्र के प्रदेश पुष्करवरद्वीप से छुए हुए हैं और उसी के हैं । पुष्करवरद्वीप और समुद्र के जीव मरकर कोई कोई उनमें उत्पन्न होते हैं और कोई कोई उनमें उत्पन्न नहीं भी ह

भगवन् ! पुष्करवरद्वीप पुष्करवरद्वीप क्यों कहलाता है ?

गौतम ! पुष्करवरद्वीप में स्थान-स्थान पर यहां-वहां बहुत से पद्मवृक्ष, पद्मवन और प नित्य कुसुमित रहते हैं तथा पद्म और महापद्म वृक्षों पर पद्म और पुंडरीक नाम के पल्योप वाले दो महर्द्धिक देव रहते है, इसलिए पुष्करवरद्वीप पुष्करवरद्वीप कहलाता है यावत् नित्य

भगवन् ! पुष्करवरद्वीप में कितने चन्द्र उद्योत करते थे, करते हैं और करेंगे—इत करना चाहिए ?

गौतम ! एक सौ चवालीस चन्द्र और एक सौ चवालीस सूर्य पुष्करवरद्वीप में प्रभा हुए विचरते हैं । चार हजार बत्तीस (४०३२) नक्षत्र और बारह हजार छह सौ बहत्तर (महाग्रह हैं । छियानवें लाख चवालीस हजार चार सौ (९६४४४००) कोडाकोडी तारागण द्वीप में शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होंगे ।

मानुषोत्तरपर्वत की वक्तव्यता

१७६. (आ) पुक्खरवरदीवस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं माणुसुत्तरे नामं पव्वए घट्टे वलयागारसंठाणसंठिए, जे णं पुक्खरवरदीवं दुहा विभयमाणे विभयमाणे चिट्ठइ, तं जहा— पुक्खरद्धं च बाहिरपुक्खरद्धं च ।

अब्भितरपुक्खरद्धे णं भंते ! केवइयं चक्कवालेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठजोयण सयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं—

कोडी बायालीसा तीसं दोण्णि य सया अगुणवण्णा ।
पुक्खरवद्धपरिरओ एवं च मणुस्सखेत्तस्स ॥ १ ॥

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अब्भितरपुक्खरद्धे य अब्भितरपुक्खरद्धे य ?

गोयमा ! अब्भितरपुक्खरद्धेणं माणुसुत्तरेणं पव्वएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते । से एएणट्ठेणं गोयमा ! अब्भितरपुक्खरद्धे य अब्भितरपुक्खरद्धे य । अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे ।

अब्भितरपुक्खरद्धे णं भंते ! केवइया चंदा पभासिसु ३, सा चेव पुच्छा जाव तारागणकोडिकोडीओ ? गोयमा !

बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणकरा दित्ता ।
पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एते पभासेंता ॥ १ ॥
तिण्णि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु ।
णक्खत्ताणं तु भवे सोलाइं दुवे सहस्साइं ॥ २ ॥
अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं ।
दोण्णि सया पुक्खरद्धे तारागण कोडिकोडीणं ॥ ३ ॥

१७६. (आ) पुष्करवरद्वीप के बहुमध्यभाग में मानुषोत्तर नामक पर्वत है, जो गोल है और वलयकार संस्थान से संस्थित है । यह पर्वत पुष्करवरद्वीप को दो भागों में विभाजित करता है— आभ्यन्तर पुष्करार्ध और बाह्य पुष्करार्ध ।

भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध का चक्रवालविष्कंभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है?

गौतम ! आठ लाख योजन का उसका चक्रवालविष्कंभ है और उसकी परिधि एक करोड़, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन की है । मनुष्यक्षेत्र की परिधि भी यही है ।

भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध आभ्यन्तर पुष्करार्ध क्यों कहलाता है ?

गौतम ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध सब ओर से मानुषोत्तरपर्वत से घिरा हुआ है । इसलिये यह आभ्यन्तर पुष्करार्ध कहलाता है । दूसरी बात यह है कि वह नित्य है (अतः यह अनिमित्तक नाम है ।)

भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, होते हैं और होंगे, आदि यही प्रश्न तारागण कोटाकोडी पर्यन्त करना चाहिए ।

गौतम ! बहत्तर चन्द्रमा और बहत्तर सूर्य प्रभासित होते हुए पुष्करवरद्वीपार्ध में विचरण करते हैं ॥ १ ॥

छह हजार तीन सौ छत्तीस महाग्रह और दो हजार सोलह नक्षत्र गति करते हैं और चन्द्रादि से योग करते हैं ॥ २ ॥

अड़तालीस लाख बावीस हजार दो सौ ताराओं की कोटाकोटी वहाँ शोभित होती थी, शोभित होती है और शोभित होगी ॥ ३ ॥

विवेचन—सब जगह तारा-परिमाण में कोटी-कोटी से मतलब क्रोड़ (कोटि) ही समझना चाहिए । पूर्वाचार्यों ने ऐसी ही व्याख्या की है । क्योंकि क्षेत्र थोड़ा है । अन्य आचार्य उत्सेधांगुलप्रमाण से कोटिकोटि की संगति करते हैं । कहा है—

"कोडाकोडी सन्नंतरं तु मन्नंति केई थोवतया।
अन्ने उस्सेहांगुलमाणं काऊण ताराणं" ॥१॥ —वृत्ति

समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) का वर्णन

१७७. (अ) समयखेत्ते णं भंते ! केवइयं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं एगा जोयणकोडी जाव अब्भिंतर पुक्खरद्धपरिरओ से भाणियव्वो जाव अऊणपण्णे।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—माणुसखेत्ते माणुसखेत्ते ?

गोयमा ! माणुस्सखेत्तेणं तिविहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ माणुसखेत्ते माणुसखेत्ते।

माणुसखेत्ते णं भंते ! कति चंदा पभासिसु वा ३, कइ सूरा तविंसु वा ३ ?

बत्तीसं चंदसयं बत्तीसं चेव सूरियाण सयं।
सयलं मणुस्सलोयं चरेंति एए पभासंता ॥ १ ॥
एक्कारस य सहस्सा छप्पि य सोलगमहग्गहाणं तु।
छच्च सया छण्णउया णक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा ॥ २ ॥
अडसीइ सयसहस्सा चत्तालीस सहस्स मणुयलोगंमि।
सत्त य सया अणूणा तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥

सोभं सोभेंसु वा ३।

१७७. (अ) हे भगवन् ! समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) का आयाम-विष्कंभ कितना और परिधि कितनी है ?

गौतम ! समयक्षेत्र आयाम-विष्कंभ से पैंतालीस लाख योजन का है और उसकी परिधि वही है जो आभ्यन्तर पुष्करवरद्वीप की कही है। अर्थात् एक करोड़, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनपचास योजन की परिधि है।

हे भगवन् ! मनुष्यक्षेत्र, मनुष्यक्षेत्र क्यों कहलाता है ?

गौतम ! मनुष्यक्षेत्र में तीन प्रकार के मनुष्य रहते हैं, यथा—कर्मभूमक, अकर्मभूमक और अन्तर्द्वीपक। इसलिए यह मनुष्यक्षेत्र कहलाता है।

हे भगवन् ! मनुष्यक्षेत्र में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ? कितने सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे ? आदि प्रश्न कर लेना चाहिए।

गौतम ! समयक्षेत्र में एक सौ बत्तीस चन्द्र और एक सौ बत्तीस सूर्य प्रभासित होते हुए सकल मनुष्यक्षेत्र में विचरण करते हैं ॥ १ ॥

ग्यारह हजार छह सौ सोलह महाग्रह यहां अपनी चाल चलते है और तीन हजार छह सौ छियानवें नक्षत्र चन्द्रादिक के साथ योग करते है ।। २ ।।

अठासी लाख चालीस हजार सात सौ (८८४०७००) कोटाकोटी तारागण मनुष्यलोक में शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे ।। ३ ।।

१७७. (आ) एसो तारापिंडो सव्वसमासेण मणुयलोगम्मि ।
बहिया पुण ताराओ जिणेहि भणिया असंखेज्जा ।।१।।
एयइयं तारग्गं जं भणियं माणुसम्मि लोगम्मि ।
चारं कलुंबयापुप्फसंठियं जोइसं चरइ ।।२।।
रवि-ससि-गह-नक्खत्ता एवइया आहिया मणुयलोए।
जेसिं नामागोयं न पागया पन्नवेहिंति ।।३।।
छावट्ठि पिडगाइं चंदाइच्चा मणुयलोगम्मि।
छप्पन्नं नक्खत्ता य होंति एक्केक्कए पिडए ।।४।।
छावट्ठि पिडगाइं महग्गहाणं तु मणुयलोगम्मि।
छावत्तरं गहसयं य होइ एक्केक्कए पिडए ।।६।।
चत्तारि य पंतीओ चंदाइच्चाण मणुयलोगम्मि।
छावट्ठि य छावट्ठि य होइ य एक्केक्किया पंती ।।७।।
छप्पन्नं पंतीओ नक्खत्ताणं तु मणुयलोगम्मि।
छावट्ठी छावट्ठी य होइ एक्केक्किया पंती ।।८।।
छावत्तरं गहाणं पंतिसयं होई मणुयलोगम्मि।
छावट्ठी छावट्ठी य होई एक्केक्किया पंती ।।९।।
ते मेरु परियडंता पयाहिणावत्तमंडला सव्वे।
अणवट्ठिय जोगेहिं चंदा सूरा गहगणा य ।।१०।।

१७७. (आ) इस प्रकार मनुष्यलोक में तारापिण्ड पूर्वोक्त संख्याप्रमाण हैं। मनुष्यलोक में बाहर तारापिण्डों का प्रमाण जिनेश्वर देवों ने असंख्यात कहा है। (असंख्यात द्वीप समुद्र होने से प्रति द्वीप में यथायोग संख्यात असंख्यात तारागण हैं।) ।। १ ।।

मनुष्यलोक में जो पूर्वोक्त तारागणों का प्रमाण कहा गया है वे सब ज्योतिष्क देवों के विमानरूप हैं, वे कदम्ब के फूल के आकार के (नीचे संक्षिप्त ऊपर विस्तृत उत्तानीकृत अर्धकपीठ के आकार के) हैं तथाविध जगत्-स्वभाव से गतिशील हैं ।। २ ।।

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारागण का प्रमाण मनुष्यलोक में इतना ही कहा गया है। इनके नाम-गोत्र (अन्वर्थयुक्त नाम) अनतिशायी सामान्य व्यक्ति कदापि नहीं कह सकते, अतएव इनको सर्वज्ञोपदिष्ट मानकर सम्यक् रूप से इन पर श्रद्धा करनी चाहिए ।। ३ ।।

दो चन्द्र और दो सूर्यों का एक पिटक होता है। इस मान से मनुष्यलोक में चन्द्रों और सूर्यों के ६६-६६ (छियासठ-छियासठ) पिटक हैं। १ पिटक जम्बूद्वीप मे, २ पिटक लवणसमुद्र में, ६ पिटक धातकीखण्ड में, २१ पिटक कालोदधि में और ३६ पिटक अर्धपुष्करवरद्वीप में, कुल मिलाकर ६६ पिटक सूर्यों के और ६६ पिटक चन्द्रों के हैं ॥ ४ ॥

मनुष्यलोक में नक्षत्रों में ६६ पिटक हैं। एक-एक पिटक में छप्पन-छप्पन नक्षत्र हैं ॥ ५ ॥

मनुष्यलोक में महाग्रहों के ६६ पिटक हैं। एक-एक पिटक मे १७६-१७६ महाग्रह हैं ॥ ६ ॥

इस मनुष्यलोक में चन्द्र और सूर्यों की चार-चार पंक्तियां हैं। एक-एक पंक्ति में ६६-६६ चन्द्र और सूर्य हैं ॥ ७ ॥

इस मनुष्यलोक में नक्षत्रों की ५६ पंक्तियां हैं। प्रत्येक पक्ति में ६६-६६ नक्षत्र हैं ॥ ८ ॥

इस मनुष्यलोक में ग्रहों की १७६ पंक्तियां है। प्रत्येक पक्ति मे ६६-६६ ग्रह हैं।

ये चन्द्र-सूर्यादि सब ज्योतिष्क मण्डल मेरुपर्वत के चारो ओर प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा करते हुए इन चन्द्रादि के दक्षिण में ही मेरु होता है, अतएव इन्हे प्रदक्षिणावर्तमण्डल कहा है। (मनुष्यलोकवर्ती सब चन्द्रसूर्यादि प्रदक्षिणावर्तमण्डल गति से परिभ्रमण करते है।) चन्द्र, सूर्य और ग्रहों के मण्डल अनवस्थित है (क्योंकि यथायोग रूप से अन्य मण्डल पर ये परिभ्रमण करते रहते हैं।)

१७७. (इ) नक्खत्ततारगाणं अवट्ठिया मंडला मुणेयव्वा।
तेवि य पयाहिणा-वत्तमेव मेरुं अणुचरंति ॥११॥
रयणियरदिणयराणं उड्ढे व अहे व संकमो णत्थि।
मंडलसंकमणं पुण अब्भितरबाहिरं तिरिए ॥१२॥
रयणियरदिणयराणं नक्खत्ताणं महग्गहाणं च।
चारविसेसेण भवे सुहदुक्खविही मणुस्साणं ॥१३॥
तेसिं पविसंताणं तावक्खेत्तं तु वड्ढए नियमा।
तेणेव कमेण पुणो परिहायई निक्खमंताणं ॥१४॥
तेसिं कलंबुयापुप्फसंठिया होई तावखेत्तपहा।
अंतो य संकुया बाहिं वित्थडा चंदसूराणं ॥१५॥
केणं वड्ढइ चंदो परिहाणी केण होई चंदस्स।
कालो वा जोण्हो वा केण अणुभावेण चंदस्स ॥१६॥
किण्हं राहुविमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहियं।
चउरंगुलमप्पत्तं हिट्ठा चंदस्स तं चरइ ॥१७॥
बावट्ठिं बावट्ठिं दिवसे दिवसे उ सुक्कपक्खस्स।
जं परिवड्ढेइ चंदो, खवेइ तं चेव कालेणं ॥१८॥

पन्नरसइभागेण य चंदं पन्नरसमेव तं वरइ।
पन्नरसइभागेण य पुणो वि तं चेववतिक्कमइ ॥१९॥

एवं वड्ढइ चंदो परिहाणी एव होई चंदस्स।
कालो वा जोण्हा वा, तेणणुभावेण चंदस्स ॥२०॥

अंतो मणुस्सखेत्ते हवंति चारोवगा य उववण्णा।
पंचविहा जोइसिया चंदा सूरा गहगणा य ॥२१॥

तेण परं जे सेसा चंदाइच्चगहतारनक्खत्ता।
नत्थि गई न वि चारो अवट्ठिया ते मुणेयव्वा ॥२२॥

दो चंदा इह दीवे चत्तारि य सागरे लवणतोए।
धायइसंडे दीवे बारस चंदा य सूरा य ॥२३॥

दो दो जंबुद्दीवे ससिसूरा दुगुणिया भवे लवणे।
लावणिगा य तिगुणिया ससिसूरा धायइसंडे ॥२४॥

धायइसंडप्पभिई उद्दिट्ठ तिगुणिया भवे चंदा।
आइल्ल [चंदसहिया अणंतराणंतरे खेत्ते ॥२५॥

रिक्खग्गहतारग्गं दीवसमुद्दे जहिच्छसे नाउं।
तस्स ससीहिं गुणियं रिक्खग्गहतारगाणं तु ॥२६॥

चंदाओ सूरस्स य सूरा चंदस्स अंतरं होइ।
पन्नास सहस्साइं तु जोयणाणं अणूणाइं ॥२७॥

सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य अंतरं होई।
बहियाओ मणुस्सनगस्स जोयणाणं सयसहस्सं ॥२८॥

सूरंतरिया चंदा चंदंतरिया य दिणयरा दित्ता।
चित्तंतरलेसागा सुहलेसा मंदलेसा य ॥२९॥

अट्ठासीइं च गहा अट्ठावीसं च होंति नक्खत्ता।
एगससिपरिवारो एत्तो ताराणं वोच्छामि ॥३०॥

छावट्ठिसहस्साइं नव चेव सयाइं पंचसयराइं।
एगससिपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं ॥३१॥

बहियाओ मणुस्सनगस्स चंदसूराण अवट्ठिया जोगा।
चंदा अभीइजुत्ता सूरा पुण होंति पुस्सेहिं ॥३२॥

१७७. (ड) नक्षत्र और ताराओं के मण्डल अवस्थित हैं। अर्थात् वे नियतकाल तक एक मण्डल में रहते हैं। (किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वे विचरण नहीं करते), वे भी मेरुपर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणावर्तमण्डल गति से परिभ्रमण करते हैं ॥ ११ ॥

चन्द्र और सूर्य का ऊपर और नीचे संक्रम नहीं होता (क्योंकि ऐसा ही जगत् स्वभाव है।)

इनका विचरण तिर्यक् दिशा में सर्वाभ्यन्तरमण्डल से सर्वबाह्यमण्डल तक और सर्वबाह्यमण्डल से सर्वाभ्यन्तरमण्डल तक होता रहता है ॥ १२ ॥

चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, महाग्रह और ताराओं की गतिविशेष से मनुष्यों के सुख-दुःख प्रभावित होते हैं ॥ १३ ॥

सर्वबाह्यमण्डल से आभ्यन्तरमण्डल में प्रवेश करते हुए सूर्य और चन्द्रमा का तापक्षेत्र प्रतिदिन क्रमशः नियम से आयाम की अपेक्षा बढ़ता जाता है और जिस क्रम से वह बढ़ता है उसी क्रम से सर्वाभ्यन्तरमण्डल से बाहर निकलने वाले सूर्य और चन्द्रमा का तापक्षेत्र प्रतिदिन क्रमशः घटता जाता है ॥ १४ ॥

उन चन्द्र-सूर्यों के तापक्षेत्र का मार्ग कदंबपुष्प के आकार जैसा है। यह मेरु की दिशा में संकुचित है और लवणसमुद्र की दिशा में विस्तृत है ॥ १५ ॥

भगवन् ! चन्द्रमा शुक्लपक्ष में क्यों बढ़ता है और कृष्णपक्ष में क्यों घटता है ? किस कारण से कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष होते है ? ॥ १६ ॥

गौतम ! कृष्ण वर्ण का राहु-विमान चन्द्रमा से सदा चार अंगुल दूर रहकर चन्द्रविमान के नीचे चलता है। (इस तरह चलता हुआ वह शुक्लपक्ष में धीरे-धीरे चन्द्रमा को प्रकट करता है और कृष्णपक्ष में धीरे-धीरे उसे ढंक लेता है ॥ १७ ॥

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन चन्द्रविमान के ६२ भाग प्रमाण बढ़ता है और कृष्णपक्ष में ६२ भाग प्रमाण घटता है। [यहां ६२ भाग का स्पष्टीकरण ऐसा करना चाहिए कि चन्द्रविमान के ६२ भाग करने चाहिए। इनमें से ऊपर के दो भाग स्वभावतः आवार्य (आवृत होने योग्य) न होने से उन्हें छोड़ देना चाहिए। शेष ६० भागों को १५ से भाग देने पर चार-चार भाग प्राप्त होते है। ये चार-चार भाग ही यहां ६२ भाग का अर्थ समझना चाहिए। चूर्णिकार ने भी ऐसी ही व्याख्या की है। परम्परानुसार सूत्रव्याख्या करनी चाहिए स्व-वुद्धि से नहीं।) ॥ १८ ॥

चन्द्रविमान के पन्द्रहवें भाग को कृष्णपक्ष में राहुविमान अपने पन्द्रहवें भाग से ढंक लेता है और शुक्लपक्ष में उसी पन्द्रहवें भाग को मुक्त कर देता है ॥ १९ ॥

इस प्रकार चन्द्रमा की वृद्धि और हानि होती है और इसी कारण कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष होते हैं ॥ २० ॥

मनुष्यक्षेत्र के भीतर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र एवं तारा—ये पांच प्रकार के ज्योतिष्क गतिशील है ॥ २१ ॥

अढ़ाई द्वीप से आगे—(बाहर) जो पांच प्रकार के चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा हैं वे गति नहीं करते, (मण्डल गति से) विचरण नहीं करते अतएव अवस्थित (स्थित) हैं ॥ २२ ॥

इस जम्बूद्वीप में दो चन्द्र और दो सूर्य है। लवणसमुद्र में चार चन्द्र और चार सूर्य हैं। धातकीखण्ड में बारह चन्द्र और बारह सूर्य हैं ॥ २३ ॥

जम्बूद्वीप में दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। इनसे दुगुने लवणसमुद्र में हैं और लवणसमुद्र के चन्द्र सूर्यों के तिगुने चन्द्र-सूर्य धातकीखण्ड में हैं ॥ २४ ॥

धातकीखण्ड के आगे के समुद्र और द्वीपों में चन्द्रों और सूर्यों का प्रमाण पूर्व के द्वीप या समुद्र के प्रमाण से तिगुना करके उसमें पूर्व-पूर्व के सब चन्द्रों और सूर्यों को जोड़ देना चाहिए। (जैसे धातकीखण्ड में १२ चन्द्र और १२ सूर्य कहे हैं तो कालोदधिसमुद्र में इनसे तिगुने अर्थात् १२ × ३ = ३६ तथा पूर्व-पूर्व के—जम्बूद्वीप के २ और लवणसमुद्र के ४, कुल ६ जोड़ने पर ४२ चन्द्र और सूर्य कालोद समुद्र में हैं। इसी विधि से आगे के द्वीप समुद्रों में चन्द्रों और सूर्यों की संख्या का प्रमाण जाना जा सकता है ॥ २५ ॥

जिन द्वीपों और समुद्रों में नक्षत्र, ग्रह एवं तारा का प्रमाण जानने की इच्छा हो तो उन द्वीपों और समुद्रों के चन्द्र सूर्यों के साथ—एक-एक चन्द्र-सूर्य परिवार से गुणा करना चाहिए। (जैसे लवणसमुद्र में ४ चन्द्रमा हैं। एक-एक चन्द्र के परिवार में २८ नक्षत्र हैं तो २८ को ४ से गुणा करने पर ११२ नक्षत्र लवणसमुद्र में जानने चाहिए। एक-एक चन्द्र के परिवार में ८८-८८ ग्रह हैं, ८८ × ४ = ३५२ *ग्रह लवणसमुद्र में जानने चाहिए। एक चन्द्र के परिवार में छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर* कोडाकोडी तारागण है तो इस राशि में चार का गुणा करने पर दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ कोडाकोडी तारागण लवणसमुद्र में हैं।) ॥ २६ ॥

मनुष्यक्षेत्र के बाहर जो चन्द्र और सूर्य हैं, उनका अन्तर पचास-पचास हजार योजन का है। यह अन्तर चन्द्र से सूर्य का और सूर्य से चन्द्र का जानना चाहिए ॥२७॥

सूर्य से सूर्य का और चन्द्र से चन्द्र का अन्तर मानुषोत्तरपर्वत के बाहर एक लाख योजन का है ॥२८॥

(मनुष्यलोक से बाहर पंक्तिरूप में अवस्थित) सूर्यान्तरित चन्द्र और चन्द्रान्तरित सूर्य अपने अपने तेजःपुंज से प्रकाशित होते हैं। इनका अन्तर और प्रकाशरूप लेश्या विचित्र प्रकार की है। (अर्थात् चन्द्रमा का प्रकाश शीतल है और सूर्य का प्रकाश उष्ण है। इन चन्द्र सूर्यों का प्रकाश एक दूसरे से अन्तरित होने से न तो मनुष्यलोक की तरह अति शीतल या अति उष्ण होता है किन्तु सुख-रूप होता है) ॥२९॥

एक चन्द्रमा के परिवार में ८८ ग्रह और २८ नक्षत्र होते हैं। ताराओं का प्रमाण आगे की गाथाओं में कहते हैं ॥३०॥

एक चन्द्र के परिवार में ६६ हजार ९ सौ ७५ कोडाकोडी तारे हैं ॥३१॥

मनुष्यक्षेत्र के बाहर के चन्द्र और सूर्य अवस्थित योग वाले हैं। चन्द्र अभिजित्नक्षत्र से और सूर्य पुष्यनक्षत्र से युक्त रहते हैं। (कहीं कहीं "अवट्ठिया तेया" ऐसा पाठ है, उसके अनुसार अवस्थित तेज वाले हैं, अर्थात् वहां मनुष्यलोक की तरह कभी अतिउष्णता और कभी अतिशीतलता नहीं होती है।) ॥३२॥

विवेचन—उक्त गाथाएं स्पष्टार्थ वाली हैं। केवल १३वीं गाथा में जो कहा गया है कि इन चन्द्र सूर्य नक्षत्र ग्रह और ताराओं की चालविशेष से मनुष्यों के सुख-दुःख प्रभावित होते हैं, इसका स्पष्टीकरण करते हुए वृत्तिकार लिखते हैं कि—मनुष्यों के कर्म सदा दो प्रकार के होते हैं—शुभवेद्य और अशुभवेद्य। कर्मों के विपाक (फल) के हेतु सामान्यतया पांच हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव। कहा है—

उदयक्खयखओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया।
दव्वं खेत्तं कालं भावं भवं च संपप्प ॥१॥

अर्थात्—कर्मों के उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव निमित्त होते हैं।

प्रायः शुभवेद्य कर्मों के विपाक में शुभ द्रव्य-क्षेत्रादि सामग्री हेतुरूप होती है और अशुभवेद्य कर्मों के विपाक मे अशुभ द्रव्य-क्षेत्र आदि'सामग्री कारणभूत होती है। इसलिए जब जिन व्यक्तियों के जन्मनक्षत्रादि के अनुकूल चन्द्रादि की गति होती है तब उन व्यक्तियों के प्रायः शुभवेद्य कर्म तथाविध विपाक सामग्री पाकर उदय में आते हैं, जिनके कारण शरीर नीरोगता, धनवृद्धि, वैरोपशमन, प्रिय-सम्प्रयोग, कार्यसिद्धि आदि होने से सुख प्राप्त होता है। अतएव परम विवेकी बुद्धिमान् व्यक्ति किसी भी कार्य को शुभ तिथि नक्षत्रादि में आरम्भ करते हैं, चाहे जब नहीं। तीर्थंकरों की भी आज्ञा है कि प्रव्राजन (दीक्षा) आदि कार्य शुभक्षेत्र में, शुभ दिशा में मुख रखकर, शुभ तिथि नक्षत्र आदि मुहूर्त में करना चाहिए, जैसा कि पंचवस्तुक ग्रन्थ में कहा है—

एसा जिणाण आणा खेत्ताइया य कम्मुणो भणिया।
उदयाइकारणं जं तम्हा सव्वत्थ जइयव्वं ॥१॥

अतएव छद्मस्थों को शुभ क्षेत्र और शुभ मुहूर्त का ध्यान रखना चाहिए। जो अतिशय ज्ञानी भगवन्त हैं वे तो अतिशय के बल से ही सविघ्नता या निर्विघ्नता को जान लेते हैं अतएव वे शुभ तिथि-मुहूर्तादि की अपेक्षा नहीं रखते। छद्मस्थों के लिए वैसा करना ठीक नहीं है। जो लोग यह कहते हैं कि भगवान् ने अपने पास प्रव्रज्या के लिए आये हुए व्यक्तियों के लिए शुभ तिथि आदि नहीं देखी; उनका यह कथन ठीक नहीं है। भगवान् तो अतिशय ज्ञानी हैं। उनका अनुकरण छद्मस्थों के लिए उचित नही है। अतएव शुभ तिथि आदि शुभ मुहूर्त में कार्यारम्भ करना उचित है। उक्त रीति से ग्रहादि की गति मनुष्यों के सुख-दुःख मे निमित्तभूत होती है।

१७८. (अ) माणुसुत्तरे णं भंते ! पव्वए केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं ? केवइयं उव्वेहेणं ? केवइयं मूले विक्खंभेणं ? केवइयं सिहरे विक्खंभेणं ? केवइयं अंतो गिरिपरिरएणं ? केवइयं बाहिं गिरिपरिरएणं ? केवइयं मज्झे गिरिपरिरएणं ? केवइयं उवरिं गिरिपरिरएणं ?

गोयमा ! माणुसुत्तरे णं पव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि तीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं, मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं, मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसए विक्खंभेणं, उवरिं चत्तारिचउवीसे जोयणसए विक्खंभेणं, अंतो गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी, बायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं, दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं। बाहिरगिरिपरिरएणं—एगा जोयणकोडी, बायालीसं च सयसहस्साइं छत्तीसं च सहस्साइं सत्तचोद्दसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं। मज्झे गिरिपरिरएणं—एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं चोत्तीसं च सहस्सा अट्ठतेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं। उवरिं गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं बत्तीसं च सहस्साइं नव य बत्तीसे जोयणसए परिक्खेवेणं। मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए अंतो सण्हे मज्झे उदग्गे बाहिं दरिसणिज्जे ईसिं सण्णिसण्णे

सीहणिसाई, अवद्धजवरासिसंठाणसंठिए सव्वजंबूणयामए अच्छे, सण्हे जाव पडिरूवे। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि य वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वण्णओ दोण्हवि ॥

१७८. (अ) हे भगवन् ! मानुषोत्तरपर्वत की ऊँचाई कितनी है ? उसकी जमीन में गहराई कितनी है ? वह मूल में कितना चौड़ा है ? मध्य में कितना चौड़ा है और शिखर पर कितना चौड़ा है ? उसकी अन्दर की परिधि कितनी है ? उसकी बाहरी परिधि कितनी है, मध्य में उसकी परिधि कितनी है और ऊपर की परिधि कितनी है ?

गौतम ! मानुषोत्तरपर्वत १७२१ योजन पृथ्वी से ऊँचा है। ४३० योजन और एक कोस पृथ्वी में गहरा है। यह मूल में १०२२ योजन चौड़ा है, मध्य में ७२३ योजन चौड़ा और ऊपर ४२४ योजन चौड़ा है।

पृथ्वी के भीतर की इसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन है। बाह्यभाग में नीचे की परिधि एक करोड़ बयालीस लाख, छत्तीस हजार सात सौ चौदह (१,४२,३६,७१४) योजन है। मध्य में एक करोड़ बयालीस लाख चौंतीस हजार आठ सौ तेईस (१,४२,३४,८२३) योजन की है। ऊपर की परिधि एक करोड़ बयालीस लाख बत्तीस हजार नौ सौ बत्तीस (१,४२,३२,९३२) योजन की है।

यह पर्वत मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतला (संकुचित) है। यह भीतर से चिकना है, मध्य में प्रधान (श्रेष्ठ) और बाहर से दर्शनीय है। यह पर्वत कुछ बैठा हुआ है अर्थात् जैसे सिंह अपने आगे के दोनों पैरों को लम्बा करके पीछे के दोनों पैरों को सिकोड़कर बैठता है, उस रीति से बैठा हुआ है। (शिरःप्रदेश में उन्नत और पिछले भाग में निम्न निम्नतर है। इसी को और स्पष्ट करते हैं कि) यह पर्वत आधे यव की राशि के आकार में रहा हुआ है (ऊर्ध्व-अधोभाग में छिन्न और मध्यभाग में उन्नत है)। यह पर्वत पूर्णरूप से जांबूनद (स्वर्ण) मय है, आकाश और स्फटिकमणि की तरह निर्मल है, चिकना है यावत् प्रतिरूप है। इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं और दो वनखण्ड इसे सब ओर से घेरे हुए स्थित हैं। दोनों का वर्णनक कहना चाहिए।

१७८. (आ) से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—माणुसुत्तरे पव्वए माणुसुत्तरे पव्वए ?

गोयमा ! माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स अन्तो मणुया उप्पिं सुवण्णा बाहिं देवा। अदुत्तरं च णं गोयमा ! माणुसुत्तरपव्वयं मणुया ण कयाइ वीइवइंसु वा वीइवयंति वा वीइवइस्संति वा णण्णत्थ चारणेहिं वा विज्जाहरेहिं वा देवकम्मुणा वा वि, से तेणट्ठेणं गोयमा ! ० अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे त्ति। जावं च णं माणुसुत्तरे पव्वए तावं च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ जावं च णं वासाइं वा वासधराइं वा तावं च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ जावं च णं गेहाइं वा गेहावयणाइं वा तावं च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ, जावं च णं गामाइ वा जाव रायहाणीइ वा तावं च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ, जावं च णं अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा पडिवासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया पगइभद्दगा विणीया तावं च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं समयाइ वा आवलियाइ वा आणापाणूइ वा थोवाइ वा लवाइ वा मुहुत्ताइ वा दिवसाइ वा अहोरत्ताइ वा पक्खाइ वा मासाइ वा उऊइ वा अयणाइ वा संवच्छराइ वा जुगाइ वा वाससयाइ वा वाससहस्साइ वा वाससयसहस्साइ वा पुव्वंगाइ वा पुव्वाइ वा तुडियंगाइ वा

एवं पुव्वे तुडिए अड्डे अववे हूहुकए उप्पले पउमे णलिणे अच्छिनिउरे अउए पउए णउए चूलिया सीसपहेलिया जाव य सीसपहेलियंगेइ वा सीसपहेलियाइ वा पलिओवमेइ वा सागरोवमेइ वा अवसप्पिणीइ वा ओसप्पिणीइ वा तावं च णं अस्सिं लोए पवुच्चइ ।

जावं च णं बादरे विज्जुकारे बायरे थणियसद्दे तावं च णं अस्सि लोए पवुच्चइ, जावं च णं बहवे ओराला बलाहका ससेयंति संमुच्छंति वासं वासंति तावं च णं अस्सि लोए पवुच्चइ, जावं च णं बायरे तेउकाए तावं च णं अस्सि लोए पवुच्चइ, जावं च णं आगराइं वा नदीउइ वा निहोइ वा तावं च णं अस्सि लोएत्ति पवुच्चइ; जावं च णं अगडाइ वा णईत्ति वा तावं च णं अस्सि लोए. जावं च णं चंदोवरागाइ वा सूरोवरागाइ वा चंदपरिएसाइ वा सूरपरिएसाइ वा पडिचंदाइ वा पडिसूराइ वा इंदधणूइ वा उदगमच्छेइ वा कपिहसियाइ वा तावं च णं अस्सि लोएत्ति पवुच्चइ । जावं च णं चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं अभिगमण-निग्गमण-वुड्ढि-णिव्वुड्ढि-अणवट्ठियसंठाणसंठिई आघविज्ज इ तावं च णं अस्सि लोए पवुच्चइ ।।

१७८. (आ) हे भगवन् ! यह मानुषोत्तरपर्वत क्यों कहलाता है ?

गौतम ! मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर-अन्दर मनुष्य रहते हैं, इसके ऊपर सुपर्णकुमार देव रहते हैं और इससे बाहर देव रहते हैं। गौतम ! दूसरा कारण यह है कि इस पर्वत के बाहर मनुष्य (अपनी शक्ति से) न तो कभी गये हैं, न कभी जाते हैं और न कभी जाएंगे, केवल जंघाचारण और विद्याचारण मुनि तथा देवों द्वारा संहरण किये मनुष्य ही इस पर्वत से बाहर जा सकते हैं। इसलिए यह पर्वत मानुषोत्तरपर्वत कहलाता है।[1] अथवा हे गौतम ! यह नाम शाश्वत होने से अनिमित्तिक है।

जहां तक यह मानुषोत्तरपर्वत है वहीं तक यह मनुष्य-लोक है (अर्थात् मनुष्यलोक में ही वर्ष, वर्षधर, गृह आदि हैं इससे बाहर नहीं। आगे सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिए।)

जहां तक भरतादि क्षेत्र और वर्षधर पर्वत है वहां तक मनुष्यलोक है। जहां तक घर या दुकान आदि है वहां तक मनुष्यलोक है। जहां तक ग्राम यावत् राजधानी है, वहां तक मनुष्यलोक है। जहां तक अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, जंघाचारण मुनि, विद्याचारण मुनि, श्रमण, श्रमणियां, श्रावक, श्राविकाएं और प्रकृति से भद्र विनीत मनुष्य है, वहां तक मनुष्यलोक है।

जहां तक समय, आवलिका, आन-प्राण (श्वासोच्छ्वास), स्तोक (सात श्वासोच्छ्वास), लव (सात स्तोक), मुहूर्त, दिन, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु (दो मास), अयन (छः मास), संवत्सर (वर्ष,) युग (पांच वर्ष), सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, इसी क्रम से अड्ड, अवव, हूहुक, उत्पल, पद्म, नलिन, अर्थनिकुर (अच्छिणेउर), अयुत, प्रयुत, नयुत, चूलिका, शीर्ष-प्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल है, वहां तक मनुष्यलोक है।

जहां तक बादर विद्युत और बादर स्तनित (मेघगर्जन) है, जहां तक बहुत से उदार-बड़े मेघ उत्पन्न होते हैं, सम्मूर्छित होते हैं (बनते-बिखरते हैं), वर्षा बरसाते हैं, वहां तक मनुष्यलोक है। जहां तक बादर तेजस्काय (अग्नि) है, वहां तक मनुष्यलोक है। जहां तक खान, नदियां और निधियां हैं, कुए, तालाब आदि हैं, वहां तक मनुष्यलोक है।

---

१. मनुष्याणामुत्तरः—परः इति मानुषोत्तरः। —वृत्ति

जहां तक चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्यपरिवेष, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य और कपिहसित आदि हैं, वहां तक मनुष्यलोक है। जहां तक चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं का अभिगमन, निर्गमन, चन्द्र की वृद्धि-हानि तथा चन्द्रादि की सतत गतिशीलता रूप स्थिति कही जाती है, वहां तक मनुष्यलोक है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है कि जहां तक भरतादि वर्ष (क्षेत्र), वर्षधर पर्वत, घर दुकान-मकान, ग्राम, नगर, राजधानी, अरिहंतादि श्लाघ्य पुरुष, प्रकृतिभद्रिक विनीत मनुष्यादि, समय आदि का व्यवहार, विद्युत, मेघगर्जन, मेघोत्पत्ति, बादर अग्नि, धान, नदियां, निधियाँ, कुए-तालाब तथा आकाश में चन्द्र-सूर्यादि का गमनादि है, वहां तक मनुष्यलोक है। इसका फलितार्थ यह है कि उक्त सब का अस्तित्व मनुष्यलोक में ही है। मनुष्यलोक से बाहर उक्त सबका अस्तित्व नहीं है। मनुष्यलोक को सीमा करने वाला होने से मानुषोत्तरपर्वत, मानुषोत्तरपर्वत कहलाता है। मानुषोत्तरपर्वत से परे—बाहर की ओर उक्त सब पदार्थों और व्यवहारों का सद्भाव नहीं है।

प्रस्तुत सूत्र में आये हुए कालचक्र के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण आवश्यक है अतः उसका संक्षेप में निरूपण किया जाता है—

काल का सबसे सूक्ष्म अंश, जिसका फिर विभाग न हो सके, वह समय कहा जाता है। इसकी सूक्ष्मता को समझाने के लिए शास्त्रकारों ने एक स्थूल उदाहरण दिया है। जैसे कोई तरुण, बलवान्, हृष्टपुष्ट, स्वस्थ और निपुण कलाकुशल दर्जी का पुत्र किसी जीर्ण-शीर्ण शाटिका (साड़ी) को हाथ में लेते ही एकदम बिना हाथ फैलाये शीघ्र ही फाड़ देता है। देखने वालों को ऐसा प्रतीत होता है कि इसने पलभर में साड़ी को फाड़ दिया है, परन्तु तत्त्वदृष्टि से उस साड़ी को फाड़ने में असंख्यात समय लगे हैं। साड़ी में अगणित तन्तु हैं। ऊपर का तन्तु फटे बिना नीचे का तन्तु नहीं फट सकता है। अतएव यह मानना पड़ता है कि प्रत्येक तन्तु के फटने का काल अलग-अलग है। वह तन्तु भी कई रेशों से बना होता है। वे रेशे भी क्रम से ही फटते हैं। अतएव साड़ी के उपरितन तन्तु के उपरितन रेशे के फटने में जितना समय लगा उससे भी बहुत सूक्ष्मतर समय कहा गया है।

जघन्ययुक्तासंख्यात समयों की एक आवलिका होती है। संख्येय आवलिकाओं का एक उच्छ्वास होता है और संख्येय आवलिकाओं का एक निःश्वास होता है। एक उच्छ्वास और एक निःश्वास मिलकर एक आन-प्राण होता है। तात्पर्य यह है कि एक हृष्ट और नीरोग व्यक्ति श्रम और बुभुक्षा आदि से रहित अवस्था में स्वाभाविक रूप से जो श्वासोच्छ्वास लेता है, वह एक श्वासोच्छ्वास का काल आन-प्राण कहलाता है।[1] सात आन-प्राणों का एक स्तोक और सात स्तोकों का एक लव

1. हट्ठस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जन्तुणो।
एगे उसासनीसासे एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥१॥
सत्त पाणूणि से थोवे सत्त थोवाणि से लवे।
लवाणं सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिए ॥२॥
एगा कोडी सत्तट्ठी लक्खा सत्तत्तरी सहस्सा य।
दो य सया सोलहिया आवलियाणं मुहुत्तम्मि ॥३॥
तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा।
एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥४॥

होता है। ७७ लवों का एक मुहूर्त होता है। एक मुहूर्त में एक करोड़ सड़सठ लाख सतत्तर हजार दो सौ सोलह (१,६७,७७,२१६) आवलिकाएं होती हैं। एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) उच्छ्वास होते है।

तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मास की एक ऋतु होती है। जैनसिद्धान्तानुसार प्रावृट्, वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म—ये छह ऋतुएं है।[1] आषाढ और श्रावण मास प्रावृट् ऋतु है, भाद्रपद-आश्विन वर्षाऋतु, कार्तिक-मृगशिर शरदऋतु, पौष-माघ हेमन्तऋतु, फाल्गुन-चैत्र वसन्तऋतु और वैशाख-ज्येष्ठ ग्रीष्मऋतु है।

तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयन का एक संवत्सर (वर्ष), पांच संवत्सर का एक युग, बीस युग का सौ वर्ष।

पूर्वाचार्यों ने एक अहोरात्र, एक मास और एक वर्ष में जितने उच्छ्वास होते हैं, उनका संकलन इन गाथाओं में किया है—

एगं च सयसहस्सं ऊसासाणं तु तेरस सहस्सा।
नउयसएण अहिया दिवस-निसि होंति विन्नेया ॥१॥

मासे वि य उस्सासा लक्खा तित्तीस सहसपणनउइ।
सत्त सयाइं जाणसु कहियाइं पुव्वसूरीहिं ॥२॥

चत्तारि य कोडीओ लक्खा सत्तेव होंति नायव्वा।
अडयालीस सहस्सा चार सया होंति वरिसेणं ॥३॥

एक लाख तेरह हजार नौ सौ (१,१३,९००) उच्छ्वास एक दिन में होते हैं। तेतीस लाख पंचानवै हजार सात सौ (३३,९५,७००) उच्छ्वास एक मास में होते हैं। चार करोड़ सात लाख अडतालीस हजार चार सौ (४,०७,४८,४००) उच्छ्वास एक वर्ष में होते हैं। दस सौ वर्ष का हजार वर्ष और सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष होते हैं। ८४ लाख वर्ष का एक पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है। ८४ लाख पूर्वो का एक त्रुटितांग, ८४ लाख त्रुटितांगों का एक त्रुटित;

८४ लाख त्रुटितों का एक अड्डांग,
८४ लाख अड्डांगों का एक अड्डु,
८४ लाख अड्डों का एक अववांग
८४ लाख अववांगों का एक अवव,
८४ लाख अववों का एक हूहुकांग,
८४ लाख हूहुकांगों का एक हूहुक,
८४ लाख हूहुकों का एक उत्पलांग,
८४ लाख उत्पलांगों का एक उत्पल,
८४ लाख उत्पलों का एक पद्मांग,

---

१. "आषाढाद्या ऋतवः इतिवचनात्। ये त्वभिदधति वसन्ताद्या ऋतवः तदप्रमाणमवसातव्यम् जैनमतोत्तीर्णत्वात्।"
—इति वृत्तिः।

८४ लाख पद्मांगों का एक पद्म,
८४ लाख पद्मों का एक नलिनांग,
८४ लाख नलिनांगों का एक अर्थनिकुरांग,
८४ लाख अर्थनिकुरांगों का एक नलिन,
८४ लाख नलिनों का एक अर्थनिकुर,
८४ लाख अर्थनिकुरों का एक अयुतांग,
८४ लाख अयुतांगों का एक अयुत,
८४ लाख अयुतों का एक प्रयुतांग,
८४ लाख प्रयुतांगों का एक प्रयुत,
८४ लाख प्रयुतों का एक नयुतांग,
८४ लाख नयुतांगों का एक नयुत,
८४ लाख नयुतों का एक चूलिकांग,
८४ लाख चूलिकांगों की एक चूलिका,
८४ लाख चूलिकाओं का एक शीर्षप्रहेलिकांग,
८४ लाख शीर्षप्रहेलिकांगों की एक शीर्षप्रहेलिका।

इस प्रकार समय से लगाकर शीर्षप्रहेलिकापर्यन्त काल ही गणित का विषय है। इससे आगे का काल उपमाओं से ज्ञेय होने से औपमिक है। पल्य की उपमा से ज्ञेय काल पल्योपम है और सागर की उपमा से ज्ञेय काल सागरोपम है। पल्योपम और सागरोपम का वर्णन पहले किया जा चुका है। दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। दस कोडाकोडी सागरोपम का एक अवसर्पिणी काल होता है। इतने ही समय का एक उत्सर्पिणी काल होता है। एक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल अर्थात् बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक कालचक्र होता है।

उक्त कालचक्र का व्यवहार मनुष्यलोक में ही है। क्योंकि कालद्रव्य मनुष्यक्षेत्र में ही है।

वृत्तिकार ने अरिहंतादि पाठ के बाद विद्युत्काय उदार बलाहक आदि पाठ की व्याख्या की है और इसके बाद समयादि की व्याख्या की है। इससे प्रतीत होता है कि वृत्तिकार के सामने जो प्रति थी उसमें इसी क्रम से पाठ का होना संभवित है। किन्तु क्रम का भेद है अर्थ का भेद नहीं है।

१७९. अंतो णं भंते! मणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवा ते णं भंते! देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितीया गतिरइया गइसमावण्णगा?

गोयमा! ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा णो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा नो चारट्ठिईया गतिरतिया गतिसमावण्णगा उड्ढमुहकलंबुयपुप्फसंठाणसंठिएहिं जोयणसाहस्सीएहिं तावखेत्तेहिं साहस्सीयाहिं बाहिरियाहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महयाहयनट्टगीतवाइततंतीतालतुडिय-घणमुइंगपडुप्पवादिरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलसद्देणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा अच्छ य पव्वयरायं पयाहिणावत्तमंडलयारं मेरुं अणुपरियडंति।

तेसिं णं भंते! देवाणं इंदे चवइ से कहमिदाणिं पकरेंति?

गोयमा ! ताहे चत्तारि पंच सामाणिया तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव तत्थ अन्ने इंदे उववण्णे भवइ ।

इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइयं कालं विरहिए उववएणं ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा ।

बहिया णं भंते ! मणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवा ते णं भंते ! देवा कि उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठीया गतिरतिया गतिसमावण्णगा ?

गोयमा ! ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा नो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा, नो चारोववण्णगा चारट्ठिईया, नो गतिरतिया नो गतिसमावण्णगा पक्किट्टगसंठाणसंठिएहिं जोयणसयसाहस्सिएहिं तावक्खेत्तेहिं साहस्सियाहि य बाहिराहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महयाहयनट्टगीयवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा सुहलेस्सा सीयलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा, चित्तंतरलेसागा, कूडा इव ठाणट्ठिया अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं ते पएसे सव्वओ समंता ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति ।

जया णं भंते ! तेसिं देवाणं इंदे चयइ, से कहमिदाणिं पकरेंति ?

गोयमा ! जाव चत्तारि पंच सामाणिया तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव तत्थ अण्णे उववण्णे भवइ ।

इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइयं कालं विरहओ उववाएणं ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा ।

१७९. भदन्त ! मनुष्यक्षेत्र के अन्दर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण हैं, वे ज्योतिष्क देव क्या ऊर्ध्वविमानों में (बारह देवलोक से ऊपर के विमानों में) उत्पन्न हुए हैं या सौधर्म आदि कल्पों में उत्पन्न हुए हैं या (ज्योतिष्क) विमानों में उत्पन्न हुए हैं ? वे गतिशील हैं या गतिरहित हैं ? गति में रति करने वाले है और गति को प्राप्त हुए हैं ?

गौतम ! वे देव ऊर्ध्वविमानों में उत्पन्न हुए नहीं हैं, बारह देवकल्पों में उत्पन्न हुए नहीं है, किन्तु ज्योतिष्क विमानों में उत्पन्न हुए हैं। वे गतिशील हैं, स्थितिशील नहीं हैं, गति में उनकी रति है और वे गतिप्राप्त हैं। वे ऊर्ध्वमुख कदम्ब के फूल की तरह गोल आकृति से संस्थित हैं हजारों योजन प्रमाण उनका तापक्षेत्र है, विक्रिया द्वारा नाना रूपधारी बाह्य पर्षदा के देवों से ये युक्त हैं। जोर से बजने वाले वाद्यों, नृत्यों, गीतों, वादित्रों, तंत्री, ताल, त्रुटित, मृदंग आदि की मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए, हर्ष से सिंहनाद, बोल (मुख से सीटी बजाते हुए) और कलकल ध्वनि करते हुए, स्वच्छ पर्वतराज मेरु की प्रदक्षिणावर्त मंडलगति से परिक्रमा करते रहते हैं।

भगवन् ! जब उन ज्योतिष्क देवों का इन्द्र च्यवता है तब वे देव इन्द्र के विरह में क्या करते हैं ?

गौतम ! चार-पांच सामानिक देव सम्मिलित रूप से उस इन्द्र के स्थान पर तब तक कार्यरत रहते हैं तब जक कि दूसरा इन्द्र वहां उत्पन्न हो।
भगवन् ! इन्द्र का स्थान कितने समय तक इन्द्र की उत्पत्ति से रहित रहता है ?
गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक इन्द्र का स्थान खाली रहता है।

भदन्त ! मनुष्यक्षेत्र से बाहर के चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा रूप ये ज्योतिष्क देव क्या ऊर्ध्वोपपन्न हैं, कल्पोपपन्न हैं, विमानोपपन्न हैं, गतिशील हैं या स्थिर हैं, गति में रति करने वाले हैं और क्या गति प्राप्त हैं ?

गौतम ! वे देव ऊर्ध्वोपपन्नक नहीं हैं, कल्पोपपन्नक नहीं हैं, किन्तु विमानोपपन्नक हैं। ये गतिशील नहीं हैं, वे स्थिर हैं, वे गति में रति करने वाले नहीं हैं, वे गति-प्राप्त नहीं हैं। वे पकी हुई ईंट के आकार के हैं, लाखों योजन का उनका तापक्षेत्र है। वे विकुर्वित हजारों बाह्य परिषद् के देवों के साथ जोर से बजने वाले वाद्यों, नृत्यों, गीतों और वादित्रों की मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोगोपभोगों का अनुभव करते हैं। वे शुभ प्रकाश वाले हैं, उनकी किरणें शीतल और मंद (मृदु) हैं, उनका आतप और प्रकाश उग्र नहीं है, विचित्र प्रकार का उनका प्रकाश है। कूट (शिखर) की तरह ये एक स्थान पर स्थित हैं। इन चन्द्रों और सूर्यों आदि का प्रकाश एक दूसरे से मिश्रित है। वे अपनी मिली-जुली प्रकाश किरणों से उस प्रदेश को सब ओर से अवभासित, उद्योतित, तपित और प्रभासित करते हैं।

भदंत ! जब इन देवों का इन्द्र च्यवित होता है तो वे देव क्या करते हैं ?

गौतम ! यावत् चार-पांच सामानिक देव उसके स्थान पर सम्मिलित रूप से तब तक कार्यरत रहते हैं जब तक कि दूसरा इन्द्र वहां उत्पन्न हो।

भगवन् ! उस इन्द्र-स्थान का विरह कितने काल तक होता है ?

गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक इन्द्रस्थान इन्द्रोत्पत्ति से विरहित हो सकता है।

पुष्करोदसमुद्र की वक्तव्यता

१८०. (अ) पुक्खरवरं णं दीवं पुक्खरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। पुक्खरोदे णं भंते ! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तहेव सव्वं पुक्खरोदसमुद्दपुरत्थिमपेरंते वरुणवरदीवपुरत्थि-मद्धस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं पुक्खरोदस्स विजए नामं दारे पण्णत्ते, एवं सेसाणवि। दारंतरम्मि संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। पदेसा जीवा य तहेव।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ पुक्खरोदे पुक्खरोदे ?

गोयमा ! पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स उदगे अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगईए उदगरसेणं सिरिधर-सिरिप्पभा य दो देवा जाव महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति। से एतेणट्ठेणं जाव णिच्चे।

पुक्खरोदे णं भंते ! समुद्दे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३ ? संखेज्जा चंदा पभासिंसु वा ३ जाव तारागणकोडीकोडीओ सोभेंसु वा ३ ।

१८०. (अ) गोल और वलयाकार संस्थान से संस्थित पुष्करोद नाम का समुद्र पुष्करवरद्वीप को सब ओर से घेरे हुए स्थित है।

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र का चक्रवालविष्कंभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है ?

गौतम ! सख्यात लाख योजन का उसका चक्रवालविष्कभ है और संख्यात लाख योजन की ही उसकी परिधि है। (वह पुष्करोद एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है।)

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र के कितने द्वार है ?

गौतम ! चार द्वार हैं आदि पूर्ववत् कथन करना चाहिए यावत् पुष्करोदसमुद्र के पूर्वी पर्यन्त में और वरुणवरद्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में पुष्करोदसमुद्र का विजयद्वार है (जम्बूद्वीप के विजयद्वार की तरह सब कथन करना चाहिए।) यावत् राजधानी अन्य पुष्करोदसमुद्र में कहनी चाहिए। इसी प्रकार शेष द्वारों का भी कथन कर लेना चाहिए।

इन द्वारों का परस्पर अन्तर संख्यात लाख योजन का है। प्रदेशस्पर्श संबंधी तथा जीवों की उत्पत्ति का कथन भी पूर्ववत् कह लेना चाहिए।

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र, पुष्करोदसमुद्र क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! पुष्करोदसमुद्र का पानी स्वच्छ, पथ्यकारी, जातिवंत (विजातीय नही), हल्का, स्फटिकरत्न की आभा वाला तथा स्वभाव से ही उदकरस वाला (मधुर) है; श्रीधर और श्रीप्रभ नाम के दो महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले देव वहां रहते हैं। इससे उसका जल वैसे ही सुशोभित होता है जैसे चन्द्र-सूर्य और ग्रह-नक्षत्रों से आकाश सुशोभित होता है।) इसलिए पुष्करोद, पुष्करोद कहलाता है यावत् वह नित्य होने से अनिमित्तिक नाम वाला भी है।

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, होते हैं और होंगे आदि प्रश्न पूर्ववत् करना चाहिए ?

गौतम ! संख्यात चन्द्र प्रभासित होते थे, होते हैं और होंगे आदि पूर्ववत् कथन करना चाहिए यावत् संख्यात कोटि-कोटि तारागण वहां शोभित होते थे, होते हैं और शोभित होंगे।

१८०. (आ) पुक्खरोदे णं समुद्दे वरुणवरेणं दीवेणं संपरिक्खित्ते वट्टे वलयागारे जाव चिट्ठइ, तहेव समचक्कवालसंठिए।

केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं ? केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, पउमवरवेइयावणसंडवण्णओ। दारंतरं, पएसा, जीवा तहेव सव्वं।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—वरुणवरे दीवे वरुणवरे दीवे ?

गोयमा ! वरुणवरे णं दीवे तत्थ-तत्थ देसे-देसे तहिं-तहिं बहुओ खुड्डा-खुड्डियाओ जाव बिलपंतियाओ अच्छाओ पत्तेयं-पत्तेयं पउमवरवेइयावनसंडपरिक्खित्ताओ वारुणियरोदगपडिहत्थाओ पासाईयाओ ४। तासु खुड्डा-खुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वया जाव णं हडहडगा सव्वफलियामया अच्छा तहेव वरुणवरुणप्पभा य एत्थ दो देवा महिड्डिया परिवसंति, से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे। जोतिसं सव्वं संखेज्जगेणं जाव तारागणकोडीओ।

१८०. (आ) गोल और वलयाकार पुष्करोद नाम का समुद्र वरुणवरद्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ स्थित है। पूर्ववत् कथन करना चाहिए यावत् वह समचक्रवालसंस्थान से संस्थित है।

भगवन् ! उसका चक्रवालविष्कंभ और परिधि कितनी है ?

गौतम ! वरुणवरद्वीप का विष्कंभ संख्यात लाख योजन का है और संख्यात लाख योजन की उसकी परिधि है। उसके सब ओर एक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड है। पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन कहना चाहिए। द्वार, द्वारों का अन्तर, प्रदेश-स्पर्शना, जीवोत्पत्ति आदि सब पूर्ववत् कहना चाहिए।

भगवन् ! वरुणवरद्वीप, वरुणवरद्वीप क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! वरुणवरद्वीप में स्थान-स्थान पर यहां-यहां बहुत सी छोटी-छोटी बावड़ियां यावत् बिल-पंक्तियां हैं, जो स्वच्छ हैं, प्रत्येक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से परिवेष्टित हैं तथा श्रेष्ठ वारुणी के समान जल से परिपूर्ण हैं यावत् प्रासादिक दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उन छोटी-छोटी बावड़ियों यावत् बिलपंक्तियों में बहुत से उत्पातपर्वत यावत् खडहडग हैं जो सर्वस्फटिकमय हैं, स्वच्छ हैं आदि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। यहां वरुण और वरुणप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं, इसलिए यह वरुणवरद्वीप कहलाता है। अथवा यह वरुणवरद्वीप शाश्वत होने से उसका यह नाम भी नित्य और अनिमित्तिक है। यहां चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिष्कों की संख्या संख्यात-संख्यात कहनी चाहिए यावत् यहां संख्यात कोटीकोटी तारागण सुशोभित थे, हैं और होंगे।

१८०. (इ) वरुणवरं णं दीवं वरुणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव चिट्ठइ। समचक्कवालसंठाणसंठिए, नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए। तहेव सव्वं भाणियव्वं। विक्खंभपरिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं पउमवरवेइया वनसंडे दारंतरे य पएसा जीवा अट्ठो। गोयमा ! वारुणोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहाणामए चंदप्पभाइ वा मणिसिलागाइ वा वरसीधु-वरवारुणी-इ वा पत्तासवेइ वा पुप्फासवेइ वा चोयासवेइ वा फलासवेइ वा महुमेरएइ वा जाइप्पसन्नाइ वा खज्जूरसारेइ वा मुद्दियासारेइ वा कापिसायणाइ वा सुपक्कखोयरसेइ वा पभूयसंभारसंचिया पोसमाससतभिसयजोगवत्तिया निरुवहतमविसिट्ठदिन्नकालोवयारा सुधोया उक्कोसगमयपत्ता अट्ठपिट्ठ-निट्ठिया जंबूफलकालिवरप्पसन्ना आसला मासला पेसला ईसीओट्ठावलंबिणी ईसीतंबच्छिकरणी ईसी-वोच्छेया कडुआ, वण्णेणं उववेया, गंधेणं उववेया, रसेणं उववेया फासेणं उववेया आसायणिज्जा विस्सायणिज्जा पीणणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सव्विंदियगायपल्हायणिज्जा,[1] भवे एयारूवे सिया ?

---

१. प्रस्तुत पाठ में प्रतियों में बहुत पाठभेद हैं। वृत्तिकार के व्याख्या पाठ को मान्य करते हुए हमने मूलपाठ दिया है। अन्य प्रतियों में 'अट्ठपिट्ठनिट्ठिया' के आगे ऐसा पाठ भी है— [शेष अगले पृष्ठ पर]

णो इणट्ठे समट्ठे, वारुणस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरे जाव उदए। से एएणट्ठेणं एवं वुच्चइ०। तत्थ णं वारुणि-वारुणकंता देवा महिड्ढिया जाव परिवसंति, से एएणट्ठेणं जाव णिच्चे।

वारुणिवरे णं दीवे कइ चंदा पभासिसु ३ ? सव्वं जोइससंखिज्जगेण णायव्वं।'

१८०. (इ) वरुणोद नामक समुद्र, जो गोल और वलयाकार रूप से संस्थित है, वरुणवरद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है। वह वरुणोदसमुद्र समचक्रवालसंस्थान से संस्थित है, विषमचक्रवाल-संस्थान से संस्थित नहीं है इत्यादि सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए। विष्कंभ और परिधि संख्यात लाख योजन की कहनी चाहिए। पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारान्तर, प्रदेशों की स्पर्शना, जीवोत्पत्ति और अर्थ सम्बन्धी प्रश्न पूर्ववत् कहना चाहिए।

[भगवन् ! वरुणोदसमुद्र, वरुणोदसमुद्र क्यों कहलाता है ?]

गौतम ! वरुणोदसमुद्र का पानी लोकप्रसिद्ध चन्द्रप्रभा नामक सुरा, मणिशलाकासुरा, श्रेष्ठ सीधुसुरा, श्रेष्ठ वारुणीसुरा, धातकीपत्रों का आसव, पुष्पासव, चोयासव, फलासव, मधु, मेरक, जातिपुष्प से वासित प्रसन्नासुरा, खजूर का सार, मृद्वीका (द्राक्षा) का सार, कापिशायनसुरा, भलीभांति पकाया हुआ इक्षु का रस, बहुत सी सामग्रियों से युक्त पौष मास में सैकड़ों वैद्यों द्वारा तैयार की गई, निरुपहत और विशिष्ट कालोपचार से निर्मित, पुनः पुनः धोकर उत्कृष्ट मादक शक्ति से युक्त, आठ बार पिष्ट (आटा) प्रदान से निष्पन्न, जम्बूफल कालिवर प्रसन्न नामक सुरा, आस्वाद वाली गाढ पेशल (मनोज्ञ), अति प्रकृष्ट रसास्वाद वाली होने से शीघ्र ही ओठ को छूकर आगे बढ़ जाने वाली, नेत्रों को कुछ-कुछ लाल करने वाली, इलायची आदि से मिश्रित होने के कारण पीने के बाद थोड़ी कटुक(तीखी) लगने वाली, वर्णयुक्त, सुगन्धयुक्त, सुस्पर्शयुक्त, आस्वादनीय, विशेष आस्वादनीय, धातुओं को पुष्ट करने वाली, दीपनीय (जठराग्नि को दीप्त करने वाली), मदनीय (काम पैदा करने वाली) एवं सर्व इन्द्रियों और शरीर में आह्लाद उत्पन्न करने वाली सुरा आदि होती है, क्या वैसा वरुणोदसमुद्र का पानी है ?

गौतम ! नहीं। वरुणोदसमुद्र का पानी इनसे भी अधिक इष्टतर, कान्ततर, प्रियतर, मनोज्ञतर और मनस्तुष्टि करने वाला है। इसलिए वह वरुणोदसमुद्र कहा जाता है। वहां वारुणि और वारुणकांत नाम के दो देव महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले रहते हैं। इसलिए भी वह वरुणोदसमुद्र कहा जाता है। अथवा हे गौतम ! वरुणोदसमुद्र (द्रव्यापेक्षया) नित्य है, वह सदा था, है और रहेगा इसलिए उसका यह नाम भी शाश्वत होने से अनिमित्तिक है।

(अट्ठपिट्ठपुट्ठा मुरवइंतवरकिमंदिण्णकद्दमा कोपसन्ना अच्छा वरवारुणी अतिरसा जंबूफलपुट्ठवण्णा सुजाता ईसिउट्ठावलंबिणी अहियमधुरपेज्जा ईसीसिरत्तणेत्ता कोमलकवोलकरणी जाव आसादिया विसादिया अणि-हुयसंलावकरणहरिसपीइजणणी संतोसतक बिब्बोक-हाव-विब्भम-विलास-वेल्ल-हल-गमणकरणी विरणम-धियसत्तजणणी य होइ संगाम देसकालेकयरणसमरपसरकरणी कढियाणविज्जुपयतिहिययाण मउयकरणी य होइ उववेसिया समाणा गति खलावेति य सयलंमिवि सुभासवुप्पालिया समरभग्गवणोसहयारसुरभिरसदीविया सुगंधा आसायणिज्जा विस्सायणिज्जा पीणणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सव्विंदियगायपल्हायणिज्जा।)

१. 'सव्वं जोइससंखिज्जकेण णायव्वं वारुणवरे णं दीवे कइ चंदा पभासिसु वा ३' ऐसा प्रतियों में पाठ है। संगति की दृष्टि से उक्त पाठ दिया गया है। —सम्पादक

भगवन् ! वरुणोदसमुद्र में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, होते हैं और होंगे—इत्यादि प्रश्न करना चाहिए।

गौतम ! वरुणोदसमुद्र में चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, तारा आदि सब संख्यात-संख्यात कहने चाहिए।

क्षीरवरद्वीप और क्षीरोदसमुद्र

१८१. वारुणवरं णं दीवं खीरवरे णामं दीवे वट्टे जाव चिट्ठइ। सव्वं संखेज्जगं विक्खंभो य परिक्खेवो य जाव अट्ठो। बहूओ खुड्डा-खुड्डियाओ वावीओ जाव सरसरपंतियाओ खीरोदग पडिहत्थाओ पासाईयाओ ४। तासु णं खुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वयगा० सव्वरयणामया जाव पडिरूवा। पुंडरीगपुक्खरदंता एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति; से एएणट्ठेणं जाव णिच्चे जोतिसं सव्वं संखेज्जं।

खीरवरं णं दीवं खीरोए णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव परिक्खित्ताणं चिट्ठइ समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए, संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं विक्खंभ-परिक्खेवो तहेव सव्वं जाव अट्ठो। गोयमा ! खीरोयस्स णं समुद्दस्स उदगं[1] खंडगुडमच्छंडियोववेए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स उवट्ठविए आसायणिज्जे विस्सायणिज्जे पीणणिज्जे जाव सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे जाव वण्णेणं उवचिए जाव फासेणं भवे एयारूवे सिया ?

णो इणट्ठे समट्ठे। खीरोदस्स णं से उदए एत्तो इट्ठतराए चेव जाव आसाएणं पण्णत्ते। विमलविमलप्पभा एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति। से तेणट्ठेणं, संखेज्जं चंदा जाव तारा।

१८१. वर्तुल और वलयाकार क्षीरवर नामक द्वीप वरुणवरसमुद्र को सब ओर से घेर कर रहा हुआ है। उसका विष्कंभ (विस्तार) और परिधि संख्यात लाख योजन की है आदि कथन पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् नाम सम्बन्धी प्रश्न करना चाहिए। क्षीरवर नामक द्वीप में बहुत-सी छोटी-छोटी बावड़ियां यावत् सरसरपंक्तियां और बिलपंक्तियां हैं जो क्षीरोदक से परिपूर्ण हैं यावत् प्रतिरूप हैं। पुण्डरीक और पुष्करदन्त नाम के दो महर्द्धिक देव वहां रहते हैं यावत् यह शाश्वत है। उस क्षीरवर नामक द्वीप में सब ज्योतिष्कों की संख्या संख्यात-संख्यात कहनी चाहिए।

उक्त क्षीरवर नामक द्वीप को क्षीरोद नामका समुद्र सब ओर से घेरे हुए स्थित है। वह वर्तुल और वलयाकार है। वह समचक्रवालसंस्थान से संस्थित है, विषमचक्रवालसंस्थान से नहीं।

---

१. अत्र एवंभूतोऽपि पाठः दृश्यते प्रतिषु परं टीकाकारेण न व्याख्यातं टीकासम्मतपाठस्यैवेहादृतत्वादन्यत्रापि।

"से जहाणामए—सुउसुहीमारुयण्णयउज्जुयतरगणगरगरत्तकोमलपरिपक्कपत्तसपोरगवरुच्छुचारिणीणं लवंगपत्तपुन्नागनागकोलनगकलि-रुक्खबहुगुच्छगुम्मकलियमलट्ठिमधुपउरपिप्पलीफलियवल्लिवरविवरचारिणीणं अप्पोदगपीतसइरस समभूमिभागणिभयसुहोसियाणं सुप्पेसियसुहात-रोगपरिवज्जियाणं णिरुवहयसरीराणं कालप्पसविणीणं बितियततियसमप्पसूयाणं अंजणवरगवलवलयजलधरजच्चंजणरिट्ठभमरपभूयसमप्पभाणं कुंडदोहणाणं बद्धत्थिपत्थुयाणं रूढाणं मधुमासकाले संगहनेहो अज्जचातुरक्केव होज्ज तासिं खीरे मधुररस विवगच्छ-बहुदव्वसंपउत्ते पत्तेयं मंदग्गिसुकढिए आउत्ते खंडगुड......।

संख्यात लाख योजन उसका विष्कंभ और परिधि है आदि सब वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए यावत् नाम सम्बन्धी प्रश्न करना चाहिए कि क्षीरोद, क्षीरोद क्यों कहलाता है ?

गौतम ! क्षीरोदसमुद्र का पानी चक्रवर्ती राजा के लिये तैयार किये गये गोक्षीर (खीर) जो चतु:स्थान-परिणाम परिणत है, शक्कर, गुड, मिश्री आदि से अति स्वादिष्ट बताई गई है, जो मंदअग्नि पर पकायी गई है, जो आस्वादनीय, विस्वादनीय, प्रीणनीय यावत् सर्व-इन्द्रियों और शरीर को आह्लादित करने वाली है, जो वर्ण से सुन्दर है यावत् स्पर्श से मनोज्ञ है। (क्या ऐसा क्षीरोद का पानी है ?)

गौतम ! नहीं, इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्ति देने वाला है। विमल और विमलप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव वहां निवास करते हैं। इस कारण क्षीरोदसमुद्र क्षीरोदसमुद्र कहलाता है। उस समुद्र में सब ज्योतिष्क चन्द्र से लेकर तारागण तक संख्यात-संख्यात हैं।

घृतवर, घृतोद, क्षोदवर, क्षोदोद की वक्तव्यता

१८२. (अ) खीरोदं णं समुद्दं घयवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव चिट्ठइ समचक्कवालसंठाणसंठिए नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए, संखेज्जविक्खंभपरिक्खेवे०पएसा जाव अट्ठो।

गोयमा ! घयवरे णं दीवे तत्थ-तत्थ बहूओ खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ जाव घयोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वगा जाव खडहड० सव्वकंचणमया अच्छा जाव पडिरूवा। कणयकणयप्पभा एत्थ दो देवा महिड्ढिया, चंदा संखेज्जा।

घयवरं णं दीवं घयोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव चिट्ठइ समचक्क० तहेव दार पदेसा जीवा य अट्ठो ? गोयमा ! घयोदस्स णं समुद्दस्स उदए—से जहाणामए पप्फुल्लसल्लइ-विमुक्कल कण्णियारसरसवसुविसुद्धकोरंटदामपिंडिततरस्सनिद्धगुणतेयदीवियनिरुवहयविसिट्ठसुन्दर-तरस्स सुजाय-दहिमथियतद्दिवसगहियणवणीयपडुवणावियमुक्कड्ढिय.उद्दावसज्जवीसंदियस्स अहियं पीवर-सुरहिगंधमणहरमहुरपरिणामदरिसणिज्जस्स पत्थनिम्मलसुहोवभोगस्स सरयकालम्मि होज्ज गोघयवरस्स मंडए, भवे एयारूवे सिया ? णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! घयोदस्स णं समुद्दस्स एत्तो इट्ठतरे जाव अस्साएणं पण्णत्ते, कंतसुकंता एत्थ दो देवा महिड्ढिया जाव परिवसंति, सेसं तं चेव जाव तारागण कोडीकोडीओ।

१८२. (अ) वर्तुल और वलयाकार संस्थान-संस्थित घृतवर नामक द्वीप क्षीरोदसमुद्र को सब ओर से घेर कर स्थित है। वह समचक्रवालसंस्थान वाला है, विषमचक्रवालसंस्थान वाला नहीं है। उसका विस्तार और परिधि संख्यात लाख योजन की है। उसके प्रदेशों की स्पर्शना आदि से लेकर यह घृतवरद्वीप क्यों कहलाता है, यहां तक का वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

गौतम ! घृतवरद्वीप में स्थान-स्थान पर बहुत-सी छोटी-छोटी वावड़ियां आदि हैं जो घृतोदक से भरी हुई हैं। वहां उत्पात पर्वत यावत् खडहड आदि पर्वत हैं, वे सर्वकंचनमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। वहां कनक और कनकप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। उसके ज्योतिष्कों की संख्या संख्यात-संख्यात है।

उक्त घृतवरद्वीप को घृतोद नामक समुद्र चारों ओर से घेरकर स्थित है। वह गोल और वलय की आकृति से संस्थित है। वह समचक्रवालसंस्थान वाला है। पूर्ववत् द्वार, प्रदेशस्पर्शना, जीवोत्पत्ति और नाम का प्रयोजन सम्बन्धी प्रश्न कहने चाहिए।

गौतम ! घृतोदसमुद्र का पानी गोघृत के मंड (सार) के जैसा श्रेष्ठ है।[1] (घी के ऊपर जमे हुए थर को मंड कहते हैं) यह गोघृतमंड फूले हुए सल्लकी, कनेर के फूल, सरसों के फूल, कोरण्ट की माला की तरह पीले वर्ण का होता है, स्निग्धता के गुण से युक्त होता है, अग्निसंयोग से चमकवाला होता है, यह निरुपहत और विशिष्ट सुन्दरता से युक्त होता है, अच्छी तरह जमाये हुए दही को अच्छी तरह मथित करने पर प्राप्त मक्खन को उसी समय तपाये जाने पर, अच्छी तरह उकाले जाने पर उसे अन्यत्र न ले जाते हुए उसी स्थान पर तत्काल छानकर कचरे आदि के उपशान्त होने पर उस पर जो थर जम जाती, वह जैसे अधिक सुगन्ध से सुगन्धित, मनोहर, मधुर-परिणाम वाली और दर्शनीय होती है, वह पथ्यरूप, निर्मल और सुखोपभोग्य होती है, ऐसे शरत्कालीन गोघृतवरमंड के समान यह घृतोद का पानी होता है क्या, यह पूछने पर भगवान् कहते हैं—गौतम! वह घृतोद का पानी इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्त करने वाला है। वहां कान्त और सुकान्त नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए यावत् वहां संख्यात तारागण-कोटिकोटि शोभित होती थी, शोभित होती है और शोभित होगी।

१८२. (आ) घयोदं णं समुद्दं खोयवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव चिट्ठइ तहेव जाव अट्ठो।

खोयवरे णं दीवे तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं खुड्डा वावीओ जाव खोदोदगपडिहत्थाओ, उप्पाय-पव्वया, सव्ववेरुलियामया जाव पडिरूवा। सुप्पभमहप्पभा य दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति। से एएणट्ठे णं सव्वं जोतिसं तं चेव जाव तारागणकोडिकोडीओ।

खोयवरं णं दीवं खोदोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव संखेज्जाइं जोयण-सयसहस्साइं परिक्खेवेणं जाव अट्ठो।

गोयमा ! खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहाणामए—आसल-मासल-पसत्थ-वीसंत-निद्धसुकमाल-भूमिभागे सुच्छिन्ने सुकट्ठलट्ठविसिट्ठनिरुवहयाजीयवावितै-सुकासगपयत्तनिउणपरिकम्म-अणुपालिय-सुवुड्ढिवुड्ढाणं सुजाताणं लवणतणदोसवज्जियाणं णयाय-परियड्ढियाणं निम्मातसुंदराणं रसेणं परिणय-मउपीणपोरभंगुरसुजायमहुररसपुप्फविरहियाणं उवद्दवविवज्जियाणं सीयपरिफासियाणं अभिणवतयग्गाणं अपालिताणं तिभायणिच्छोडियवाडगाणं अवणीतमूलाणं गंठिपरिसोहियाणं कुसलणरकप्पियाणं उव्वणं जाव पोंडियाणं बलवगणरजत्तजन्तपरिगालितमेत्ताणं खोयरसे होज्जा वत्थपरिपूए चाउज्जातगसुवासिए अहियपत्थलहुए वण्णोववेए तहेव[2], भवे एयारूवे सिया ? णो तिणट्ठे समट्ठे। खोयोदस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरए चेव जाव आसाएणं पण्णत्ते।

---

1. "घृतमण्डो घृतसारः" —इति मूल टीकाकार
2. वृत्तिकारानुसारेण अयमेव पाठः सम्भाव्यते—
   खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहाणामए—वरपुंडगाणं भेरण्डेक्खूणं वा कालपोराणं अवणीयमूलाणं तिभायणि-च्छोडियवाडिगाणं गंठिपरिसोहियाणं वत्थपरिपूए चाउज्जायगसुवासिए अहियपत्थलहुए वन्नोववेए तहेव।

पुण्णभद्दमाणिभद्दा य (पुण्णपुण्णभद्दा य) इत्थ दुवे देवा जाव परिवसंति, सेसं तहेव। जोइसं संखेज्जं चंदा०।

१८२. (आ) गोल और वलयाकार क्षोदवर नाम का द्वीप घृतोदसमुद्र को सब ओर से घेरे हुए स्थित है, आदि वर्णन अर्थपर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए। क्षोदवरद्वीप में जगह-जगह छोटी-छोटी बावड़ियां आदि हैं जो क्षोदोदग (इक्षुरस) से परिपूर्ण हैं। वहां उत्पात पर्वत आदि है जो सर्ववैडूर्यरत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं। वहां सुप्रभ और महाप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव रहते है। इस कारण यह क्षोदवर-द्वीप कहा जाता है। यहां संख्यात-संख्यात चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण कोटिकोटि हैं।

इस क्षोदवरद्वीप को क्षोदोद नाम का समुद्र सब ओर से घेरे हुए है। यह गोल और वलयाकार है यावत् संख्यात लाख योजन का विष्कंभ और परिधि वाला है आदि सब कथन अर्थ सम्बन्धी प्रश्न तक पूर्ववत् जानना चाहिए। अर्थ इस प्रकार है— हे गौतम! क्षोदोदसमुद्र का पानी जातिवंत श्रेष्ठ इक्षुरस से भी अधिक इष्ट यावत् मन को तृप्ति देने वाला है। वह इक्षुरस स्वादिष्ट, गाढ़, प्रशस्त, विश्रान्त, स्निग्ध और सुकुमार भूमिभाग में निपुण कृषिकार द्वारा काष्ठ के सुन्दर विशिष्ट हल से जोती गई भूमि में जिस इक्षु का आरोपण किया गया है और निपुण पुरुष के द्वारा जिसका संरक्षण किया गया हो, तृणरहित भूमि में जिसकी वृद्धि हुई हो और इससे जो निर्मल एवं पककर विशेष रूप से मोटी हो गई हो और मधुररस से जो युक्त बन गई हो, शीतकाल के जन्तुओं के उपद्रव से रहित हो, ऊपर और नीचे की जड़ का भाग निकाल कर और उसकी गाँठों को भी अलग कर बलवंत बैलों द्वारा यंत्र से निकाला गया हो तथा वस्त्र से छाना गया हो और चार प्रकार के—(दालचीनी, इलायची, केशर, कालीमिर्च) सुगंधित द्रव्यों से युक्त किया गया हो, अधिक पथ्यकारी और पचने में हल्का हो तथा शुभ वर्ण गंध रस स्पर्श से समन्वित हो, ऐसे इक्षुरस के समान क्या क्षोदोद का पानी है ? गौतम! इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्ति करने वाला है। पूर्णभद्र और माणिभद्र (पूर्ण और पूर्णभद्र) नाम के दो महर्द्धिक देव यहां रहते हैं। इस कारण यह क्षोदोदसमुद्र कहा जाता है। शेष कथन पूर्ववत् करना चाहिए यावत् वहां संख्यात-संख्यात चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण-कोटि-कोटि शोभित थे, शोभित हैं और शोभित होंगे।

नंदीश्वरद्वीप की वक्तव्यता

१८३. (क) खोदोदं णं समुद्दं णंदीसरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए तहेव जाव परिक्खेवो। पउमवरवेदिआवणसंडपरिक्खित्ते। दारा दारंतरपएसे जीवा तहेव।

से केणट्ठेणं भंते० ?

गोयमा! तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहूओ खुड्डाओ वावीओ जाव बिलपंतियाओ खोदोदग-पडिहत्थाओ उप्पायपव्वया सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा।

अदुत्तरं च णं गोयमा! णंदीसरदीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं चउदिसिं चत्तारि अंजणपव्वया पण्णत्ता। ते णं अंजणपव्वया चउरासीइजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले साइरेगाइं धरणियले दसजोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, तओ अणंतरं च णं मायाए-मायाए पएसपरिहाणीए परिहायमाणा परिहायमाणा उवरिं एगमेगं जोयणसहस्सं

आयामविक्खंभेणं, मूले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं धरणियले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए देसूणे परिक्खेवेणं, सिहरतले तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसयं किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं पण्णत्ता, मूले वित्थिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पि तणुया, गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्वंजणमया अच्छा जाव पत्तेयं पत्तेयं पउमवर-वेइयापरिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता, वण्णओ।

तेसि णं अंजणपव्वयाणं उवरिं पत्तेयं-पत्तेयं बहुसमरमणिज्जो भूमिभागो पण्णत्तो, से जहाणामए-आलिंगपुक्खरेइ वा जाव सयंति। तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सिद्धायतणा एगमेगं जोयणसयं आयामेणं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसयसंनिविट्ठा, वण्णओ।

१८३ (क) क्षोदोदकसमुद्र को नंदीश्वर नाम का द्वीप चारों ओर से घेर कर स्थित है। यह गोल और वलयाकार है। यह नन्दीश्वरद्वीप समचक्रवालविष्कंभ से युक्त है। परिधि आदि के कथन से लेकर जीवोपपाद सूत्र तक सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए।

भगवन् ! नंदीश्वरद्वीप के नाम का क्या कारण है ?

गौतम ! नंदीश्वरद्वीप में स्थान-स्थान पर बहुत-सी छोटी-छोटी बावड़ियां यावत् बिलपंक्तियां हैं, जिनमें इक्षुरस जैसा जल भरा हुआ है। उसमें अनेक उत्पातपर्वत हैं जो सर्व वज्रमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

गौतम ! दूसरी बात यह है कि नंदीश्वरद्वीप के चक्रवालविष्कंभ के मध्यभाग में चारों दिशाओं में चार अंजनपर्वत कहे गये हैं। वे अंजनपर्वत चौरासी हजार योजन ऊंचे, एक हजार योजन गहरे, मूल में दस हजार योजन से अधिक लम्बे-चौड़े, धरणितल में दस हजार योजन लम्बे-चौड़े हैं। इसके बाद एक-एक प्रदेश कम होते-होते ऊपरी भाग में एक हजार योजन लम्बे-चौड़े है। इनकी परिधि मूल में इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन से कुछ अधिक, धरणितल में इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन से कुछ कम और शिखर में तीन हजार एक सौ बासठ योजन से कुछ अधिक है। ये मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतले हैं, अतः गोपुच्छ के आकार के हैं। ये सर्वात्मना अंजनरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रत्येक पर्वत पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से वेष्टित हैं। यहां पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णनक कहना चाहिए।

उन अंजनपर्वतों में से प्रत्येक पर बहुत सम और रमणीय भूमिभाग है। वह भूमिभाग मृदंग के मढ़े हुए चर्म के समान समतल है यावत् वहां बहुत से वानव्यन्तर देव-देवियां निवास करते हैं यावत् अपने पुण्य-फल का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

उन समरमणीय भूमिभागों के मध्यभाग में अलग-अलग सिद्धायतन हैं, जो एक सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और बहत्तर योजन ऊंचे हैं, सैकड़ों स्तम्भों पर टिके हुए हैं आदि वर्णन सुधर्मसभा की तरह जानना चाहिए।

१८३. (ख) तेसि णं सिद्धायतणाणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता—देवदारे, असुरदारे, णागदारे, सुवण्णदारे। तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,

तं जहा—देवे, असुरे, णागे, सुवण्णे। ते णं दारा सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकगण० वण्णओ जाव वणमाला।

तेसि णं दाराणं चउद्दिसिं चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता। ते णं मुहमंडवा जोयणसयं आयामेणं पण्णासं जोयणाइंवं विक्खंभेणं साइरेगाइं सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं वण्णओ।

तेसि णं मुहमंडवाणं चउद्दिसिं (तिदिसिं) चत्तारि (तिण्णि) दारा पण्णत्ता। ते णं दारा सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठजोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेसं तं चेव जाव वणमालाओ। एवं पेच्छाघरमंडवा वि, तं चेव पमाणं जं मुहमंडवाणं दारा वि तहेव, णवरि बहुमज्झदेसे पेच्छाघरमंडवाणं अक्खाडगा मणिपेढियाओ अट्ठजोयणपमाणाओ सीहासणा अपरिवारा जाव दामा थूभाइं चउद्दिसिं तहेव णवरि सोलसजोयणप्पमाणा साइरेगाइं सोलसजोयणाइं उच्चा सेसं तहेव जाव जिणपडिमा। चेइयरुक्खा तहेव चउद्दिसिं तं चेव पमाणं जहा विजयाए रायहाणीए णवरि मणिपेढियाओ सोलसजोयणप्पमाणाओ। तेसि णं चेइयरुक्खाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ अट्ठजोयण-विक्खंभाओ चउजोयणबाहल्लाओ महिंदज्झया चउसट्ठिजोयणुच्चा जोयणोव्वेधा जोयणविक्खंभा सेसं तं चेव।

एवं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरणीओ, णवरि खोयरस पडिपुण्णाओ जोयणसयं आयामेणं पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णासं जोयणाइं उव्वेहेणं सेसं तं चेव। मणोगुलियाणं गोमाणसीण य अडयालीसं अडयालीसं सहस्साइं पुरच्छिमेणवि सोलस पच्चत्थिमेणवि सोलस दाहिणेणवि अट्ठ उत्तरेणवि अट्ठ साहस्सीओ तहेव सेसं उल्लोया भूमिभागा जाव बहुमज्झदेसभाए मणिपेढिया सोलस-जोयणा आयामविक्खंभेणं अट्ठजोयणाइं बाहल्लेणं तारिसं मणिपेढियाणं उप्पि देवच्छंदगा सोलस-जोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वरयणामया० अट्ठसयं जिणपडिमाणं सो चेव गमो जहेव वेमाणियसिद्धाययणस्स।

१८३. (ख) उन प्रत्येक सिद्धायतनों की चारों दिशाओं में चार द्वार कहे गये हैं; उनके नाम हैं—देवद्वार, असुरद्वार, नागद्वार और सुपर्णद्वार। उनमें महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं; उनके नाम है—देव, असुर, नाग और सुपर्ण। वे द्वार सोलह योजन ऊँचे, आठ योजन चौड़े और उतने ही प्रमाण के प्रवेश वाले हैं। ये सब द्वार सफेद हैं, कनकमय इनके शिखर हैं आदि वनमाला पर्यन्त सब वर्णन विजयद्वार के समान जानना चाहिए। उन द्वारों की चारों दिशाओं में चार मुखमंडप हैं। वे मुखमंडप एक सौ योजन विस्तार वाले, पचास योजन चौड़े और सोलह योजन से कुछ अधिक ऊँचे हैं। विजयद्वार के समान वर्णन कहना चाहिए।

उन मुखमंडप की चारों (तीनों) दिशाओं में चार (तीन) द्वार कहे गये हैं। वे द्वार सोलह योजन ऊँचे, आठ योजन चौड़े और आठ योजन प्रवेश वाले हैं आदि वर्णन वनमाला पर्यन्त विजयद्वार तुल्य ही है।

इसी तरह प्रेक्षागृहमंडपों के विषय में भी जानना चाहिए। मुखमंडपों के समान ही उनका प्रमाण है। द्वार भी उसी तरह के हैं। विशेषता यह है कि बहुमध्यभाग में प्रेक्षागृहमंडपों के अखाड़े, (चौक) मणिपीठिका आठ योजन प्रमाण, परिवार रहित सिंहासन यावत् मालाएं, स्तूप आदि चारों

दिशाओं में उसी प्रकार कहने चाहिए। विशेषता यह है कि वे सोलह योजन से कुछ अधिक प्रमाण वाले और कुछ अधिक सोलह योजन ऊँचे हैं। शेष उसी तरह जिनप्रतिमा पर्यन्त वर्णन करना चाहिए। चारों दिशाओं में चैत्यवृक्ष हैं। उनका प्रमाण वही है जो विजया राजधानी के चैत्यवृक्षों का है। विशेषता यह है कि मणिपीठिका सोलह योजन प्रमाण है।

उन चैत्यवृक्षों की चारों दिशाओं में चार मणिपीठिकाएं हैं जो आठ योजन चौड़ी, चार योजन मोटी हैं। उन पर चौसठ योजन ऊंची, एक योजन गहरी, एक योजन चौड़ी महेन्द्रध्वजा है। शेष पूर्ववत्। इसी तरह चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। विशेषता यह है कि ये इक्षुरस से भरी हुई हैं। उनकी लम्बाई सौ योजन, चौड़ाई पचास योजन और गहराई पचास योजन है। शेष पूर्ववत्।

उन सिद्धायतनों में प्रत्येक दिशा में—पूर्वदिशा में सोलह हजार, पश्चिम में सोलह हजार, दक्षिण में आठ हजार और उत्तर में आठ हजार—यों कुल ४८ हजार मनोगुलिकाएं (पीठिकाविशेष) हैं और इतनी ही गोमानुषी (शय्यारूप स्थानविशेष) हैं। उसी तरह उल्लोक (छत, चन्देवा) और भूमिभाग का वर्णन जानना चाहिए। यावत् मध्यभाग में मणिपीठिका है जो सोलह योजन लम्बी-चौड़ी और आठ योजन मोटी है। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर देवच्छंदक हैं जो सोलह योजन लम्बे-चौड़े, कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचे हैं, सर्वरत्नमय हैं। इन देवच्छंदकों में १०८ जिन प्रतिमाएं हैं। जिनका सब वर्णन वैमानिक की विजया राजधानी के सिद्धायतनों के समान जानना चाहिए।

१८३. (ग) तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले अंजणपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

णंदुत्तरा, य णंदा, आणंदा णंदिवद्धणा।
नंदिसेणा अमोघा य गोथूभा य सुदंसणा॥

ताओ णं णंदापुक्खरिणीओ एगमेगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ, तत्थ तत्थ जाव सोवाणपडिरूवगा, तोरणा।

तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं दहिमुहपव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिया दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं इक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ता, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। तहा पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया० वणसंडवण्णओ। बहुसम० जाव आसयंति सयंति। सिद्धाययणं चेव पमाणं अंजणपव्वएसु सच्चेव वत्तव्वया णिरवसेसं भाणियव्वं जाव अट्ठट्ठमंगलगा।

१८३. (ग) उनमें जो पूर्वदिशा का अंजनपर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। उनके नाम हैं—नंदुत्तरा, नंदा, आनंदा और नंदिवर्धना। (नंदिसेना, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना—ये नाम भी कहीं-कहीं कहे गये हैं।) ये नंदा पुष्करिणियां एक लाख योजन की लम्बी-चौड़ी हैं, इनकी गहराई दस योजन की है। ये स्वच्छ हैं, श्लक्ष्ण हैं। प्रत्येक के आसपास चारों

ओर पद्मवरवेदिका और वनखंड हैं। इनमें त्रिसोपान-पंक्तियां और तोरण है। उन प्रत्येक पुष्करिणियों के मध्यभाग में दधिमुखपर्वत हैं जो चौसठ हजार योजन ऊँचे, एक हजार योजन जमीन में गहरे और सब जगह समान है। ये पल्यंक के आकार के है। दस हजार योजन की इनकी चौड़ाई है। इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन इनकी परिधि है। ये सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप है। इनके प्रत्येक के चारों ओर पद्मवरवेदिका और वनखण्ड हैं। यहां इनका वर्णनक कहना चाहिए। उनमें बहुसमरमणीय भूमिभाग है यावत् वहां बहुत वान-व्यन्तर देव-देवियां बैठते हैं और लेटते है और पुण्यफल का अनुभव करते है। सिद्धायतनों का प्रमाण अंजनपर्वत के सिद्धायतनों के समान जानना चाहिए, सब वक्तव्यता वैसी ही कहनी चाहिए यावत् आठ-आठ मंगलों का कथन करना चाहिए।

१८३. (घ) तत्थ णं जे से दक्खिणिल्ले अंजणपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

भद्दा य विसाला य कुमुया पुंडरिगिणो।
नंदुत्तरा य नंदा आनंदा नंदिवद्धणा॥

तं चेव दहिमुहा पव्वया तं चेव पमाणं जाव सिद्धाययणा।

तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

णंदिसेणा अमोहा य गोथूभा य सुदंसणा।
भद्दा विसाला कुमुया पुंडरिगिणी॥

तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव सिद्धाययणा।

तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ तं जहा— विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया। सेसं तहेव जाव सिद्धाययणा। सव्वा य चिय वण्णणा णायव्वा।

तत्थ णं बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा चाउमासियासु पडिवयासु संवच्छरीएसु वा अण्णेसु बहुसु जिणजम्मण-निक्खमण-णाणुप्पत्ति-परिणिव्वाणमाइएसु सुभदेवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमिईसु य देवसमवाएसु य देवपओयणेसु य एगंतओ सहिया समुवागया समाणा पमुइयपक्कीलिया अट्ठहियारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहंसुहेणं विहरंति। कइलास-हरिवाहणा य तत्थ दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति; से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चा, जोइसं संखेज्जं।

१८३. (घ) उनमें जो दक्षिणदिशा का अंजनपर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। उनके नाम इस प्रकार है—भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुंडरीकिणी। (अथवा नंदोत्तरा, नंदा, आनन्दा और नंदिवर्धना)। उसी तरह दधिमुख पर्वतों का वर्णन उतना ही प्रमाण आदि सिद्धायतन पर्यन्त कहना चाहिए।

दक्षिणदिशा के अंजनपर्वत की चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। उनके नाम हैं— नंदिसेना, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना। अथवा भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुंडरीकिणी। सिद्धायतन पर्यन्त सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए।

उत्तरदिशा के अंजनपर्वत की चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां है। उनके नाम हैं— विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता। शेष सब वर्णन सिद्धायतन पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।

उन सिद्धायतनों में बहुत से भवनपति, वान-व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव चातुर्मासिक प्रतिपदा आदि पर्व दिनों में, सांवत्सरिक उत्सव के दिनों में तथा अन्य बहुत से जिनेश्वर देव के जन्म, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण कल्याणकों के अवसर पर देवकार्यों में, देव-मेलों में, देवगोष्ठियों में, देवसम्मेलनों में और देवों के जीतव्यवहार सम्बन्धी प्रयोजनों के लिए एकत्रित होते है, सम्मिलित होते हैं और आनन्द-विभोर होकर महामहिमाशाली अष्टाह्निका पर्व मनाते हुए सुखपूर्वक विचरते हैं। *कैलाश और हरिवाहन नाम के दो महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले देव यहां रहते हैं।* इस कारण हे गौतम ! इस द्वीप का नाम नंदीश्वरद्वीप है। अथवा द्रव्यापेक्षया शाश्वत होने से यह नाम शाश्वत और नित्य है। सदा से चला आ रहा है। यहां सब चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा संख्यात-संख्यात हैं।

१८४. नंदीस्सरवरं णं दीवं नंदीसरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव सव्वं तहेव अट्ठो जो खोदोदगस्स जाव सुमणसोमणसभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, सेसं तहेव जाव तारग्गं।

१८४. उक्त नंदीश्वरद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए नंदीश्वर नामक समुद्र है, जो गोल है एवं वलयकार संस्थित है इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् (क्षोदोदकवत्) कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहां सुमनस और सौमनसभद्र नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष सब वर्णन तारागण की संख्या पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

अरुणद्वीप का कथन

१८५. (अ) नंदीसरोदं समुद्दं अरुणे णामं दीवे वट्टे वलयागार जाव संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। अरुणे णं भंते ! दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ? गोयमा ! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए। केवइयं समचक्कवालविक्खंभेणं संठिए ? संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते। पउमवरवेदिया-वणसंड-दारा-दारंतरा तहेव संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं दारंतरं जाव अट्ठो वावीओ खोदोदग पडिहत्थाओ उप्पायपव्वयगा सव्ववइरामया अच्छा; असोग-वीतसोगा य एत्थ दुवे देवा महिड्डिया जाव परिवसंति। से तेणट्ठेणं० जाव संखेज्जं सव्वं।

१८५. (अ) नंदीश्वर नामक समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए अरुण नाम का द्वीप है जो गोल है और वलयाकार रूप से संस्थित है।

हे भगवन् ! अरुणद्वीप समचक्रवालविष्कंभ वाला है या विषमचक्रवालविष्कंभ वाला है ?

गौतम ! वह समचक्रवालविष्कंभ वाला है, विषमचक्रवालविष्कंभ वाला नहीं है।

भगवन् ! उसका चक्रवालविष्कंभ कितना है ?

गौतम ! संख्यात लाख योजन उसका चक्रवालविष्कंभ है और संख्यात लाख योजन उसकी परिधि है। पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारान्तर भी संख्यात लाख योजन प्रमाण है। इसी द्वीप का ऐसा नाम इस कारण है कि यहां पर बावड़ियां इक्षुरस जैसे पानी से भरी हुई हैं। इसमें उत्पातपर्वत

हैं जो सर्ववज्रमय हैं और स्वच्छ हैं। यहां अशोक और वीतशोक नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। इस कारण से इसका नाम अरुणद्वीप है। यहां सब ज्योतिष्कों की संख्या संख्यात जाननी चाहिए।

१८५. (आ) अरुणं णं दीवं अरुणोदे णामं समुद्दे, तस्सवि तहेव परिक्खेवो अट्ठो, खोदोदगे, णवरि सुभद्दसुमणभद्दा एत्थ दुवे देवा महिड्डिया सेसं तहेव।

अरुणोदगं समुद्दं अरुणवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए तहेव संखेज्जगं सव्वं जाव अट्ठो खोदोदगपडिहत्थाओ० उप्पायपव्वया सव्ववइरामया अच्छा। अरुणवरभद्द-अरुणवरमहाभद्द एत्थ दो देवा महिड्डिया०। एवं अरुणवरोदेवि समुद्दे जाव देवा अरुणवर-अरुणमहावरा य एत्थ दो देवा, सेसं तहेव।

अरुणवरोदं णं समुद्दं अरुणवरावभासे णामं दीवे वट्टे जाव देवा अरुणवरावभासभद्द-अरुणवरावभासमहाभद्दा य एत्थ दो देवा महिड्डिया।

एवं अरुणवरावभासे समुद्दे णवरं देवा अरुणवरावभासवर-अरुणवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया।

कुण्डले दीवे कुंडलभद्द-कुंडलमहाभद्दा दो देवा महिड्डिया। कुंडलोदे समुद्दे चक्खसुभ-चक्खुकंता एत्थ दो देवा महिड्डिया।

कुंडलवरे दीवे कुण्डलवरभद्द-कुण्डलवरमहाभद्दा एत्थ णं दो देवा महिड्डिया। कुंडलवरोदे समुद्दे कुण्डलवर-कुंडलवरमहावर एत्थ दो देवा महिड्डिया।

कुंडलवरावभासे दीवे कुंडलवरावभासभद्द-कुंडलवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया। कुंडलवरोभासोदे समुद्दे कुंडलवरोभासवर-कुंडलवरोभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।

१८५. (आ) अरुणद्वीप को चारों ओर से घेरकर अरुणोद नाम का समुद्र अवस्थित है। उसका विष्कंभ, परिधि, अर्थ, उसका इक्षुरस जैसा पानी आदि सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इसमें सुभद्र और सुमनभद्र नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं, शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

उस अरुणोदक नामक समुद्र को अरुणवर नाम का द्वीप चारों ओर से घेरकर स्थित है। वह गोल और वलयाकार संस्थान वाला है। उसी तरह संख्यात लाख योजन का विष्कंभ, परिधि आदि जानना चाहिए। अर्थ के कथन में इक्षुरस जैसे जल से भरी बावड़ियां, सर्ववज्रमय एवं स्वच्छ, उत्पात-पर्वत और अरुणवरभद्र एवं अरुणवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव वहां निवास करते हैं आदि कथन करना चाहिए। इसी प्रकार अरुणवरोद नामक समुद्र का वर्णन भी जानना चाहिए यावत् वहां अरुणवर और अरुणमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष पूर्ववत्।

अरुणवरोदसमुद्र को अरुणवरावभास नाम का द्वीप चारों ओर से घेर कर स्थित है। वह गोल है यावत् वहां अरुणवरावभासभद्र एवं अरुणवरावभासमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं।

इसी तरह अरुणवरावभाससमुद्र में अरुणवरावभासवर एवं अरुणवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव वहां रहते हैं। शेष पूर्ववत्।

कुण्डलद्वीप में कुण्डलभद्र एवं कुण्डलमहाभद्र नाम के दो देव रहते हैं और कुण्डलोदसमुद्र में चक्षुशुभ और चक्षुकांत नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

कुण्डलवरद्वीप में कुण्डलवरभद्र और कुण्डलवरमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं। कुण्डलवरोदसमुद्र में कुण्डलवर और कुण्डलवरमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं।

कुण्डलवरावभासद्वीप में कुण्डलवरावभासभद्र और कुण्डलवरावभासमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। कुण्डलवरावभासोदकसमुद्र में कुण्डलवरोभासवर एवं कुण्डलवरोभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। ये देव पल्योपम की स्थिति वाले हैं आदि वर्णन जानना चाहिए।

१८५. (इ) कुण्डलवरोभासं णं समुद्दं रुयगे णामं दीवे वलयागार० जाव चिट्ठइ। किं समचक्कवाल० विसमचक्कवाल० ?

गोयमा ! समचक्कवाल० नो विसमचक्कवालसंठिए। केवइयं चक्कवाल० पण्णत्ते ? सव्वट्ठ-मणोरमा एत्थ दो देवा, सेसं तहेव।

रुयगोदे णामं समुद्दे जहा खोदोदे समुद्दे संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं। दारा, दारंतरं पि संखेज्जाइं, जोइसं पि सव्वं संखेज्जं भाणियव्वं। अट्ठो वि जहेव खोदोदस्स नवरि सुमण-सोमणसा एत्थ दो देवा महिड्डिया तहेव। रुयगाओ आढत्तं असंखेज्जं विक्खंभ परिक्खेवो दारा दारंतरं जोइसं च सव्वं असंखेज्जं भाणियव्वं।

रुयदोगं णं समुद्दं रुयगवरे णं दीवे वट्टे रुयगवरभद्द-रुयगवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा। रुयगवरोदे रुयगवर-रुयगवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया।

रुयगवराभासे दीवे रुयगवरावभासभद्द-रुयगवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया। रुयगवरावभासे समुद्दे रुयगवरावभासवर-रुयगवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा०।

हारद्दीवे। हारभद्द-हारमहाभद्दा दो देवा। हारसमुद्दे हारवर-हारवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया। हारवरदीवे हारवरभद्द-हारवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया। हारवरोए समुद्दे हारवर-हारवरमहावरा एत्थ दो देवा०। हारवरावभासे दीवे हारवरावभासभद्द-हारवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा०। हारवरावभासोए समुद्दे हारवरावभासवर-हारवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया।

एवं सव्वेवि तिपडोयारा णेयव्वा जाव सूरवरावभासोदे समुद्दे।
दीवेसु भद्दनामा वरनामा होंति उदहीसु।
जाव पच्छिमभावं च खोयवरादीसु सयंभूरमणपज्जन्तेसु॥
वावीओ खोदोदग पव्वइयाओ पव्वया य सव्ववइरामया॥

१८५. (इ) कुण्डलवराभाससमुद्र को चारों ओर से घेरकर रुचक नामक द्वीप अवस्थित है, जो गोल और वलयाकार है।

भगवन् ! वह रुचकद्वीप समचक्रवालविष्कंभ वाला है या विषमचक्रवालविष्कंभ वाला है।
गौतम ! समचक्रवालविष्कंभ वाला है, विषमचक्रवालविष्कंभ वाला नहीं है।

भगवन् ! उसका चक्रवालविष्कंभ कितना है ? यहां से लगाकर सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये यावत् वहां सर्वार्थ और मनोरम नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष कथन पूर्ववत्। रुचकोदक नामक समुद्र क्षोदोद समुद्र की तरह संख्यात लाख योजन चक्रवालविष्कंभ वाला, संख्यात लाख योजन परिधि वाला और द्वार, द्वारान्तर भी संख्यात लाख योजन वाले हैं। वहां ज्योतिष्कों की संख्या भी संख्यात कहनी चाहिए। क्षोदोदसमुद्र की तरह अर्थ आदि की वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि यहां सुमन और सौमनस नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष पूर्ववत् जानना चाहिए।

रुचकद्वीप समुद्र से आगे के सब द्वीप समुद्रों का विष्कंभ, परिधि, द्वार, द्वारान्तर, ज्योतिष्कों का प्रमाण—ये सब असंख्यात कहने चाहिए।

रुचकोदसमुद्र को सब ओर से घेरकर रुचकवर नाम का द्वीप अवस्थित है, जो गोल है आदि कथन करना चाहिए यावत् रुचकवरभद्र और रुचकवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। रुचकवरोदसमुद्र में रुचकवर और रुचकवरमहावर नाम के दो देव रहते है, जो महर्द्धिक हैं।

रुचकवरावभासद्वीप में रुचकवरावभासभद्र और रुचकवरावभाससमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते है। रुचकवरावभाससमुद्र में रुचकवरावभासवर और रुचकवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव है।

हार द्वीप में हारभद्र और हारमहाभद्र नाम के दो देव हैं। हारसमुद्र में हारवर और हारवर-महावर नाम के दो महर्द्धिक देव हैं। हारवरद्वीप में हारवरभद्र और हारवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव हैं। हारवरोदसमुद्र में हारवर और हारवरमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव है। हारवरावभासद्वीप में हारवरावभासभद्र और हारवरावभासमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव है। हारवरावभासोदसमुद्र में हारवरावभासवर और हारवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं।

इस तरह आगे सर्वत्र त्रिप्रत्यवतार और देवों के नाम उद्भावित कर लेने चाहिए। द्वीपों के नामों के साथ भद्र और महाभद्र शब्द लगाने से एवं समुद्रों के नामों के साथ "वर" शब्द लगाने से उन द्वीपों और समुद्रों के देवों के नाम बन जाते है यावत् १-सूर्यद्वीप, २-सूर्यसमुद्र, ३. सूर्यवरद्वीप, ४. सूर्यवरसमुद्र, ५. सूर्यवराभासद्वीप और ६. सूर्यवरावभाससमुद्र में क्रमशः १. सूर्यभद्र और सूर्यमहाभद्र, २. सूर्यवर और सूर्यमहावर, ३. सूर्यवरभद्र और सूर्यवरमहाभद्र, ४. सूर्यवरवर और सूर्यवरमहावर, ५. सूर्यवरावभासभद्र और सूर्यवरावभासमहाभद्र, ६. सूर्यवरावभासवर और सूर्यवरावभासमहावर नाम के देव रहते हैं।

क्षोदवरद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण तक के द्वीप और समुद्रों में वापिकाएं यावत् बिलपंक्तियां इक्षुरस जैसे जल से भरी हुई हैं और जितने भी पर्वत हैं, वे सब सर्वात्मना वज्रमय हैं।

१८५. (ई) देवदीवे दीवे दो देवा महिड्डिया देवभद्द-देवमहाभद्दा एत्थ०। देवोदे समुद्दे देववर-देवमहावरा एत्थ० जाव सयंभूरमणे दीवे सयंभूरमणभद्द-सयंभूरमणमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया।

सयंभूरमणं णं दीवं सयंभूरमणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं जाव अट्ठो ?

गोयमा ! सयंभूरमणोदए उदए अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते। सयंभूरमणवर-सयंभूरमणमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया सेसं तहेव असंखेज्जाओ तारागण-कोडिकोडीओ सोभेंसु वा।

१८५. (ई) देवद्वीप नामक द्वीप में दो महर्द्धिक देव रहते हैं—देवभद्र और देवमहाभद्र। देवोदसमुद्र में दो महर्द्धिक देव हैं—देववर और देवमहावर यावत् स्वयंभूरमणद्वीप में दो महर्द्धिक देव रहते हैं—स्वयंभूरमणभद्र और स्वयंभूरमणमहाभद्र।

स्वयंभूरमणद्वीप को सब ओर से घेरे हुए स्वयंभूरमणसमुद्र अवस्थित है, जो गोल है और वलयाकार रहा हुआ है यावत् असंख्यात लाख योजन उसकी परिधि है यावत् वह स्वयंभूरमणसमुद्र क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! स्वयंभूरमणसमुद्र का पानी स्वच्छ है, पथ्य है, जात्य-निर्मल है, हल्का है, स्फटिकमणि की कान्ति जैसा है और स्वाभाविक जल के रस से परिपूर्ण है। यहां स्वयंभूरमणवर और स्वयंभूरमणमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष कथन पूर्ववत् कहना चाहिए। यहां असंख्यात कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, होते हैं और होंगे।

विवेचन—द्वीप-समुद्रों का क्रम सम्बन्धी वर्णन इस प्रकार है—पहला द्वीप जम्बूद्वीप है। इसको घेरे हुए लवणसमुद्र है। लवणसमुद्र को घेरे हुए धातकीखण्ड है। धातकीखण्ड को घेरे हुए कालोदसमुद्र है। कालोदसमुद्र को सब ओर से घेरे पुष्करवरद्वीप है। पुष्करवरद्वीप को घेरे हुए वरुणसमुद्र है। वरुणसमुद्र को घेरे हुए क्षीरवरद्वीप है। क्षीरवरद्वीप को घेरे हुए घृतोदसमुद्र है। घृतोदसमुद्र को घेरे हुए क्षोदवरद्वीप है। क्षोदवरद्वीप को घेरे हुए क्षोदोदकसमुद्र है। क्षोदोदकसमुद्र को घेरे हुए नंदीश्वरद्वीप है। नंदीश्वरद्वीप के बाद नंदीश्वरोदसमुद्र हैं। उसको घेरे हुए अरुण नामक द्वीप है, फिर अरुणोदसमुद्र है, फिर अरुणवरद्वीप, अरुणवरोदसमुद्र, अरुणवराभासद्वीप और अरुणवरावभाससमुद्र है। इस प्रकार अरुणद्वीप से त्रिप्रत्यवतार हुआ है। इन द्वीप समुद्रों के बाद जो शंख, ध्वज, कलश, श्रीवत्स आदि शुभ नाम हैं, उन नाम वाले द्वीप और समुद्र हैं। ये सब त्रिप्रत्यवतार वाले हैं। अपान्तराल में भुजगवर कुशवर और क्रौंचवर हैं तथा जितने भी हार-अर्धहार आदि शुभ नाम वाले आभरणों के नाम हैं, अजिन आदि जितने भी वस्त्र-नाम हैं, कोष्ठ आदि जितने भी गंधद्रव्यों के नाम हैं, जलरुह, चन्द्रोद्योत आदि जितने भी कमल के नाम हैं, तिलक आदि जितने भी वृक्ष-नाम हैं, पृथ्वी, शर्करा-वालुका, उप्पल, शिला आदि जितने भी ३६ प्रकार के पृथ्वी के नाम हैं, नौ निधियों और चौदह रत्नों के, चुल्लहिमवान् आदि वर्षधर पर्वतों के, पद्म महापद्म आदि ह्रदों के, गंगा-सिंधु आदि महानदियों के, अन्तरनदियों के, ३२ कच्छादि विजयों के, माल्यवन्त आदि वक्षस्कार पर्वतों के, सौधर्म आदि १२ कल्पों के, शक्र आदि दस इन्द्रों के, देवकुरु-उत्तरकुरु के, सुमेरुपर्वत के, शक्रादि सम्बन्धी आवास पर्वतों के, मेरुप्रत्यासन्न भवनपति आदि

के कूटों के, चुल्लहिमवान आदि के कूटों के, कृत्तिका आदि २८ नक्षत्रों के, चन्द्रों के और सूर्यों के जितने भी नाम हैं, उन नामों वाले द्वीप और समुद्र हैं। ये सब त्रिप्रत्यवतारवाले हैं। इसके बाद देवद्वीप देवोदसमुद्र है, अन्त के स्वयंभूरमणद्वीप और स्वयंभूरमणसमुद्र है।

जम्बूद्वीप आदि नामवाले द्वीपों की संख्या

१८६. (अ) केवइया णं भंते ! जंबुद्दीवा दीवा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा जंबुद्दीवा दीवा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता।

केवइया णं भंते ! लवणसमुद्दा समुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा लवणसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता। एवं धायइसंडावि। एवं जाव असंखेज्जा सूरदीवा नामधेज्जेहि य।

एगे देवे दीवे पण्णत्ते। एगे देवोदे समुद्दे पण्णत्ते। एगे नागे जक्खे भूए जाव एगे सयंभूरमणे दीवे, एगे सयंभूरमणसमुद्दे णामधेज्जेणं पण्णत्ते।

१८६. (अ) भगवन् जम्बूद्वीप नाम के कितने द्वीप है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नाम के असंख्यात द्वीप कहे गये हैं।

भगवन् ! लवणसमुद्र नाम के समुद्र कितने कहे गये हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र नाम के असंख्यात समुद्र कहे गये हैं। इसी प्रकार धातकीखण्ड नाम के द्वीप भी असंख्यात है यावत् सूर्यद्वीप नाम के द्वीप असंख्यात कहे गये हैं।

देवद्वीप नामक द्वीप एक ही है। देवोदसमुद्र भी एक ही है। इसी तरह नागद्वीप, यक्षद्वीप, भूतद्वीप, यावत् स्वयंभूरमणद्वीप भी एक ही है। स्वयंभूरमण नामक समुद्र भी एक है।

विवेचन—पूर्ववर्ती सूत्र में द्वीप-समुद्रों के क्रम का कथन किया गया है। उसमें अरुणद्वीप से लगाकर सूर्यद्वीप तक त्रिप्रत्यवतार (अरुण, अरुणवर, अरुणवरावभास, इस तरह तीन-तीन) का कथन किया गया है। इसके पश्चात् त्रिप्रत्यवतार नही है। सूर्यद्वीप के बाद देवद्वीप देवोदसमुद्र, नागद्वीप नागोदसमुद्र, यक्षद्वीप यक्षोदसमुद्र, इस प्रकार से यावत् स्वयंभूरमणद्वीप और स्वयंभूरमणसमुद्र है।

समुद्रों के उदकों का आस्वाद

१८६. (आ) लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स उदए आइले, रइले, लिंदे, लवणे, कडुए, अपेज्जे बहूणं दुप्पय-चउप्पय-मिग-पसु-पक्खि-सरिसवाणं णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं।

कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते !

गोयमा ! आसले पेसले कालए मासरासिवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते।

पुक्खरोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए पण्णत्ते ? गोयमा ! अच्छे, जच्चे, तणुए फालिहवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते।

वरुणोदस्स णं भंते० ? गोयमा ! से जहाणामए पत्तासवेइ वा, चोयासवेइ वा, खज्जूरसारेइ वा, सुपक्कखोयरसेइ वा, मेरएइ वा, काविसायणेइ वा, चंदप्पभाइ वा, मणसिलाइ वा, वरसीधूइ वा, वरवारुणीइ वा, अट्ठपिट्ठपरिणिट्ठियाइ वा, जंबूफलकालिया वरप्पसण्णा उक्कोसमयपत्ता ईसि उट्ठावलंबिणी, ईसितंबच्छिकरणी, ईसिवोच्छेयकरणी, आसला मासला पेसला वण्णेणं उववेया जाव णो इणट्ठे समट्ठे, वरुणोदए इत्तो इट्ठतरे चेव अस्साएणं पण्णत्ते ।

खीरोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! से जहाणामए चाउरंतचक्कवट्टिस्स चाउरक्के गोखीरे पज्जत्तमंदग्गिसुकड्ढिए आउत्तरखण्डमच्छंडिओववेए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं उववेए, भवे एयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! खीरोयस्स० एत्तो इट्ठयरे जाव अस्साएणं पण्णत्ते ।

घयोदस्स णं से जहाणामए सारइयस्स गोघयवरस्स मंडे सल्लइकण्णियारपुप्फवण्णाभे सुकड्ढिय-उदारसज्झवीसंदिए वण्णेणं उववेए जाव फासेण य उववेए—भवे एयारूवे ? णो इणट्ठे समट्ठे, एत्तो इट्ठयरो० ।

खोदोदस्स से जहाणामए उच्छूण जच्चपुंडयाण हरियालपिंडिएणं भेरंडुच्छणाण वा कालपेराणं तिभागनिव्वडियवाडगाणं बलवगणरजंतपरिगालियमित्ताणं जे य रसे होज्जा । वत्थपरिपूए चाउज्जातग-सुवासिए अहियपत्थे लहुए वण्णेणं उववेए जाव भवे एयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे, एत्तो इट्ठयरे० । एवं सेसगाणवि समुद्दाणं भेदो जाव सयंभूरमणस्स णवरि अच्छे जच्चे पत्थे जहा पुक्खरोदस्स ।

कइ णं भंते ! समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता, तं जहा—लवणोवे, वरुणोवे, खीरोदे, घओवए । कइ णं भंते ! समुद्दा पगईए उदगरसेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ समुद्दा पगईए उदगरसेणं पण्णत्ता, तं जहा—कालोए, पुक्खरोए, सयंभूरमणे । अवसेसा समुद्दा उस्सण्णं खोयरसा पण्णत्ता समणाउसो !

१८६. (आ) भगवन् लवणसमुद्र के पानी का स्वाद कैसा है ?

गौतम ! लवणसमुद्र का पानी मलिन, रजवाला, शैवालरहित चिरसंचित जल जैसा, खारा, कडुआ अतएव बहुसंख्यक द्विपद-चतुष्पद-मृग-पशु-पक्षी-सरीसृपों के लिए पीने योग्य नहीं है, किन्तु उसी जल में उत्पन्न और संवर्धित जीवों के लिये पेय है ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र के जल का आस्वाद कैसा है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के जल का आस्वाद पेशल (मनोज्ञ), मांसल (परिपुष्ट करनेवाला), काला, उड़द की राशि की कृष्णकांति जैसी कांतिवाला है और प्रकृति से अकृत्रिम रस वाला है ।

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र का जल स्वाद में कैसा है ?

गौतम ! वह स्वच्छ है, उत्तम जाति का है, हल्का है और स्फटिकमणि जैसी कांतिवाला और प्रकृति से अकृत्रिम रस वाला है ।

भगवन् ! वरुणोदसमुद्र का जल स्वाद में कैसा है ?

गौतम ! जैसे पत्रासव, त्वचासव, खजूर का सार, भली-भांति पकाया हुआ इक्षुरस होता है तथा मेरक-कापिशायन-चन्द्रप्रभा-मनः शिला-वरसीधु-वरवारुणी तथा आठ बार पीसने से तैयार की गई जम्बूफल-मिश्रित वरप्रसन्ना जाति की मदिराएं उत्कृष्ट नशा देने वाली होती हैं, ओठों पर लगते ही आनन्द देनेवाली, कुछ-कुछ आंखें लाल करनेवाली, शीघ्र नशा-उत्तेजना देने वाली होती हैं, जो आस्वाद्य, पुष्टिकारक एवं मनोज्ञ हैं, शुभ वर्णादि से युक्त हैं, उसके जैसा वह जल है। इस पर गौतम पूछते हैं कि क्या वह जल उक्त उपमाओं जैसा ही है ? इस पर भगवान् कहते हैं कि, "नहीं" यह बात ठीक नहीं है, इससे भी इष्टतर वह जल कहा गया है।

भगवन् ! क्षीरोदसमुद्र का जल आस्वाद में कैसा है ?

गौतम ! जैसे चातुरन्त चक्रवर्ती के लिए चतुःस्थान-परिणत गोक्षीर (गाय का दूध) जो मंदमंद अग्नि पर पकाया गया हो, आदि और अन्त में मिसरी मिला हुआ हो, जो वर्ण गंध रस और स्पर्श से श्रेष्ठ हो, ऐसे दूध के समान वह जल है। यह उपमामात्र है, वह जल इससे भी अधिक इष्टतर है।

घृतोदसमुद्र के जल का आस्वाद शरद्ऋतु के गाय के घी के मंड (सार-थर) के समान है जो सल्लकी और कनेर के फूल जैसा वर्णवाला है, भली-भाति गरम किया हुआ है, तत्काल निंतारा हुआ है तथा जो श्रेष्ठ वर्ण-गंध-रस-स्पर्श से युक्त है। यह केवल उपमामात्र है, इससे भी अधिक इष्ट घृतोदसमुद्र का जल है।

भगवन् ! क्षोदोदसमुद्र का जल स्वाद में कैसा है ?

गौतम ! जैसे भेरुण्ड देश में उत्पन्न जातिवंत उन्नत पोण्ड्रक जाति का ईख होता है जो पकने पर हरिताल के समान पीला हो जाता है, जिसके पर्व काले हैं, ऊपर और नीचे के भाग को छोड़कर केवल बिचले त्रिभाग को ही बलिष्ठ बैलों द्वारा चलाये गये यंत्र से रस निकाला गया हो, जो वस्त्र से छाना गया हो, जिसमें चतुर्जातक—दालचीनी, इलायची, केसर, कालीमिर्च—मिलाये जाने से सुगन्धित हो, जो बहुत पथ्य, पाचक और शुभ वर्णादि से युक्त हो—ऐसे इक्षुरस जैसा वह जल है। यह उपमामात्र है, इससे भी अधिक इष्ट क्षोदोदसमुद्र का जल है।

इसी प्रकार स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त शेष समुद्रों के जल का आस्वाद जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वह जल वैसा ही स्वच्छ, जातिवंत और पथ्य है जैसा कि पुष्करोद का जल है।

भगवन् ! कितने समुद्र प्रत्येक रस वाले कहे गये हैं ?

गौतम ! चार समुद्र प्रत्येक रसवाले हैं अर्थात् वैसा रस अन्य किसी दूसरे समुद्र का नहीं है। वे हैं—लवण, वरुणोद, क्षीरोद और घृतोद।

भगवन् ! कितने समुद्र प्रकृति से उदगरस वाले हैं ?

गौतम ! तीन समुद्र प्रकृति से उदग रसवाले हैं अर्थात् इनका जल स्वाभाविक पानी जैसा ही है। वे है—कालोद, पुष्करोद और स्वयंभूरमण समुद्र।

आयुष्मन् श्रमण ! शेष सब समुद्र प्रायः क्षोदरस (इक्षुरस) वाले कहे गये हैं।

१८७. कइ णं भंते ! समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे, कालोए, सयंभूरमणे। अवसेसा समुद्दा अप्पमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता समणाउसो !

लवणे णं भंते ! समुद्दे कइमच्छजाइकुलजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्त मच्छजाइकुलकोडीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

कालोए णं भंते ! समुद्दे कइ मच्छजाइ पण्णत्ता ?

गोयमा ! नवमच्छकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता। सयंभूरमणे णं भंते ! समुद्दे कइमच्छजाइ० ?

गोयमा ! अद्धतेरसमच्छजाइकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

लवणे णं भंते ! समुद्दे मच्छाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पंचजोयणसयाइं। एवं कालोए सत्तजोयणसयाइं। सयंभूरमणे जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जभागं उक्कोसेणं दस जोयणसयाइं।

१८७. भगवन् ! कितने समुद्र बहुत मत्स्य-कच्छपों वाले हैं ?

गौतम ! तीन समुद्र बहुत मत्स्य-कच्छपों वाले हैं, उनके नाम हैं—लवण, कालोद और स्वयंभूरमण समुद्र। आयुष्मन् श्रमण ! शेष सब समुद्र अल्प मत्स्य-कच्छपों वाले कहे गये हैं।

भगवन् ! कालोदसमुद्र में मत्स्यों की कितनी लाख जातिप्रधान कुलकोडियों की योनियां कही गई हैं ?

गौतम ! नव लाख मत्स्य-जातिकुलकोडी योनियां कही हैं।

भगवन् ! स्वयंभूरमणसमुद्र में मत्स्यों की कितनी लाख जातिप्रधान कुलकोडियों की योनियां हैं ?

गौतम ! साढे बारह लाख मत्स्य-जातिकुलकोडी योनियां हैं।

भगवन् ! लवणसमुद्र में मत्स्यों के शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी है ?

गौतम ! जघन्य से अंगुल का असंख्यात भाग और उत्कृष्ट पांच सौ योजन की उनकी अवगाहना है।

इसी तरह कालोदसमुद्र में (जघन्य अंगुल का असंख्यात भाग) उत्कृष्ट सात सौ योजन की अवगाहना है। स्वयंभूरमणसमुद्र में मत्स्यों की जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है।

१८८. केवइया णं भंते ! दीवसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावइया लोगे सुभा णामा सुभा वण्णा जाव सुभा फासा, एवइया दीवसमुद्दा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता।

केवइया णं भंते ! दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावइया अड्डाइज्जाणं सागरोवमाणं उद्धारसमया एवइया दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पण्णत्ता।

दीवसमुद्दा णं भंते ! किं पुढविपरिणामा आउपरिणामा जीवपरिणामा पोग्गलपरिणामा ?

गोयमा ! पुढवीपरिणामावि, आउपरिणामावि, जीवपरिणामावि, पोग्गलपरिणामावि।

दीवसमुद्देसु णं भंते ! सव्वपाणा, सव्वभूया, सव्वजीवा सव्वसत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववण्णपुव्वा ?

हंता गोयमा ! असइ अदुवा अणंतखुत्तो।

इति दीवसमुद्दा समत्ता।

१८८. भंते ! नामों की अपेक्षा द्वीप और समुद्र कितने नाम वाले हैं ?

गौतम ! लोक में जितने शुभ नाम हैं, शुभ वर्ण है यावत् शुभ स्पर्श हैं, उतने ही नामों वाले द्वीप और समुद्र है।

भंते ! उद्धारसमयों की अपेक्षा से द्वीप-समुद्र कितने है ?

गौतम ! अढाई सागरोपम के जितने उद्धारसमय है, उतने द्वीप और सागर हैं।

भगवन् ! द्वीप-समुद्र पृथ्वी के परिणाम है, अप् के परिणाम हैं, जीव के परिणाम हैं तथा पुद्गल के परिणाम हैं ?

गौतम ! द्वीप-समुद्र पृथ्वीपरिणाम भी है, जलपरिणाम भी है, जीवपरिणाम भी हैं और पुद्गलपरिणाम भी हैं।

भगवन् ! इन द्वीप-समुद्रों में सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्व पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय के रूप में पहले उत्पन्न हुए है क्या ?

गौतम ! हां, कईबार अथवा अनन्तबार उत्पन्न हो चुके है।

इस तरह द्वीप-समुद्र की वक्तव्यता पूर्ण हुई।

इन्द्रिय पुद्गल परिणाम

१८९. कइविहे णं भंते ! इंदियविसए पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे इंदियविसए पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियविसए जाव फासिंदियविसए।

सोइंदियविसए णं भंते ! पोग्गलपरिणामे कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुब्भिसद्दपरिणामे य दुब्भिसद्दपरिणामे य।

एवं चक्खिदियविसयादिएहिवि सुरूवपरिणामे य दुरूवपरिणामे य। एवं सुरभिगंधपरिणामे य दुरभिगंधपरिणामे य। एवं सुरसपरिणामे य दुरसपरिणामे य। एवं सुफासपरिणामे य दुफासपरिणामे य।

से नूणं भंते ! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु उच्चावएसु रूवपरिणामेसु एवं गंधपरिणामेसु रसपरिणामेसु फासपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया ? हंता गोयमा ! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया।

से नूणं भंते ! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति ? हंता गोयमा ! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति।

से नूणं भंते ! सुरूवा पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति ? हंता गोयमा ! एवं सुब्भिगंधा पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति, दुब्भिगंधा पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति ? हंता गोयमा ! एवं सुफासा दुफासत्ताए० ? सुरसा दुरसत्ताए० ? हंता गोयमा !

१८९. भगवन् ! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का है ?

गौतम ! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलपरिणाम पांच प्रकार का है, यथा—श्रोत्रेन्द्रिय का विषय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय का विषय।

भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का है ?

गौतम ! दो प्रकार का है—शुभ शब्दपरिणाम और अशुभ शब्दपरिणाम। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय आदि के विषयभूत पुद्गलपरिणाम भी दो-दो प्रकार के हैं—यथा सुरूपपरिणाम और कुरूपपरिणाम, सुरभिगंधपरिणाम और दुरभिगंधपरिणाम, सुरसपरिणाम एवं दुरसपरिणाम और सुस्पर्शपरिणाम एवं दुःस्पर्शपरिणाम।

भगवन् ! उत्तम अधम शब्दपरिणामों में, उत्तम-अधम रूपपरिणामों में, इसी तरह गंधपरिणामों में, रसपरिणामों में और स्पर्शपरिणामों में परिणत होते हुए पुद्गल परिणत होते हैं—बदलते हैं—ऐसा कहा जा सकता है क्या ? (अवस्था के बदलने से वस्तु का बदलना कहा जा सकता है क्या?)

हां, गौतम ! उत्तम-अधम रूप में बदलने वाले शब्दादि परिणामों के कारण पुद्गलों का बदलना कहा जा सकता है। (पर्यायों के बदलने पर द्रव्य का बदलना कहा जा सकता है।)

भगवन् ! क्या उत्तम शब्द अधम शब्द के रूप में बदलते हैं ? अधम शब्द उत्तम शब्द के रूप में बदलते हैं क्या ?

गौतम ! उत्तम शब्द अधम शब्द के रूप में और अधम शब्द उत्तम शब्द के रूप में बदलते हैं।

भगवन् ! क्या शुभ रूप वाले पुद्गल अशुभ रूप में और अशुभ रूप के पुद्गल शुभ रूप में बदलते हैं ?

हां, गौतम ! बदलते हैं। इसी प्रकार सुरभिगंध के पुद्गल दुरभिगंध के रूप में और दुरभिगंध के पुद्गल सुरभिगंध के रूप में बदलते हैं। इसी प्रकार शुभस्पर्श के पुद्गल अशुभस्पर्श के रूप में और अशुभस्पर्श वाले शुभस्पर्श के रूप में तथा इसी तरह शुभरस के पुद्गल अशुभरस के रूप में और अशुभरस के पुद्गल शुभरस में परिणत हो सकते हैं।

देवशक्ति सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

१९०. देवे णं भंते ! महिड्ढिए जाव महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खवित्ता पभू तमेव अणुपरियट्टित्ताणं गिण्हित्तए ? हंता पभू ! से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ देवे णं भंते ! महिड्ढिए जाव गिण्हित्तए ?

गोयमा ! पोग्गले खित्तेसमाणे पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता तओ पच्छा मंदगई भवइ, देवे णं महिड्ढिए जाव महाणुभागे पुव्वंपि पच्छावि सिग्घे सिग्घगई (तुरिए तुरियगई) चेव, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव अणुपरियत्ताणं गेण्हित्तए।

देवे णं भंते ! महिड्ढिए बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पुव्वामेव बालं अच्छित्ता अभित्ता पभू गंठित्तए ? नो इणट्ठे समट्ठे।

देवे णं भंते ! महिड्ढिए बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पुव्वामेव बालं अच्छित्ता अभित्ता पभू गंठित्ता ? नो इणट्ठे समट्ठे।

देवे णं भंते ! महिड्ढिए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पुव्वामेव बालं अछेत्ता अभेत्ता पभू गंठित्तए ? हंता पभू। तं चेव णं गंठिं छउमत्थे ण जाणइ, ण पासइ, एवं सुहुमं च णं गंठिया।

देवे णं भंते ! महिड्ढिए पुव्वामेव बालं अच्छेत्ता अभेत्ता पभू दीहीकरित्तए वा हस्सीकरित्तए वा ? नो इणट्ठे समट्ठे। एवं चत्तारिवि गमा, पढमबिइयभंगेसु अपरियाइत्ता एगंतरियगा अच्छेत्ता, अभेत्ता सेसं तदेव। तं चेव सिद्धं छउमत्थे ण जाणइ, ण पासइ। एवं सुहुमं च णं दीहीकरेज्ज वा हस्सीकरेज्ज वा।

१९०. भगवन् ! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव (अपने गमन से) पहले किसी वस्तु को फेंके और फिर वह गति करता हुआ उस वस्तु को बीच में ही पकड़ना चाहे तो वह ऐसा करने में समर्थ है ?

हां, गौतम ! वह ऐसा करने में समर्थ है।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि वह वैसा करने में समर्थ है ?

गौतम ! फेंकी गई वस्तु पहले शीघ्रगति वाली होती है और बाद में उसकी गति मन्द हो जाती है, जबकि उस महर्द्धिक और महाप्रभावशाली देव की गति पहले भी शीघ्र होती है और बाद में भी शीघ्र होती है, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि वह देव उस वस्तु को पकड़ने में समर्थ है।

भगवन् ! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना और किसी बालक को पहले छेदे-भेदे बिना उसके शरीर को सांधने में समर्थ है क्या ?

नहीं, गौतम ! ऐसा नहीं हो सकता ?

भगवन् ! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके परन्तु बालक के शरीर को पहले छेदे-भेदे बिना उसे सांधने में समर्थ है क्या ?

नहीं गौतम ! वह समर्थ नहीं है।

भगवन् ! कोई महर्द्धिक एवं महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण कर और बालक के शरीर को पहले छेद-भेद कर फिर उसे सांधने में समर्थ है क्या ?

हां, गौतम ! वह ऐसा करने में समर्थ है। वह ऐसी कुशलता से उसे सांधता है कि उस संधि-ग्रन्थि को छद्मस्थ न देख सकता है और न जान सकता है। ऐसी सूक्ष्म ग्रन्थि वह होती है।

भगवन् ! कोई महर्द्धिक देव (बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना) पहले बालक को छेदे-भेदे बिना बड़ा या छोटा करने में समर्थ है क्या ?

गौतम ! ऐसा नहीं हो सकता। इस प्रकार चारों भंग कहने चाहिए। प्रथम द्वितीय भंगों में बाह्य पुद्गलों का ग्रहण नहीं है और प्रथम भंग में बाल-शरीर का छेदन-भेदन भी नहीं है। द्वितीय भंग में छेदन-भेदन है। तृतीय भंग में बाह्य पुद्गलों का ग्रहण करना और बाल-शरीर का छेदन-भेदन करना नहीं है। चौथे भंग में बाह्य पुद्गलों का ग्रहण भी है और पूर्व में बाल-शरीर का छेदन-भेदन भी है।

इस छोटे-बड़े करने की सिद्धि को छद्मस्थ नहीं जान सकता और नहीं देख सकता। ह्रस्वी-करण और दीर्घीकरण की यह विधि बहुत सूक्ष्म होती है।

ज्योतिष्क चन्द्र-सूर्याधिकार

१९१. अत्थि णं भंते ! चंदिमसूरियाणं हिट्ठिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि, समंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि, उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि ?

हंता, अत्थि।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थि णं चंदिमसूरियाणं जाव उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि, तुल्लावि ?

गोयमा ! जहा जहा णं तेसिं देवाणं तव-नियम-बंभचेर-वासाइं उक्कडाइं उस्सियाइं भवंति तहा तहा णं तेसिं देवाणं एवं पण्णायइ अणुत्ते वा तुल्ले वा। से एएणट्ठेणं गोयमा ! अत्थि णं चंदिमसूरियाणं उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि०।

एगमेगस्स णं चंदिम-सूरियस्स,

अट्ठासीइं च गहा, अट्ठावीसं च होइ नक्खत्ता।
एक्क ससीपरिवारो एत्तो ताराणं वोच्छामि ॥१॥
छावट्ठि सहस्साइं नव चेव सयाइं पंच सयराइं।
एक्क ससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं ॥२॥

१९१. भगवन् ! चन्द्र और सूर्यों के क्षेत्र की अपेक्षा नीचे रहे हुए जो तारा रूप देव हैं, वे क्या (द्युति, वैभव, लेश्या आदि की अपेक्षा) हीन भी हैं और बराबर भी हैं ? चन्द्र-सूर्यों के क्षेत्र की समश्रेणी में रहे हुए तारा रूप देव, चन्द्र-सूर्यों से द्युति आदि में हीन भी हैं और बराबर भी हैं ? तथा

ज़ो तारा रूप देव चन्द्र और सूर्यों के ऊपर अवस्थित हैं, वे द्युति आदि की अपेक्षा हीन भी हैं और बराबर भी है ?

हां, गौतम ! कोई हीन भी है और कोई बराबर भी हैं।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि कोई तारादेव हीन भी हैं और कोई तारा-देव बराबर भी हैं ?

गौतम ! जैसे-जैसे उन तारा रूप देवों के पूर्वभव में किये हुए नियम और ब्रह्मचर्यादि में उत्कृष्टता या अनुत्कृष्टता होती है, उसी अनुपात में उनमें अणुत्व या तुल्यत्व होता है। इसलिए गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि चन्द्र-सूर्यों के नीचे, समश्रेणी में या ऊपर जो तारा रूप देव हैं वे हीन भी हैं और बराबर भी हैं।

प्रत्येक चन्द्र और सूर्य के परिवार में (८८) अठ्यासी ग्रह, अट्ठावीस (२८) नक्षत्र होते हैं और ताराओं की संख्या छियासठ हजार नो सौ पचहत्तर (६६९७५) कोडाकोडी होती है।

१९२. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ केवइयं अबाहाए जोइसं चारं चरइ ?

गोयमा ! एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ; एवं दक्खिणि-ल्लाओ पच्चत्थिमिल्लाओ उत्तरिल्लाओ एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ।

लोगंताओ णं भंते ! केवइयं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एक्कारसहिं एक्कारेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ केवइयं अबाहाए सव्वहेट्ठिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ? केवइयं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ ? केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ ? केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ?

गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभापुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तहिं णउएहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं सव्वहेट्ठिल्ले ताराख्वे चारं चरइ। अट्ठहिं जोयणसएहिं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ। अट्ठहिं असीएहिं जोयणसएहिं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ। नवहिं जोयणसएहिं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ।

सव्वहेट्ठिमिल्लाओ णं भंते ! ताराख्वाओ केवइयं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ ? केवइयं चंदविमाणे चारं चरइ ? केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ?

गोयमा ! सव्वहेट्ठिल्लाओ णं दसहिं जोयणेहिं सूरविमाणे चारं चरइ। णउइए जोयणेहिं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ। दसुत्तरे जोयणसए अबाहाए सव्वोवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ।

सूरविमाणाओ भंते ! केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ ? केवइयं सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ?

गोयमा ! सूरविमाणाओ णं असीए जोयणेहिं चंदविमाणे चारं चरइ। जोयणसए अबाहाए सव्वोवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ।

चंदविमाणाओ णं भंते ! केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ?

गोयमा ! चंदविमाणाओ णं वीसाए जोयणेहिं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ। एवामेव सपुव्वावरेणं दसुत्तरसयजोयणबाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोइसविसए पण्णत्ते।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कयरे णक्खत्ते सव्वब्भितरिल्लं चारं चरंति ? कयरे णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ ? कयरे णक्खत्ते सव्वउवरिल्लं चारं चरइ ? कयरे णक्खत्ते सव्वब्भितरिल्लं चारं चरइ ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे अभीइनक्खत्ते सव्वब्भितरिल्लं चारं चरइ, मूले नक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ, साइणक्खत्ते सव्वोवरिल्लं चारं चरइ, भरणीनक्खत्ते सव्वहेट्ठिल्लं चारं चरइ।

१९७. भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत के पूर्व चरमान्त से ज्योतिष्कदेव कितनी दूर रहकर उसकी प्रदक्षिणा करते है ?

गौतम ! ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजन दूरी से प्रदक्षिणा करते है। इसी तरह दक्षिण चरमान्त से, पश्चिम चरमान्त से और उत्तर चरमान्त से भी ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूरी से प्रदक्षिणा करते हैं।

भगवन् ! लोकान्त से कितनी दूरी पर ज्योतिष्कचक्र कहा गया है ?

गौतम ! ग्यारह सौ ग्यारह (११११) योजन पर ज्योतिष्कचक्र है।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से कितनी दूरी पर सबसे निचला तारारूप गति करता है ? कितनी दूरी पर सूर्यविमान गति करता है ? कितनी दूरी पर चन्द्रविमान चलता है ? कितनी दूरी पर सबसे ऊपरवर्ती तारा चलता है ?

गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से ७९० योजन दूरी पर सबसे निचला तारा गति करता है। आठ सौ (८००) योजन दूरी पर सूर्यविमान चलता है। आठ सौ अस्सी (८८०) योजन पर चन्द्रविमान चलता है। नौ सौ (९००) योजन दूरी पर सबसे ऊपरवर्ती तारा गति करता है।

भगवन् ! सबसे निचले तारा से कितनी दूर सूर्य का विमान चलता है ? कितनी दूरी पर चन्द्र का विमान चलता है ? कितनी दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है ?

गौतम ! सबसे निचले तारा से दस योजन दूरी पर सूर्यविमान चलता है, नब्बे योजन दूरी पर चन्द्रविमान चलता है। एक सौ दस योजन दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है।

भगवन् ! सूर्यविमान से कितनी दूरी पर चन्द्रविमान चलता है ? कितनी दूरी पर सर्वोपरि तारा चलता है ?

गौतम ! सूर्यविमान से अस्सी योजन की दूरी पर चन्द्रविमान चलता है और एक सौ योजन ऊपर सर्वोपरि तारा चलता है।

भगवन् ! चन्द्रविमान से कितनी दूरी पर सबसे उपर का तारा गति करता है ?

गौतम ! चन्द्रविमान से बीस योजन दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है। इस प्रकार सब मिलाकर एक सौ दस योजन के बाहल्य (मोटाई) में तिर्यग्दिशा में असंख्यात योजन पर्यन्त ज्योतिष्कचक्र कहा गया है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कौन-सा नक्षत्र सब नक्षत्रों के भीतर, बाहर मण्डलगति से तथा ऊपर, नीचे विचरण करता है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में अभिजित् नक्षत्र सबसे भीतर रहकर मण्डलगति से परिभ्रमण करता है। मूल नक्षत्र सब नक्षत्रों से बाहर रहकर मण्डलगति से परिभ्रमण करता है। स्वाति नक्षत्र सब नक्षत्रों से ऊपर रहकर चलता है और भरणी नक्षत्र सबसे नीचे मण्डलगति से विचरण करता है।[1]

१९३. चंदविमाणे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिए सव्वफालियामए अब्भुग्गयमूसियपहसिए] पण्णओ। एवं सूरविमाणेवि गहविमाणेवि नक्खत्तविमाणेवि ताराविमाणेवि अद्धकविट्ठसंठाणसंठिए।

चंदविमाणे णं भंते ! केवइयं आयाम-विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं ? केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! छप्पन्ने एकसट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अट्ठावीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते।

सूरविमाणस्स सच्चेव पुच्छा ?

गोयमा ! अडयालीसं एकसट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, चउवीसं एकसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते।

एवं गहविमाणेवि अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं कोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

नक्खत्तविमाणे णं कोसं आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

ताराविमाने अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं पंचधणुसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

१९३. भगवन् ! चन्द्रमा का विमान किस आकार का है ?

गौतम ! चन्द्रविमान अर्धकबीठ के आकार का है। वह चन्द्रविमान सर्वात्मना स्फटिकमय है, इसकी कान्ति सब दिशा-विदिशा में फैलती है, जिससे यह श्वेत, प्रभासित है (मानो अन्य का उपहास कर रहा हो) इत्यादि विशेषणों का वर्णन करना चाहिए। इसी प्रकार सूर्यविमान भी, ग्रहविमान भी और ताराविमान भी अर्धकबीठ आकार के हैं।

---

१. सव्वब्भितराऽभीई, मूलो पुण सव्व बाहिरो होई।
सव्वोवरिं तु साई भरणी पुण सव्व हेट्ठिलिया ॥ १ ॥

भगवन् ! चन्द्रविमान का आयाम-विष्कंभ कितना है ? परिधि कितनी है ? और बाहल्य (मोटाई) कितना है ?

गौतम ! चन्द्रविमान का आयाम-विष्कंभ (लम्बाई-चौड़ाई) एक योजन के ६१ भागों में से ५६ भाग ($\frac{५६}{६१}$) प्रमाण है। इससे तीन गुणी से कुछ अधिक उसकी परिधि है। एक योजन के ६१ भागों में से २८ भाग ($\frac{२८}{६१}$) प्रमाण उसकी मोटाई है।

सूर्यविमान के विषय में भी वैसा ही प्रश्न किया है।

गौतम ! सूर्यविमान एक योजन के ६१ भागों में से ४८ भाग प्रमाण लम्बा-चौड़ा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक उसकी परिधि और एक योजन के ६१ भागों में से २४ भाग ($\frac{२४}{६१}$) प्रमाण उसकी मोटाई है।

ग्रहविमान आधा योजन लम्बा-चौड़ा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक परिधि वाला और एक कोस की मोटाई वाला है।

नक्षत्रविमान एक कोस लम्बा-चौड़ा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक परिधि वाला और आधे कोस की मोटाई वाला है।

ताराविमान आधे कोस की लम्बाई-चौड़ाई वाला, इससे तिगुनी से कुछ अधिक परिधि वाला और पांच सौ धनुष की मोटाई वाला है।

विवेचन—इस सूत्र में चन्द्रादि विमानों का आकार आधे कवीठ के आकार के समान बतलाया गया है। यहां यह शंका हो सकती है कि जब चन्द्रादि का आकार अर्धकवीठ जैसा हो तो उदय के समय, पौर्णमासी के समय जब वह तिर्यक् गमन करता है तब उस आकार का क्यों नहीं दिखाई देता है ? इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि—यहां रहने वाले पुरुषों द्वारा अर्धकपित्थाकार वाले चन्द्रविमान की केवल गोल पीठ ही देखी जाती है; हस्तामलक की तरह उसका समतल भाग नहीं देखा जाता। उस पीठ के ऊपर चन्द्रदेव का महाप्रासाद है जो दूर रहने के कारण चर्मचक्षुओं द्वारा साफ-साफ दिखाई नहीं देता।[1]

१९४. (अ) चंदविमाणं णं भंते ! कइ देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

गोयमा ! (सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति) चंदविमाणस्स णं पुरच्छिमेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमलनिम्मल-दहिघणगोखीर-फेणरययनिरप्पगासाणं महुगुलियपिंगलक्खाणं थिरलट्ठ-पउट्ठवट्टपीवरसुसिलिट्ठसुविसिट्ठतिक्खदाढाविडंबियमुहाणं रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहाणं (पसत्थसत्थवेरुलियभिसंतकक्कडनहाणं) विसालपीवरोरु-पडिपुण्णविउल-खंधाणं मिउविसय-पसत्थ-सहुमलक्खण-विच्छिण्ण-केसरसडोवसोभियाणं चंकमियललियपुलितधवलगव्वियगईणं उस्सिय

१. अद्धकविट्ठागारा उदयत्थमणम्मि कहं न दीसंति ?
ससिसूराण विमाणा तिरियखेत्तट्ठियाणं च ॥
उत्ताणद्धकविट्ठागारं पीठं तदुवरिं च पासाओ।
वट्टालेखेण ततो समवट्टं दूरभावाओ ॥

सुणिम्मियसुजाय-अप्फोडिय-णंगूलाणं वइरामयणक्खाणं वइरामयदंताणं वइरामयदाढाणं तवणिज्ज-जीहाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरियपुरिसकारपरक्कमाणं महया अप्फोडिय-सीहनाइय-बोल-कलकलरवेणं महुरेणं मणहरेण य पूरिता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरू-वधारिणं देवाणं पुरच्छिमिल्लं बाहं परिवहंति ।

१९४. (अ) भगवन् ! चन्द्रविमान को कितने हजार देव वहन करते है ?

गौतम ! सोलह हजार देव चन्द्रविमान को वहन करते है । उनमें से चार हजार देव सिंह का रूप धारण कर पूर्वदिशा से उठाते है । उन सिंहों का रूपवर्णन इस प्रकार है—वे श्वेत हैं, सुन्दर है, श्रेष्ठ कांति वाले हैं, शंख के तल के समान विमल और निर्मल तथा जमे हुए दही, गाय का दूध, फेन चांदी के निकर (समूह) के समान श्वेत प्रभा वाले है, उनकी आंखें शहद की गोली के समान पीली हैं, उनके मुख में स्थित सुन्दर प्रकोष्ठों से युक्त गोल, मोटी, परस्पर जुड़ी हुई विशिष्ट और तीखी दाढ़ाएं हैं, उनके तालु और जीभ लाल कमल के पत्ते के समान मृदु एवं सुकोमल हैं, उनके नख प्रशस्त और शुभ वैडूर्यमणि की तरह चमकते हुए और कर्कश हैं, उनके उरु विशाल और मोटे है, उनके कंधे पूर्ण और विपुल हैं, उनके गले की केसर-सटा मृदु विशद (स्वच्छ) प्रशस्त सूक्ष्म लक्षणयुक्त और विस्तीर्ण है, उनकी गति चंक्रमणों-लीलाओं और उछलने-कूदने से गर्वभरी (मस्तानी) और साफ-सुथरी होती है, उनकी पूछें ऊँची उठी हुईं, सुनिर्मित-सुजात और फटकारयुक्त होती हैं । उनके नख वज्र के समान कठोर हैं, उनके दांत वज्र के समान मजबूत हैं, उनकी दाढ़ाएं वज्र के समान सुदृढ़ हैं, तपे हुए सोने के समान उनकी जीभ है, तपनीय सोने की तरह उनके तालु हैं, सोने के जोतों से वे जोते हुए है । ये इच्छानुसार चलने वाले हैं, इनकी गति प्रीतिपूर्वक होती है, ये मन को रुचिकर लगने वाले हैं, मनोरम हैं, मनोहर हैं, इनकी गति अमित-अवर्णनीय है (चलते-चलते थकते नहीं), इनका बल-वीर्य-पुरुषकारपराक्रम अपरिमित है । ये जोर-जोर से सिंहनाद करते हुए और उस सिंहनाद से आकाश और दिशाओं को गु जाते हुए और;सुशोभित करते हुए चलते रहते है । (इस प्रकार चार हजार देव सिंह का रूप धारण कर चन्द्रविमान को पूर्वदिशा की ओर से वहन करते चलते हैं ।)

१९४. (आ) चंदविमाणस्स णं दक्खिणेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमल-निम्मलदधिघणगोखीरफेणरययणियरप्पगासाणं [वइरामयकु भजुयलसुट्ठियपीवरवरवइरसोंडवट्टियदित्त-सुरत्तपउमप्पगासाणं अब्भुण्णयमुहाणं तवणिज्जविसालचंचल-चलंतचवलकण्णविमलुज्जलाणं मधुवण्णभिसंतणिद्धपिंगलपत्तलतिवण्णमणिरयणलोयणाणं अब्भुग्गयमउलमल्लियाणं धवल-सरिस-संठिय-णिव्वणदढकसिण-फालियामयसुजायदंत-मुसलोवसोभियाणं कंचणकोसीपविट्ठदंतग्गविमल-मणिरयणरुइरपेरंतचित्तरूवगविरायाणं तवणिज्ज-विसालतिलगपमुहपरिमंडियाणं णाणामणिरयण-मुद्धगेवेज्जबद्ध-गलयवर-भूसणाणं वेरुलियविचित्त-दंडणिम्मलवइरामयतिक्खलट्ठअंकुसकु भजुयलंतरो-दियाणं तवणिज्जसुबद्धकच्छदप्पियबलुद्धराणं जंबूणयविमलघणमंडलवइरामयलालाललिय-ताल-णाणा-मणिरयणघंटपासगरययामय-रज्जुबद्धलंबितघंटाजुयलमहुरसरमणहराणं अल्लीण-पमाण जुत्त वट्टिय-सुजायलक्खण-पसत्थतवणिज्जवालगत्तपरिपुच्छणाणं उवचिय-पडिपुण्ण-कुम्म-चलण-लहु-विक्कमाणं अंकामयणक्खाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाणं

पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरिय-पुरिसकार-परक्कमाणं महया गंभीरगुलगुलाइरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ गयरूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंति।

१९४ (आ) उस चन्द्रविमान को दक्षिण की तरफ से चार हजार देव हाथी का रूप धारण कर उठाते वहन करते हैं। उन हाथियों का वर्णन इस प्रकार है—वे हाथी श्वेत हैं, सुन्दर हैं, सुप्रभा वाले हैं। उनकी कांति शंखतल के समान विमल-निर्मल है, जमे हुए दही की तरह, गाय के दूध, फेन और चांदी के निकर की तरह उनकी कान्ति श्वेत है। उनके वज्रमय कुम्भ-युगल के नीचे रही हुई सुन्दर मोटी सूंड में जिन्होंने क्रीडार्थ रक्तपद्मों के प्रकाश को ग्रहण किया हुआ है (कहीं-कहीं ऐसा देखा जाता है कि जब हाथी युवावस्था में वर्तमान रहता है तो उसके कुंभस्थल से लेकर शुण्डादण्ड तक स्वतः ही पद्मप्रकाश के समान बिन्दु उत्पन्न हो जाया करते हैं—उसका यहां उल्लेख है) उनके मुख ऊंचे उठे हुए हैं, वे तपनीय स्वर्ण के विशाल, चंचल और चपल हिलते हुए विमल कानों से सुशोभित हैं, शहद वर्ण के चमकते हुए स्निग्ध पीले और पक्ष्मयुक्त तथा मणिरत्न की तरह त्रिवर्ण श्वेत कृष्ण पीत वर्ण वाले उनके नेत्र हैं, अतएव वे नेत्र उन्नत मृदुल मल्लिका के कोरक जैसे प्रतीत होते हैं, उनके दांत सफेद, एक सरीखे, मजबूत, परिणत अवस्था वाले, सुदृढ, सम्पूर्ण एवं स्फटिकमय होने से सुजात हैं और मूसल की उपमा से शोभित हैं, इनके दांतों के अग्रभाग पर स्वर्ण के वलय पहनाये गये हैं अतएव ये दांत ऐसे मालूम होते हैं मानो विमल मणियों के बीच चांदी का ढेर हों। इनके मस्तक पर तपनीय स्वर्ण के विशाल तिलक आदि आभूषण पहनाये हुए हैं, नाना मणियों से निर्मित ऊर्ध्व ग्रैवेयक आदि कंठ के आभरण गले में पहनाये हुए हैं। जिनके गण्डस्थलों के मध्य में वैडूर्यरत्न के विचित्र दण्ड वाले निर्मल वज्रमय तीक्ष्ण एवं सुन्दर अंकुश स्थापित किये हुए हैं। तपनीय स्वर्ण की रस्सी से पीठ का आस्तरण—झूले बहुत ही अच्छी तरह सजाकर एवं कसकर बांधा गया है अतएव ये दर्प से युक्त और बल से उद्धत बने हुए हैं, जम्बूनद स्वर्ण के बने घनमंडल वाले और वज्रमय लाला से ताडित तथा आसपास नाना मणिरत्नों की छोटी-छोटी घंटिकाओं से युक्त रत्नमयी रज्जु में लटके दो बड़े घंटों के मधुर स्वर से वे मनोहर लगते हैं। उनकी पूंछें चरणों तक लटकती हुई हैं, गोल हैं तथा उनमें सुजात और प्रशस्त लक्षण वाले बाल हैं जिनसे वे हाथी अपने शरीर को पोंछते रहते हैं। मांसल अवयवों के कारण परिपूर्ण कच्छप की तरह उनके पांव होते हुए भी वे शीघ्र गति वाले हैं। अंकरत्न के उनके नख हैं, तपनीय स्वर्ण के जोतों द्वारा वे जोते हुए हैं। वे इच्छानुसार गति करने वाले हैं, प्रीतिपूर्वक गति करने वाले हैं, मन को अच्छे लगने वाले हैं, मनोरम हैं, मनोहर हैं, अपरिमित गति वाले हैं, अपरिमित बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रम वाले हैं। अपने बहुत गंभीर एवं मनोहर गुलगुलाने की ध्वनि से आकाश को पूरित करते हैं और दिशाओं को सुशोभित करते हैं। (इस प्रकार चार हजार हाथी रूपधारी देव चन्द्रविमान को दक्षिणदिशा से उठाकर गति करते रहते हैं।)

१९४. (इ) चंदविमाणस्स णं पच्चत्थिमेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं चंकमियललियपुलिय-चलचवलककुदसालीणं सण्णयपासाणं संगतपासाणं सुजायपासाणं मियमाइयपीणरइयपासाणं झसविहग-सुजायकुच्छीणं पसत्थणिद्धमधुगुलियभिसंतपिंगलक्खाणं विसालपीवरोरुपडिपुण्णविउलखंधाणं वट्टपडि-पुण्णविउलकवोलकलियाणं घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णतइसिआणयवसभोट्ठाणं चंकमियललियपुलियचक्क-वालचवलगव्वियगईणं पीणपीवरवट्टियसुसंठियकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमाणजुत्तपसत्थरमणिज्ज-

वालगंडाणं समखुरवालधाणीणं समलिहियतिक्खग्गसिंगाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छविधराणं उवचियमंसलविसालपडिपुण्णखुद्दपमुहपुंडराणं (खंधपएसे सुंदराणं) वेरुलियभिसंतकडक्खसुनिरिक्ख-णाणं जुत्तप्पमाणप्पहाणलक्खणपसत्थरमणिज्जगग्गरगलसोभियाणं घग्घरगसुबद्धकंठपरिमंडियाणं नानामणिकणगरयणघंटवेयच्छगसुकयरइयमालियाणं वरघंटागलगलियसोभंतसस्सिरीयाणं पउमुप्पल-सगलसुरभिमालाविभूसियाणं वइरखुराणं विविहखुराणं फलियामयदंताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्ज-तालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरियपुरिसकारपरक्कमाणं महया गंभीरगज्जियरवेणं महुरेणं मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ वसभरूवधारीणं देवाणं पच्चत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति ।

१९४. (इ) उस चन्द्रविमान को पश्चिमदिशा की ओर से चार हजार बैलरूपधारी देव उठाते है। उन बैलों का वर्णन इस प्रकार है—

वे श्वेत हैं, सुन्दर लगते हैं, उनकी कांति अच्छी है, उनके ककुद (स्कंध पर उठा हुआ भाग) कुछ कुछ कुटिल हैं, ललित (विलासयुक्त) और पुष्ट हैं तथा दोलायमान हैं, उनके दोनों पार्श्वभाग सम्यग् नीचे की ओर झुके हुए हैं, सुजात हैं, श्रेष्ठ है, प्रमाणोपेत हैं, परिमित मात्रा में ही मोटे होने से सुहावने लगने वाले हैं, मछली और पक्षी के समान पतली कुक्षि वाले हैं, इनके नेत्र प्रशस्त, स्निग्ध, शहद की गोली के समान चमकते पीले वर्ण के हैं, इनकी जंघाएं विशाल, मोटी और मांसल हैं, इनके स्कंध विपुल और परिपूर्ण हैं, इनके कपोल गोल और विपुल हैं, इनके ओष्ठ घन के समान निचित (मांसयुक्त) और जबड़ों से अच्छी तरह संबद्ध हैं, लक्षणोपेत उन्नत एवं अल्प झुके हुए हैं। वे चंक्रमित (बांकी) ललित (विलासयुक्त) पुलित (उछलती हुई) और चक्रवाल की तरह चपल गति से गर्वित हैं, मोटी स्थूल वर्तित (गोल) और सुसंस्थित उनकी कटि है। उनके दोनों कपोलों के बाल ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह लटकते हुए हैं, लक्षण और प्रमाणयुक्त, प्रशस्त और रमणीय हैं। उनके खुर और पूंछ एक समान हैं, उनके सींग एक समान पतले और तीक्ष्ण अग्रभाग वाले हैं। उनकी रोमराशि पतली सूक्ष्म सुन्दर और स्निग्ध है। इनके स्कंधप्रदेश उपचित परिपुष्ट मांसल और विशाल होने से सुन्दर हैं, इनकी चितवन वैडूर्यमणि जैसे चमकीले कटाक्षों से युक्त अतएव प्रशस्त और रमणीय गर्गर नामक आभूषणों से शोभित हैं, घग्घर नामक आभूषण से उनका कंठ परिमंडित है, अनेक मणियों स्वर्ण और रत्नों से निर्मित छोटी-छोटी घंटियों की मालाएं उनके उर पर तिरछे रूप में पहनायी गई हैं। उनके गले में श्रेष्ठ घंटियों की मालाएं पहनायी गई हैं। उनसे निकलने वाली कांति से उनकी शोभा में वृद्धि हो रही है। ये पद्मकमल की परिपूर्ण सुगंधियुक्त मालाओं से सुगन्धित हैं। इनके खुर वज्र जैसे हैं, इनके खुर विविध प्रकार के हैं अर्थात् विविध विशिष्टता वाले हैं। उनके दांत स्फटिक रत्नमय हैं, तपनीय स्वर्ण जैसी उनकी जिह्वा है, तपनीय स्वर्णसम उनके तालु हैं, तपनीय स्वर्ण के जोतों से वे जुते हुए हैं। वे इच्छानुसार चलने वाले हैं, प्रीतिपूर्वक चलनेवाले हैं, मन को लुभानेवाले हैं, मनोहर और मनोरम हैं, उनकी गति अपरिमित है, अपरिमित बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रम वाले हैं। वे जोरदार गंभीर गर्जना के मधुर एवं मनोहर स्वर से आकाश को गुंजाते हुए और दिशाओं को शोभित करते हुए गति करते हैं। (इस प्रकार चार हजार वृषभरूपधारी देव चन्द्रविमान को पश्चिमदिशा से उठाते हैं।)

१९४. (ई) चंदविमाणस्स णं उत्तरेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं जच्चाणं तरमल्लिहायणाणं हरिमेलामउलमल्लियच्छाणं घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयचंकमिय—(चंचुरिय) ललियपुलियचलचवल-चंचलगईणं लंघणवग्गणधावणधारणतियइजइणसिक्खियगईणं ललंतलामगलायवरभूसणाणं सण्णय-पासाणं संगयपासाणं सुजायपासाणं मियमाइयपीणरइयपासाणं झसविहगसुजायकुच्छीणं पीणपीवरवट्टिय-सुसंठियकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमाणजुत्तपसत्थरमणिज्जवालगंडाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छ-विधराणं मिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणविकिण्णकेसरवालिधराणं ललियसविलासगइललंतथासगलला-डवरभूसणाणं मुहमंडगोचूलचमरथासगपरिमंडियकडीणं तवणिज्जखुराणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्ज-तालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरियपुरिसकारपरक्कमाणं महयाहयहेसियकिलकिलाइयरवेणं महुरेणं मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ हयरूवधारीणं देवाणं उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति।

१९४. (ई) उस चन्द्रविमान को उत्तर की ओर से चार हजार अश्वरूपधारी देव उठाते हैं। वे अश्व इन विशेषणों वाले हैं—वे श्वेत हैं, सुन्दर हैं, सुप्रभावाले हैं, उत्तम जाति के हैं, पूर्ण बल और वेग प्रकट होने की (तरुण) वय वाले हैं, हरिमेलकवृक्ष की कोमल कली के समान धवल आंख वाले हैं, वे अयोघन की तरह दृढीकृत, सुबद्ध, लक्षणोन्नत कुटिल (बांकी) ललित उछलती चंचल और चपल चाल वाले है, लांघना, उछलना, दौड़ना, स्वामी को धारण किये रखना त्रिपदी (लगाम) के चलाने के अनुसार चलना, इन सब बातों की शिक्षा के अनुसार ही वे गति करने वाले है। हिलते हुए रमणीय आभूषण उनके गले में धारण किये हुए हैं, उनके पार्श्वभाग सम्यक् प्रकार से झुके हुए हैं, संगत-प्रमाणापेत हैं, सुन्दर हैं, यथोचित मात्रा में मोटे और रति पैदा करने वाले हैं, मछली और पक्षी के समान उनकी कुक्षि है, पीन-पीवर और गोल सुन्दर आकार वाली उनकी कटि है, दोनों कपोलों के बाल ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह से लटकते हुए हैं, लक्षण और प्रमाण से युक्त हैं, प्रशस्त हैं, रमणीय हैं। उनकी रोमराशि पतली, सूक्ष्म, सुजात और स्निग्ध है। उनकी गर्दन के बाल मृदु, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म और सुलक्षणोपेत हैं और सुलझे हुए हैं। सुन्दर और विलासपूर्ण गति से हिलते हुए दर्पणाकार स्थासक-आभूषणों से उनके ललाट भूषित हैं, मुखमण्डप, अवचूल, चमर-स्थासक आदि आभूषणों से उनकी कटि परिमंडित है, तपनीय स्वर्ण के उनके खुर हैं, तपनीय स्वर्ण की जिह्वा है, तपनीय स्वर्ण के तालु हैं, तपनीय स्वर्ण के जोतों से वे भलीभांति जुते हुए हैं। वे इच्छापूर्वक गमन करने वाले हैं, प्रीतिपूर्वक चलने वाले हैं, मन को लुभावने लगते हैं, मनोहर हैं। ये अपरिमित गति वाले हैं, अपरिमित बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम वाले हैं। वे जोरदार हिनहिनाने की मधुर और मनोहर ध्वनि से आकाश को गुंजाते हुए, दिशाओं को शोभित करते हुए चन्द्रविमान को उत्तर-दिशा की ओर से उठाते हैं।[1]

---

१. चन्द्रादि विमानानि जगतः स्वभावात् निरालम्बानि, तथापि कियन्तो विनोदिनोऽनेकरूपधराः आभियोगिकादेवाः गततयहनशीलेषु विमानेषु अधः स्थित्वा परिवहन्ति कौतूहलादिति। —वृत्ति

१९४. (उ) एवं सूरविमाणस्सवि पुच्छा ? गोयमा ! सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेणं। एवं गहविमाणस्सवि पुच्छा ? गोयमा ! अट्ठ देवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेणं। दो देवाणं साहस्सीओ पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति, दो देवाणं साहस्सीओ दक्खिणिल्लं०, दो देवाणं साहस्सीओ पच्चत्थिमं, दो देवसाहस्सीओ उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति। एवं णक्खत्तविमाणस्स वि पुच्छा ? गोयमा ! चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति सीहरूवधारीणं देवाणं दस देवसया पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति एवं चउद्दिसिं। एवं तारगाणपि णवरं दो देवसाहस्सीओ परिवहंति, सीहरूवधारीणं देवाणं पंचदेवसया पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति एवं चउद्दिसिं।

१९४. (उ) सूर्य के विमान के विषय में भी यही प्रश्न करना चाहिए। गौतम ! सोलह हजार देव पूर्वक्रम के अनुसार सूर्यविमान को वहन करते हैं। इसी प्रकार ग्रहविमान के विषय में प्रश्न करने पर भगवान् ने कहा—गौतम ! आठ हजार देव ग्रहविमान को वहन करते हैं। दो हजार देव पूर्व की तरफ से, दो हजार देव दक्षिणदिशा से, दो हजार देव पश्चिमदिशा से और दो हजार देव उत्तर की दिशा से ग्रहविमान को उठाते हैं। नक्षत्रविमान की पृच्छा होने पर भगवान् ने कहा—गौतम ! चार हजार देव नक्षत्रविमान को वहन करते हैं। एक हजार देव सिंह का रूप धारण कर पूर्वदिशा की ओर से वहन करते है। इसी तरह चारों दिशाओं से चार हजार देव नक्षत्रविमान को वहन करते हैं। इसी प्रकार ताराविमान को दो हजार देव वहन करते है। पांच सौ-पांच सौ देव चारों दिशाओं से ताराविमान को वहन करते हैं।

१९५. एएसि णं भंते ! चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं कयरे कयरेहिंतो सिग्घगई वा मंदगई वा ?

गोयमा ! चंदेहिंतो सूरा सिग्घगई, सूरेहिंतो गहा सिग्घगई, गहेहिंतो नक्खत्ता सिग्घगई, णक्खत्तेहिंतो तारा सिग्घगई। सव्वप्पगइ चंदा सव्वसिग्घगइओ तारारूवे।

एएसि णं भंते ! चंदिम जाव तारारूवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?

गोयमा ! तारारूवेहिंतो नक्खत्ता महिड्ढिया, नक्खत्तेहिंतो गहा महिड्ढिया, गहेहिंतो सूरा महिड्ढिया, सूरेहिंतो चंदा महिड्ढिया। सव्वप्पिड्ढिया तारारूवा सव्व महिड्ढिया चंदा।

१९५. भगवन् ! इन चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं में कौन किससे शीघ्रगति वाले हैं और कौन मदगति वाले हैं ?

गौतम ! चन्द्र से सूर्य तेजगति वाले हैं, सूर्य से ग्रह शीघ्रगति वाले हैं, ग्रह से नक्षत्र शीघ्रगति वाले हैं और नक्षत्रों से तारा शीघ्रगति वाले हैं। सबसे मन्दगति चन्द्रों की है और सबसे तीव्रगति ताराओं की है।

भगवन् ! इन चन्द्र यावत् तारारूप में कौन किससे अल्पऋद्धि वाले है और कौन महाऋद्धि वाले हैं ?

गौतम ! तारारूप से नक्षत्र महर्द्धिक हैं, नक्षत्र से ग्रह महर्द्धिक है, ग्रहों से सूर्य महर्द्धिक हैं और सूर्यों से चन्द्रमा महर्द्धिक हैं। सबसे अल्पऋद्धि वाले तारारूप हैं और सबसे महर्द्धिक चन्द्र हैं।

१९६. (अ) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे ताराख्वस्स ताराख्वस्स एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—वाघाइमे य निव्वाघाइमे य। तत्थ णं जे से वाघाइमे से जहन्नेणं दोण्णि या छावट्ठे जोयणसए उक्कोसेणं बारस जोयणसहस्साइं दोण्णि य बायाले जोयणसए ताराख्वस्स ताराख्वस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। तत्थ णं जे से निव्वाघाइमे से जहन्नेणं पंचधणुसयाइं उक्कोसणं दो गाउयाइं ताराख्वस्स ताराख्वस्स अंतरे पण्णत्ते।

चंदस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरन्नो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा। एत्थ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि देविसाहस्सीओ परिवारे य। पभू णं तओ एगमेगा देवी अण्णाइं चत्तारि चत्तारि देविसहस्साइं परिवारं विउवित्तए। एवामेव सपुव्वावरेणं सोलस देविसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, से तं तुडिए।

१९६. (अ) भगवन् ! जम्बूद्वीप में एक तारा का दूसरे तारे से कितना अंतर कहा गया है ?

गौतम ! अन्तर दो प्रकार का है, यथा—व्याघातिम (कृत्रिम) और निर्व्याघातिम (स्वाभाविक)। व्याघातिम अन्तर जघन्य दो सौ छियासठ (२६६) योजन का और उत्कृष्ट बारह हजार दो सौ बयालीस (१२२४२) योजन का कहा गया है। जो निर्व्याघातिम अन्तर है वह जघन्य पांच सौ धनुष और उत्कृष्ट दो कोस का जानना चाहिए। (निषध व नीलवंत पर्वत के कूट ऊपर से २५० योजन लम्बे-चौड़े हैं। कूट की दोनों ओर से आठ-आठ योजन को छोड़कर तारामंडल चलता है, अतः २५० में १६ जोड़ देने से २६६ योजन का अन्तर निकल आता है। उत्कृष्ट अन्तर मेरु की अपेक्षा से है। मेरु की चौड़ाई दस हजार योजन की है और दोनों ओर के ११२१ योजन प्रदेश छोड़कर तारामण्डल चलता है। इस तरह १० हजार योजन में २२४२ मिलाने से उत्कृष्ट अन्तर आ जाता है।)

भगवन् ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की कितनी अग्रमहिषियां हैं ?

गौतम ! चार अग्रमहिषियां हैं, यथा—चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा। इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी अन्य चार हजार देवियों की विकुर्वणा कर सकती है। इस प्रकार कुल मिलाकर सोलह हजार देवियों का परिवार हो जाता है। यह चन्द्रदेव के "तुटिक" अन्तःपुर का कथन हुआ।

१९६. (आ) पभू णं भंते ! चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नो पभू चंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?

गोयमा ! चंदस्स जोइसिंदस्स जोइसरण्णो चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए माणवगंसि चेइयखंभंसि वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहुयाओ जिणसकहाओ सण्णिखित्ताओ चिट्ठंति जाओ णं

चंदस्स जोइसिदस्स जोइसरण्णो अन्नेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ। तासिं पणिहाय नो पभू चंदे जोइसराया चंदवडिंसए जाव चंदंसि सीहासणंसि जाव भुंजमाणे विहरित्तए। से एएणट्ठेणं गोयमा! नो पभू चंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए।

अदुत्तरं च णं गोयमा? पभू चंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवाणं साहस्सीहिं अन्नेहिं बहूहिं जोइसिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महया हयणट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, केवलं परियारतुडिएण सद्धिं भोगभोगाइं बुद्धिए नो चेव णं मेहुणवत्तियं।

१९६. (आ) भगवन्! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगने में समर्थ है क्या?

गौतम! नहीं। वह समर्थ नहीं है।

भगवन्! ऐसा क्यों कहा जाता है कि ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर अन्तःपुर के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगने में समर्थ नहीं है?

गौतम! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र के चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में माणवक चैत्यस्तंभ में वज्रमय गोल मंजूषाओं में बहुत-सी जिनदेव की अस्थियां रखी हुई हैं, जो ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र और अन्य बहुत-से ज्योतिषी देवों और देवियों के लिए अर्चनीय यावत् पर्युपासनीय हैं। उनके कारण ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में यावत् चन्द्रसिंहासन पर यावत् भोगोपभोग भोगने में समर्थ नहीं है। इसलिए ऐसा कहा गया है कि ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान मे सुधर्मा सभा में चन्द्र सिंहासन पर अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगने में समर्थ नहीं है।

गौतम! दूसरी बात यह है कि ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र सिंहासन पर अपने चार हजार सामानिक देवों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्य बहुत से ज्योतिषी देवों और देवियों के साथ घिरा हुआ होकर जोर-जोर से बजाये गये नृत्य में, गीत में, वादित्रों के, तन्त्री के, तल के, ताल के, त्रुटित के, घन के, मृदंग के बजाये जाने से उत्पन्न शब्दों से दिव्य भोगोपभोगों को भोग सकने में समर्थ है। किन्तु अपने अन्तःपुर के साथ मैथुनबुद्धि से भोग भोगने में वह समर्थ नहीं है।

१९६. (इ) सूरस्स णं भंते! जोइसिदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सूरप्पभा, आयवाभा, अच्चिमाली, पभंकरा। एवं अवसेसं जहा चंदस्स णवरिं सूरवडिंसए विमाणे सूरंसि सीहासणंसि तहेव सव्वेसिं गहाईणं चत्तारि अग्गमहिसीओ, तं जहा—विजया वेजयंती जयंती अपराइया तेसिं पि तहेव।

१९६. (इ) भगवन्! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज सूर्य की कितनी अग्रमहिषियां हैं?

गौतम! चार अग्रमहिषियां हैं, जिनके नाम हैं—सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और

प्रभंकरा । शेष वक्तव्यता चन्द्र के समान कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि यहां सूर्यावतंसक विमान में सूर्यसिंहासन पर कहना चाहिए । उसी तरह ग्रहादि की भी चार अग्रमहिषियां हैं—विजया, वेजयंती, जयंति और अपराजिता । इनके सम्बन्ध में भी पूर्ववत् कथन करना चाहिए ।

१९७. चंदविमाणे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिइ पण्णत्ता ? एवं जहा ठिईपए तहा भाणियव्वा जाव ताराणं ।

एएसि णं भंते ! चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! चंदिमसूरिया एए णं दोण्णिवि तुल्ला सव्वत्थोवा । संखेज्जगुणा णक्खत्ता, संखेज्जगुणा गहा, संखेज्जगुणाओ ताराओ । जोइसुद्देसओ समत्तो ।

१९७. भगवन् ! चन्द्रविमान में देवों की कितनी स्थिति कही गई है ? इस प्रकार प्रज्ञापना में स्थितिपद के अनुसार तारारूप पर्यन्त स्थिति का कथन करना चाहिए ।

भगवन् ! इन चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! चन्द्र और सूर्य दोनों तुल्य हैं और सबसे थोड़े हैं । उनसे संख्यातगुण नक्षत्र हैं । उनसे संख्यातगुण ग्रह हैं, उनसे संख्यातगुण तारागण हैं । ज्योतिष्क उद्देशक पूरा हुआ ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में स्थिति के सम्बन्ध में प्रज्ञापना के स्थितिपद की सूचना की गई है । वह इस प्रकार है—

चन्द्र विमान में चन्द्र, सामानिक देव तथा आत्मरक्षक देवों की जघन्य स्थिति पल्योपम के चतुर्थ भाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है ।

यहां देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के चतुर्थ भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक आधे पल्योपम की है ।

सूर्यविमान में देवों की जघन्य स्थिति $\frac{1}{4}$ पल्योपम और उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है । यहां देवियों की स्थिति जघन्य $\frac{1}{4}$ पल्योपम और उत्कृष्ट पांच सो वर्ष अधिक आधा पल्योपम की है ।

ग्रहविमानगत देवों की जघन्य स्थिति $\frac{1}{4}$ पल्योपम और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है । यहां देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थभाग और उत्कृष्ट आधा पल्योपम है ।

नक्षत्रविमान में देवों की जघन्य स्थिति $\frac{1}{4}$ पल्योपम और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है । यहां दवियों की जघन्य स्थिति $\frac{1}{4}$ पल्योपम और उत्कृष्ट कुछ अधिक $\frac{1}{4}$ पल्योपम की है ।

ताराविमान में देवों की जघन्य स्थिति $\frac{1}{8}$ पल्योपम की और उत्कृष्ट $\frac{1}{4}$ पल्योपम है । देवियों की स्थिति जघन्य $\frac{1}{8}$ पल्योपम और उत्कृष्ट कुछ अधिक पल्योपम का $\frac{1}{8}$ भाग प्रमाण है ।

॥ ज्योतिष्क उद्देशक समाप्त ॥

वैमानिक उद्देशक

वैमानिक-वक्तव्यता

१९८. कहि णं भंते ! वेमाणियाणं विमाणा पण्णत्ता, कहि णं भंते ! वेमाणिया देवा परिवसंति ? जहा ठाणपए सव्व भाणियव्वं नवरं परिसाओ भाणियव्वाओ जाव अच्चुए, अन्नेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं देवाण य देवीण य जाव विहरंति ।

१९८. भगवन् ! वैमानिक देवों के विमान कहां कहे गये हैं ? भगवान् ! वैमानिक देव कहां रहते है ? इत्यादि वर्णन जैसा प्रज्ञापनासूत्र के स्थानपद में कहा है, वैसा यहां कहना चाहिए । विशेष रूप में यहां अच्युत विमान तक परिषदाओं का कथन भी करना चाहिए यावत् बहुत से सौधर्मकल्प-वासी देव और देवियों का आधिपत्य करते हुए सुखपूर्वक विचरण करते हैं ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में प्रज्ञापनासूत्र के स्थानपद की सूचना की गई है । विषय की स्पष्टता के लिए उसे यहां देना आवश्यक है । वह इस प्रकार है—

"इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुसमरमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र तथा तारारूप ज्योतिष्कों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, अनेक करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाकर सौधर्म-ईशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्रार-प्राणत-आरण-अच्युत-ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में वैमानिक देवों के चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेवीस विमान एवं विमानावास हैं । वे विमान सर्वरत्नमय स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाये हुए, रजरहित, निर्मल, पंकरहित, निरावरण कांतिवाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतसहित प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, रमणीय, रूपसम्पन्न और अप्रतिम सुन्दर है । उनमें बहुत से वैमानिक देव निवास करते है । वे इस प्रकार हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तरोपपातिक देव ।

वे सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमशः १. मृग, २. महिष, ३. वराह, ४. सिंह, ५. बकरा (छगल), ६. दर्दुर, ७. हय, ८. गजराज ९. भुजंग, १०. खड्ग (गेंडा), ११. वृषभ और १२. विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलों से उद्योतित मुख वाले, मुकुट के कारण शोभयुक्त, रक्त-आभा युक्त, कमल-पत्र के समान गोरे, श्वेत, सुखद वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श वाले, उत्तम वैक्रिय-शरीरधारी, प्रवर वस्त्र-गन्ध-माल्य-अनुलेपन के धारक, महर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले हैं । कड़े और बाजूबंदों से मानो भुजाओं को उन्होंने स्तब्ध कर रखी हैं, अंगद, कुण्डल आदि आभूषण उनके कपोल को सहला रहे हैं, कानों में कर्णफूल और हाथों में विचित्र करभूषण धारण किये हुए हैं । विचित्र पुष्पमालाएं मस्तक पर शोभायमान हैं । वे कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए हैं तथा

कल्याणकारी श्रेष्ठमाला और अनुलेपन धारण किये हुए हैं। उनका शरीर देदीप्यमान होता है। वे लम्बी वनमाला धारण किये हुए होते हैं। दिव्य वर्ण से, दिव्य गंध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन और दिव्य संस्थान से, दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य प्रभा, दिव्य छाया, दिव्य अर्चि, दिव्य तेज और दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रभासित करते हुए वे वहां अपने-अपने लाखों विमानावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंशक देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी सपरिवार अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का तथा बहुत से वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य पुरोवर्तित्व (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वर्यत्व तथा सेनापतित्व करते-कराते और पालते-पलाते हुए निरन्तर होने वाले महान् नाट्य, गीत तथा कुशलवादकों द्वारा बजाये जाते हुए वीणा, तल, ताल, त्रुटित, घनमृदंग आदि वाद्यों की समुत्पन्न ध्वनि के साथ दिव्य शब्दादि कामभोगों को भोगते हुए विचरण करते हैं।

जंबूद्वीप के सुमेरु पर्वत के दक्षिण के इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुसमरमणीय भूभाग से ऊपर ज्योतिष्कों से अनेक कोटा-कोटी योजन ऊपर जाने पर सौधर्म नामक कल्प है। यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, अर्धचन्द्र के आकार में संस्थित अर्चिमाला और दीप्तियों की राशि के समान कांतिवाला, असंख्यात कोटा-कोटी योजन की लम्बाई-चौड़ाई और परिधि वाला तथा सर्वरत्नमय है। इस सौधर्मविमान में बत्तीस लाख विमानावास हैं। इन विमानों के मध्यदेशभाग में पांच अवतंसक कहे गये हैं— १. अशोकावतंसक, २. सप्तपर्णावतंसक, ३. चंपकावतंसक, ४. चूतावतंसक और इन चारों के मध्य में है ५. सौधर्मावतंसक। ये अवतंसक रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं। इन सब बत्तीस लाख विमानों में सौधर्मकल्प के देव रहते हैं जो महर्द्धिक है यावत् दसों दिशाओं को उद्योतित करते हुए आनन्द से सुखोपभोग करते हैं और अपने सामानिक आदि देवों का अधिपत्य करते हुए रहते हैं।

परिषदों और स्थिति आदि का वर्णन

१९९. (अ) सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ—तं जहा, समिया चंडा जाया। अब्भिंतरिया समिया, मज्झमिया चंडा, बाहिरिया जाया।

सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए कई देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ? मज्झिमियाए परिसाए० तहेव बाहिरियाए पुच्छा ?

गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए चउद्दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए परिसाए सोलस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तहा—अब्भिंतरियाए परिसाए सत्त देवीसयाणि, मज्झिमियाए छच्च देवीसयाणि, बाहिरियाए पंच देवीसयाणि पण्णत्ताइं।

सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? एवं मज्झिमियाए बाहिरियाएवि पुच्छा ?

गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अब्भितरियाए परिसाए देवाणं पचंपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमिया परिसाए चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। देवीणं ठिइ अब्भितरियाए परिसाए देवीणं तिन्नि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए दुन्नि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। अट्ठो सो चेव जहा भवणवासीणं।

१९९ (अ) भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी पर्षदाएं कही गई हैं ?

गौतम ! तीन पर्षदाएं कही गई हैं—समिता, चण्डा और जाया। आभ्यंतर पर्षदा को समिता कहते हैं, मध्य पर्षदा को चण्डा और बाह्य पर्षदा को जाया कहते हैं।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यंतर परिषद् में कितने हजार देव हैं, मध्य परिषद् और बाह्य परिषद् में कितने -कितने हजार देव हैं ?

गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यन्तर परिषद् में बारह-हजार देव, मध्यम परिषद् में चौदह हजार देव और बाह्य परिषद् में सोलह हजार देव हैं। आभ्यन्तर परिषद् में सात सौ देवियां मध्य परिषद् में छह सौ और बाह्य परिषद् में पांच सौ देवियां है।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति कितनी कही गई है ? इसी प्रकार मध्यम और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति कितनी कितनी है ?

गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति पांच पल्योपम की है, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति चार पल्योपम की है और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की है। आभ्यन्तर परिषद् की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम, मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति दो पल्योपम और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति एक पल्योपम की है। समिता, चण्डा और जाया परिषद् का अर्थ वही है जो भवनवासी देवों के चमरेन्द्र के प्रसंग में कहा गया है।

१९९ (आ) कहि णं भंते ! ईसाणकाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता ? तहेव सव्वं जाव ईसाणे एत्थ देविंदे देवराया जाव विहरइ। ईसाणस्स भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कई परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिया, चंडा, जाया। तहेव सव्वं, णवरं अब्भितरियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए चउद्दस देवसाहस्सीओ। देवीणं पुच्छा ? अब्भितरियाए नव देवीसया पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवीसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए सत्त देविसया पण्णत्ता।

देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? अब्भितरियाए परिसाए देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। मज्झिमियाए छ पलिओवमाइं, बाहिरियाए परिसाए पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। देवीणं पुच्छा ?अब्भितरियाए साइरेगाइं पंच पलिओवमाइं मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अट्ठो तहेव भाणियव्वो।

१९९ (आ) भगवन् ! ईशानकल्प के देवों के विमान कहां से कहे गये हैं आदि सब कथन

सौधर्मकल्प की तरह जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वहां ईशान नामक देवेन्द्र देवराज आधिपत्य करता हुआ विचरता है।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज की कितनी पर्षदाएं हैं ?

गौतम तीन पर्षदाएं कही गई हैं—समिता, चंडा और जाया। शेष कथन पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है कि आभ्यन्तर पर्षदा में दस हजार देव, मध्यम में बारह हजार देव और बाह्य पर्षदा में चौदह हजार देव हैं। आभ्यन्तर पर्षदा में नौ सौ, मध्यम परिषदा में आठ सौ और बाह्य पर्षदा में सात सौ देवियां हैं।

भगवन् ! ईशानकल्प के देवों की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! आभ्यन्तर पर्षदा के देवों की स्थिति सात पल्योपम, मध्यम पर्षदा के देवों की स्थिति छह पल्योपम और बाह्य पर्षदा के देवों की स्थिति पांच पल्योपम की है।

देवियों की स्थिति की पृच्छा ? आभ्यन्तर पर्षदा की देवियों की स्थिति कुछ अधिक पांच पल्योपम, मध्यम पर्षदा की देवियों की स्थिति चार पल्योपम और बाह्य पर्षदा की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की है। तीन प्रकार की पर्षदाओं का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए।

१९९ (इ) सणंकुमाराणं पुच्छा ? तहेव ठाणपदगमेणं जाव सणंकुमारस्स तओ परिसाओ समियाइ तहेव। नवरं अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं पंचपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अट्ठो सो चेव।

एवं माहिंदस्सवि तहेव। तओ परिसाओ, णवरं अब्भिंतरियाए परिसाए [redacted] देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। ठिई देवाणं अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं सत्त य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं छच्च पलिओवमाइं, बाहिरियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तहेव सव्वेसिं इंदाणं ठाणपदगमेणं विमाणाणि वुच्चा तओ पच्छा परिसाओ पत्तेयं पत्तेयं वुच्चइ।

१९९ (इ) सनत्कुमार देवों के विमानों के विषय में प्रश्न करने पर कहा गया है कि प्रज्ञापना के स्थानपद के अनुसार कथन करना चाहिए यावत् वहां सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज हैं। उसकी तीन पर्षदा हैं—समिता, चंडा और जाया। आभ्यन्तर परिषदा में आठ हजार, मध्यम परिषदा में दस हजार और बाह्य परिषदा में बारह हजार देव हैं। आभ्यन्तर पर्षद के देवों की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और पांच पल्योपम है, मध्यम पर्षद के देवों की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और चार पल्योपम हैं, बाह्य पर्षद् के देवों की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और तीन पल्योपम की है। पर्षदों का अर्थ पूर्व चमरेन्द्र के प्रसंगानुसार जानना चाहिए। (सनत्कुमार में और आगे के देवलोक में देवियां नहीं हैं। अतएव देवियों का कथन नहीं किया गया है।)

इसी प्रकार माहेन्द्र देवलोक के विमानों और माहेन्द्र देवराज देवेन्द्र का कथन करना चाहिए। वैसी ही तीन पर्षदा कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि आभ्यन्तर पर्षद में छह हजार, मध्य पर्षद में आठ हजार और बाह्य पर्षद में दस हजार देव है। आभ्यन्तर पर्षद के देवो की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और सात पल्योपम की है। मध्य पर्षद के देवों की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और छह पल्योपम की है और बाह्य पर्षद के देवों की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और पांच पल्योपम की है। इसी प्रकार स्थानपद के अनुसार पहले सब इन्द्रों के विमानो का कथन करने के पश्चात् प्रत्येक की पर्षदाओं का कथन करना चाहिए।

१९९ (ई) बंभस्सवि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ। अब्भितरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ, मज्झिमियाए छ देवसाहस्सीओ, बाहिरियाए अट्ठ देवसाहस्सीओ। देवाणं ठिई—अब्भितरियाए परिसाए अद्धणवमाइं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं, मज्झिमियाए परिसाए अद्धनवमाइं सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं, बाहिरियाए परिसाए अद्धनवमाइं सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइं। अट्ठो सो चेव।

लंतगस्सवि जाव तओ परिसाओ जाव अब्भितरियाए परिसाए दो देवसाहस्सीओ, मज्झिमियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ, बाहिरियाए छ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। ठिई भाणियव्वा। अब्भितरियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं सत्तपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं छच्चपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

महासुक्कस्सवि जाव तओ परिसाओ जाव अब्भितरियाए एगं देवसहस्सं, मज्झिमियाए दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। अब्भितरियाए परिसाए अद्धसोलस सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं, मज्झिमियाए अद्धसोलस सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं, बाहिरियाए अद्धसोलस सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं पण्णत्ता। अट्ठो सो चेव।

सहस्सारे पुच्छा जाव अब्भितरियाए परिसाए पंच देवसया, मज्झिमिया परिसाए एगा देवसाहस्सी, बाहिरियाए परिसाए दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। ठिई—अब्भितरियाए परिसाए अद्धट्ठारस सागरोवमाइं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, एवं मज्झिमिआए अद्धट्ठारस सागरोवमाइं छ पलिओवमाइं, बाहिरियाए अद्धट्ठारस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं। अट्ठो सो चेव।

१९९. (ई) ब्रह्म इन्द्र की भी तीन पर्षदाएं है। आभ्यन्तर परिषद् में चार हजार देव, मध्यम परिषद् में छह हजार देव और बाह्य परिषद् में आठ हजार देव है। आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति साढ़े आठ सागरोपम और पांच पल्योपम है। मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति साढ़े आठ सागरोपम और चार पल्योपम की है। बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति साढ़े आठ सागरोपम और तीन पल्योपम की है। परिषदों का अर्थ पूर्वोक्त ही है।

लन्तक इन्द्र की भी तीन परिषद् हैं यावत् आभ्यन्तर परिषद् में दो हजार देव, मध्यम परिषद् में चार हजार देव और बाह्य परिषद् में छह हजार देव हैं। आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति बारह सागरोपम और सात पल्योपम की है, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति बारह

सागरोपम और छह पल्योपम की, बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति बारह सागरोपम और पांच पल्योपम की है।

महाशुक्र इन्द्र की भी तीन परिषद् हैं। आभ्यन्तर परिषद् में एक हजार देव, मध्यम परिषद् में दो हजार देव और बाह्य परिषद् में चार हजार देव हैं।

आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति साढ़े पन्द्रह सागरोपम और पांच पल्योपम की है। मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति साढ़े पन्द्रह सागरोपम और चार पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति साढ़े पन्द्रह सागरोपम और तीन पल्योपम की है। परिषदों का अर्थ पूर्ववत् कहना चाहिए।

सहस्रार इन्द्र की आभ्यन्तर पर्षद में पांच सौ देव, मध्यम पर्षद में एक हजार देव और बाह्य पर्षद में दो हजार देव हैं। आभ्यन्तर पर्षद के देवों की स्थिति साढ़े सत्रह सागरोपम और सात पल्योपम की है, मध्यम पर्षद के देवों की स्थिति साढ़े सत्रह सागरोपम और छह पल्योपम की है, बाह्य पर्षद के देवों की स्थिति साढ़े सत्रह सागरोपम और पांच पल्योपम की है।

१९९. (उ) आणयपाणयस्सवि पुच्छा जाव तओ परिसाओ नवरं अब्भितरियाए अड्ढाइज्जा देवसया, मज्झिमियाए पंच देवसया, बाहिरियाए एगा देवसाहस्सी। ठिई—अब्भितरियाए एगूणवीसं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं, एवं मज्झिमियाए एगूणवीसं सागरोवमाइं चत्तारि य पलिओवमाइं, बाहिरियाए परिसाए एगूणवीसं सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइं ठिई। अट्ठो सो चेव।

कहि णं भंते! आरण-अच्चुयाणं देवाणं तहेव अच्चुए सपरियारे जाव विहरइ। अच्चुयस्स णं देविंदस्स तओ परिसाओ पण्णत्ताओ। अब्भितरियाए देवाणं पणवीसं सयं, मज्झिमपरिसाए अड्ढाइज्जासया, बाहिरियपरिसाए पंचसया। अब्भितरियाए एक्कवीसं सागरोवमाइं सत्त य पलिओवमाइं, मज्झिमाए एक्कवीसं सागरोवमाइं छप्पलिओवमाइं, बाहिरियाए एक्कवीसं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

कहि णं भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति? जहेव ठाणपदे तहेव; एवं मज्झिमगेवज्जगा उवरिमगेवेज्जगा अणुत्तरा य जाव अहमिंदा नामं ते देवा पण्णत्ता समणाउसो!

१९९ (उ) आनत-प्राणत देवलोक विषयक प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि प्राणत देव की तीन पर्षदाएं हैं। आभ्यन्तर पर्षद में अढाई सौ देव हैं, मध्यम पर्षद में पांच सौ देव और बाह्य पर्षद में एक हजार देव हैं, आभ्यन्तर पर्षद के देवों की स्थिति उन्नीस सागरोपम और पांच पल्योपम है, मध्यम पर्षद के देवों स्थिति उन्नीस सागरोपम और चार पल्योपम की है, बाह्य पर्षद के देवों की स्थिति उन्नीस सागरोपम और तीन पल्योपम की है। पर्षदा का अर्थ पहले की तरह करना चाहिए।

भगवन्! आरण-अच्युत देवों के विमान कहां कहे गये हैं—इत्यादि कथन करना चाहिए यावत् वहां अच्युत नाम का देवेन्द्र देवराज सपरिवार विचरण करता है। देवेन्द्र देवराज अच्युत की तीन पर्षदाएं हैं। आभ्यन्तर पर्षद में एक सौ पच्चीस देव, मध्य पर्षद में दो सौ पचास देव और बाह्य पर्षद में पांच सौ देव हैं। आभ्यन्तर पर्षद के देवों की स्थिति इक्कीस सागरोपम और सात पल्योपम

की है, मध्य पर्षद के देवों की स्थिति इक्कीस सागरोपम और छह पल्योपम की है, बाह्य पर्षद के देवों की स्थिति इक्कीस सागरोपम और पांच पल्योपम की है।

भगवन् ! अधस्तन-ग्रैवेयक देवों के विमान कहां कहे गये हैं ? भगवन् ! अधस्तन-ग्रैवेयक देव कहां रहते हैं ? जैसा स्थानपद में कहा है वैसा ही कथन यहां करना चाहिए। इसी तरह मध्यम-ग्रैवेयक, उपरितन-ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों का कथन करना चाहिए। यावत् हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सब अहमिन्द्र हैं—वहां कोई छोटे-बड़े का भेद नही है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में वर्णित विषय को निम्न कोष्टक से समझने में सुविधा रहेगी—

कल्पों के नाम	देवों की संख्या	देवी संख्या	स्थिति देव	स्थिति देवी
१. सौधर्म				
आभ्यन्तर पर्षद	१२,०००	७००	५ पल्यो.	३ प.
मध्यम पर्षद	१४,०००	६००	४ पल्यो.	२ प.
बाह्य पर्षद	१६,०००	५००	३ पल्यो.	१ प.
२. ईशान				
आभ्यन्तर पर्षद	१०,०००	९००	७ पल्यो.	५ प. से कुछ अधिक
मध्यम पर्षद	१२,०००	८००	६ पल्यो.	४ प.
बाह्य पर्षद	१४,०००	७००	५ पल्यो.	३ प.
३. सनत्कुमार				
आभ्यन्तर पर्षद	८,०००	देवियां नही	साढ़े चार सागरो. ५ प.	"
मध्यम पर्षद	१०,०००	देवियां नहीं	साढ़े चार सा. ४ प.	"
बाह्य पर्षद	१२,०००	देवियां नहीं	साढ़े चार सा. ३ प.	"
४. माहेन्द्र				
आभ्य. पर्षद	६,०००	देवियां नहीं	साढ़े चार सा. ७ प.	"
मध्यम पर्षद	८,०००	देवियां नहीं	साढ़े चार सा. ६ प.	"
बाह्य पर्षद	१०,०००	देवियां नहीं	साढ़े चार सा. ५ प.	
५. ब्रह्म				
आभ्य. पर्षद	४,०००	देवियां नही	साढ़ेआठ सा. ५ प. नहीं है	"
मध्यम पर्षद	६,०००	देवियां नहीं	साढ़ेआठ सा. ४ प. नहीं है	"
बाह्य पर्षद	८,०००	देवियां नहीं	साढ़ेआठ सा. ३ प. नही है	"

कल्पों के नाम	देवों की संख्या	देवी संख्या	स्थिति देव	देवी
६. लांतक				
आभ्य. पर्षद	२,०००	देवियां नही	१२ सागरो. ७ प.	नहीं है
मध्यम पर्षद	४,०००	देवियां नहीं	१२ सागरो. ६ प.	नहीं है
बाह्य पर्षद	६,०००	देवियां नहीं	१२ सागरो. ५ प.	नहीं है
७. महाशुक्र				
आभ्य पर्षद	१,०००	देवियां नहीं	साढ़े १५ सा. ५ पल्यो.	नहीं है
मध्यम पर्षद	२,०००	देवियां नहीं	साढ़े १५ सा. ४ पल्यो.	नहीं है
बाह्य पर्षद	४,०००	देवियां नहीं	साढ़े १५ सा. ३ पल्यो.	नहीं है
८. सहस्रार				
आभ्य. पर्षद	५००	देविया नही	साढ़े १७ सा. ७ पल्यो.	नहीं है
मध्यम पर्षद	१,०००	देवियां नहीं	साढ़े १७ सा. ६ पल्यो.	नहीं है
बाह्य पर्षद	२,०००	देवियां नही	साढे १७ सा. ५ पल्यो.	नहीं है
९-१०. आनत-प्राणत				
आभ्य. पर्षद	२५०	देवियां नही	१९ सा. ५ पल्यो.	नहीं है
मध्यम पर्षद	५००	देवियां नहीं	१९ सा. ४ पल्यो.	नहीं है
बाह्य पर्षद	१,०००	देवियां नहीं	१९ सा. ३ पल्यो.	नही है
११-१२. आरण-अच्युत				
आभ्य. पर्षद	१२५	देवियां नही	२१ सा. ७ पल्यो.	नही है
मध्यम पर्षद	२५०	देवियां नहीं	२१ सा. ६ पल्यो.	नहीं है
बाह्य पर्षद	५००	देवियां नहीं	२१ सा. ५ पल्यो.	नहीं है

अधस्तन-ग्रैवेयक	अहमिन्द्र होने से पर्षद नही हैं
मध्यम-ग्रैवेयक	अहमिन्द्र होने से पर्षद नहीं हैं
उपरितन-ग्रैवेयक	अहमिन्द्र होने से पर्षद नहीं हैं
अनुत्तर विमान	अहमिन्द्र होने से पर्षद नहीं हैं

विमानावासों की संग्रह-गाथाओं का अर्थ—[1]

१.	सौधर्म देवलोक में	३२ लाख	विमानावास हैं	
२.	ईशान देवलोक में	२८ लाख	विमानावास हैं	
३.	सनत्कुमार में	१२ लाख	विमानावास हैं	
४.	माहेन्द्र में	८ लाख	विमानावास हैं	
५.	ब्रह्मलोक में	४ लाख	विमानावास हैं	
६.	लान्तक में	५० हजार	विमानावास हैं	
७.	महाशुक्र में	४० हजार	विमानावास हैं	
८.	सहस्रार में	६ हजार	विमानावास हैं	
९-१०.	आनत-प्राणत	४००	विमानावास हैं	
११-१२.	आरण-अच्युत	३००	विमानावास हैं	
	नवग्रैवेयक	३१८	विमानावास हैं	(प्रथमत्रिक में १११) (द्वितीयत्रिक में १०७) (तृतीयत्रिक में १००)
	अनुत्तरविमान	५	विमानावास हैं	

चौरासी लाख सत्तानवै हजार तेईस ८४,९७,०२३ (कुल) विमानावास हैं।

प्रथम कल्प में ८४ हजार सामानिक देव हैं। दूसरे में ८०,०००, तीसरे में ७२,०००, चौथे में ७० हजार, पांचवें में ६०,०००, छठे में ५०,०००, सातवें में ४०,०००, आठवें में ३०,०००, नौवें-दसवें में २०,०००, ग्यारहवें-बारहवें कल्प में १०,००० सामानिक देव हैं।

॥ प्रथम वैमानिक उद्देशक पूर्ण ॥

---

१. बत्तीस अट्ठावीसा बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा।
पन्ना चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे ॥ १ ॥
आणय-पाणय कप्पे चत्तारि सया आरण-अच्चुए तिण्णि।
सत्त विमाणसयाइं चउसुवि एसु कप्पेसु ॥ २ ॥

सामानिक संग्रह गाथा—
चउरासीइ असीइ बावत्तरी सत्तरिय सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा ॥ १ ॥

२००. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! घणोवहिपइट्ठिया। सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता। बंभलोए णं कप्पे विमाणपुढवी णं पुच्छा ? घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता। लंतए णं भंते पुच्छा ? गोयमा तदुभयपइट्ठिया। महासुक्कसहस्सारेसुवि तदुभय पइट्ठिया। आणय जाव अच्चुएसु णं भंते ! कप्पेसु पुच्छा ? ओवासंतरपइट्ठिया। गेवेज्जविमाणपुढवी णं पुच्छा ? गोयमा ! ओवासंतरपइट्ठिया। अणुत्तरोववाइयपुच्छा ? ओवासंतरपइट्ठिया।

२००. भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्प की विमानपृथ्वी किसके आधार पर रही हुई है ? गौतम ! घनोदधि के आधार पर रही हुई है। सनत्कुमार और माहेन्द्र की विमानपृथ्वी किस पर टिकी हुई है ? गौतम ! घनवात पर प्रतिष्ठित है। ब्रह्मलोक विमान-पृथ्वी किसके आधार पर है ? गौतम ! घनवात पर प्रतिष्ठित है। लान्तक विमानपृथ्वी का प्रश्न ? गौतम ! लान्तक विमानपृथ्वी घनोदधि और घनवात दोनों के आधार पर रही हुई है। महाशुक्र और सहस्रार विमान पृथ्वी भी घनोदधि-घनवात पर प्रतिष्ठित है। आनत यावत् अच्युत विमानपृथ्वी (९ से १२ देवलोक) किस पर आधारित है ? गौतम ये चारों कल्प आकाश पर प्रतिष्ठित हैं। ग्रैवेयकविमान और अनुत्तरविमान भी आकाश-प्रतिष्ठित हैं।

(संग्रहणी गाथा में कहा है—प्रथम, द्वितीय कल्प घनोदधि पर, तीसरा, चौथा, पांचवां कल्प घनवात पर, छठा-सातवां-आठवां कल्प उभय प्रतिष्ठित है, आगे नौवां, दसवां, ग्यारहवां, बारहवां कल्प और नौ ग्रैवेयक, अनुत्तर विमान आकाश प्रतिष्ठित हैं।[1]

बाहल्य आदि प्रतिपादन

२०१. (अ) सोहम्मीसाणकप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता। एवं पुच्छा ? सणंकुमारमाहिंदेसु छव्वीसं जोयणसयाइं, बंभलंतए पंचवीसं, महासुक्क-सहस्सारेसु चउवीसं, आणय-पाणय-आरणाच्चुएसु तेवीसं सयाइं। गेविज्जविमाणपुढवी बावीसं, अणुत्तरविमाणपुढवी एक्कवीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं ? गोयमा ! पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं। सणंकुमार-माहिंदेसु छ जोयणसयाइं, बंभलंतएसु सत्त, महासुक्कसहस्सारेसु अट्ठ, आणय-पाणयारणाच्चुएसु णव, गेवेज्जविमाणा णं भंते ! केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं ? गोयमा ! दस जोयणसयाइं। अणुत्तरविमाणा णं एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।

२०१. (अ) भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्प में विमानपृथ्वी कितनी मोटी है ? गौतम ! सत्ताईससौ योजन मोटी है। इसी प्रकार सबकी प्रश्न पृच्छा करनी चाहिए। सनत्कुमार और माहेन्द्र

1. घणोदहिपइट्ठाणा सुरभवणा दोसु कप्पेसु।
तिसु वायपइट्ठाणा तदुभय पइट्ठिया तिसु ॥१॥
तेण परं उवरिमगा आगासंतर-पइट्ठिया सव्वे।
एस पइट्ठाण विही उड्ढं लोए विमाणाणं ॥२॥

में विमानपृथ्वी छब्बीससौ योजन मोटी है। ब्रह्मलोक और लांतक में पच्चीससौ योजन मोटी है। महाशुक्र और सहस्रार में चौबीससौ योजन मोटी है। आणत प्राणत आरण और अच्युत कल्प में विमानपृथ्वी तेईससौ योजन मोटी है। ग्रैवेयकों में विमानपृथ्वी बाईससौ योजन मोटी है। अनुत्तर विमानों में विमानपृथ्वी इक्कीससौ योजन मोटी है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प में विमान कितने ऊंचे है ?

गौतम ! पांचसौ योजन ऊंचे हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र में छहसौ योजन, ब्रह्मलोक और लान्तक में सातसौ योजन, महाशुक्र और सहस्रार में आठसौ योजन, आणत प्राणत आरण और अच्युत में नौसौ योजन, ग्रैवेयकविमान में दससौ योजन और अनुत्तरविमान ग्यारहसौ योजन ऊंचे कहे गये हैं।

२०१ (आ) सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा किंसंठिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—आवलिया-पविट्ठा य बाहिरा य। तत्थ णं जे ते आवलिया-पविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—वट्टा, तंसा, चउरंसा। तत्थ णं जे आवलिया-बाहिरा ते णं णाणासंठिया पण्णत्ता। एवं जाव गेवेज्जविमाणा। अणुत्तरोववाइयाविमाणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—वट्टे य तंसा य।

सोहम्मीसाणेसु भंते ! विमाणा केवइयं आयाम-विक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य। जहा णरगा तहा जाव अणुत्तरोववाइया संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य। तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे से जंबुद्दीवप्पमाणे; असंखेज्जवित्थडा असंखेज्जाइं जोयणसयाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! विमाणा कइवण्णा पण्णत्ता ? गोयमा ! पंचवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—किण्हा, नीला, लोहिया, हालिद्दा, सुक्किला। सणंकुमारमाहिंदेसु चउवण्णा नीला जाव सुक्किला। बंभलोगलंतएसु तिवण्णा पण्णत्ता, लोहिया जाव सुक्किला। महासुक्कसहस्सारेसु दुवण्णा हालिद्दा य सुक्किला य। आणत-पाणतारणाच्चुएसु सुक्किला, गेवेज्जविमाणा सुक्किला, अणुत्तरोववाइयविमाणा परमसुक्किला वण्णेणं पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केरिसया पभाए पण्णत्ता ? गोयमा ! णिच्चालोया, णिच्चुज्जोया सयंपभाए पण्णत्ता जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा णिच्चालोया णिच्चुज्जोया सयंपभाए पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! से जहाणामए कोट्ठपुडाण वा जाव गंधेण पण्णत्ता, एवं जाव एत्तो इट्ठतरगा चेव जाव अणुत्तरविमाणा।

सोहम्मीसाणेसु विमाणा केरिसया फासेणं पण्णत्ता ? से जहाणामए आइणेइ वा रूएइ वा सव्वो फासो भाणियव्वो जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा।

२०१ (आ) भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प में विमानों का आकार कैसा कहा गया है ?

गौतम ! वे विमान दो तरह के हैं—१. आवलिका-प्रविष्ट और २. आवलिका बाह्य। जो

आवलिका-प्रविष्ट (पंक्तिवद्ध) विमान हैं, वे तीन प्रकार के हैं—१. गोल, २. त्रिकोण और ३. चतुष्कोण। जो आवलिका-बाह्य हैं वे नाना प्रकार के हैं। इसी तरह का कथन ग्रैवेयकविमानों पर्यन्त कहना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक विमान दो प्रकार के हैं—गोल और त्रिकोण।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प में विमानों की लम्बाई-चौड़ाई कितनी है? उनकी परिधि कितनी है? गौतम! वे विमान दो तरह के हैं—संख्यात योजन विस्तार वाले और असंख्यात योजन विस्तार वाले। जैसे नरकों का कथन किया गया है वैसा ही कथन यहां करना चाहिए; यावत् अनुत्तरोपपातिकविमान दो प्रकार के हैं—संख्यात योजन विस्तार वाले और असंख्यात योजन विस्तार वाले। जो संख्यात योजन विस्तार वाले है वे जम्बूद्वीप प्रमाण हैं और जो असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं वे असंख्यात हजार योजन विस्तार और परिधि वाले कहे गये हैं।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प में विमान कितने रंग के हैं? गौतम पांचों वर्ण के विमान हैं, यथा कृष्ण, नील, लाल, पीले और सफेद। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में विमान चार वर्ण के हैं—नील यावत् शुक्ल। ब्रह्मलोक एवं लान्तक कल्पों में विमान तीन वर्ण के हैं—लाल यावत् शुक्ल। महाशुक्र एवं सहस्रार कल्प में विमान दो रंग के हैं—पीले और सफेद। आनत प्राणत आरण और अच्युत कल्पों में विमान सफेद वर्ण के हैं। ग्रैवेयकविमान भी सफेद हैं। अनुत्तरोपपातिकविमान परम-शुक्ल वर्ण के हैं।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प में विमानों की प्रभा कैसी है? गौतम! वे विमान नित्य स्वयं की प्रभा से प्रकाशमान और नित्य उद्योत वाले हैं यावत् अनुत्तरोपपातिकविमान भी स्वयं की प्रभा से नित्यालोक और नित्योद्योत वाले कहे गये हैं।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प में विमानों की गंध कैसी कही गई है? गौतम! जैसे कोष्ठ-पुडादि सुगंधित पदार्थों की गंध होती है उससे भी इष्टतर उनकी गंध है, अनुत्तरविमान पर्यन्त ऐसा ही कथन करना चाहिए।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प में विमानों का स्पर्श कैसा कहा गया है? गौतम! जैसे अजिन चर्म, रूई आदि का मृदुल स्पर्श होता है, वैसा स्पर्श करना चाहिए, अनुत्तरोपपातिकविमान पर्यन्त ऐसा ही कहना चाहिए।

२०१ (इ) सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केमहालया पण्णत्ता? गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवे-समुद्दाणं सो चेव गमो जाव छम्मासे वीइवएज्जा जाव अत्थेगइया विमाणावासा नो वीइवएज्जा जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा, अत्थेगइयं विमाणं वीइवएज्जा, अत्थेगइए णो वीइवएज्जा।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा किमया पण्णत्ता? गोयमा! सव्वरयणामया पण्णत्ता। तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति चयंति उवचयंति। सासया णं ते विमाणा दव्वट्ठयाए जाव फासपज्जवेहिं असासया जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवा कओहिंतो उववज्जंति? उववाओ णेयव्वो जहा वक्कंतीए तिरियमणुएसु पंचिंदिएसु सम्मुच्छिमवज्जिएसु, उववाओ वक्कंतिगमेणं जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणेसु देवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव सहस्सारे। आणयादिगेवेज्जा अणुत्तरा य एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा उववज्जंति।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवइएणं कालेणं अवहिया सिया ? गोयमा ! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया जाव सहस्सारे। आणतादिसु चउसु वि। गेवेज्जेसु अणुत्तरेसु य समए समए जाव केवइयं कालेणं अवहिया सिया ? गोयमा ! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागमेत्तेणं अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया।

२०१. (इ) भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प में विमान कितने बड़े है ? गौतम ! कोइ देव जो चुटकी बजाते ही इस एक लाख योजन के लम्बे-चौड़े और तीन लाख योजन से अधिक की परिधि वाले जम्बूद्वीप की २१ बार प्रदक्षिणा कर आवे, ऐसी शीघ्रतादि विशेषणों वाली गति से निरन्तर छह मास चलता रहे, तब वह कितनेक विमानों के पास पहुंच सकता है, उन्हें लांघ सकता है और कितनेक उन विमानों को नहीं लांघ सकता है, इतने बड़े वे विमान कहे गये हैं। इसी प्रकार का कथन अनुत्तरोपपातिक विमानों तक के लिए समझना चाहिए कि कितनेक विमानों को लांघ सकता है और कितनेक विमानों को नहीं लांघ सकता है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प के विमान किसके बने हुए हैं ? गौतम ! वे सर्वरत्नमय है । उनमें बहुत से जीव और पुद्गल पैदा होते हैं, च्यवित होते हैं, इकट्ठे होते है और वृद्धि को प्राप्त करते हैं। वे विमान द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से शाश्वत हैं और स्पर्श आदि पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत हैं। ऐसा ही कथन अनुत्तरोपपातिक विमानों तक समझना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प में देव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! सम्मूर्छिम जीवों को छोड़कर शेष पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों में से आकर जीव सौधर्म और ईशान में देवरूप से उत्पन्न होते है। इस प्रकार प्रज्ञापना के छठे व्युत्क्रान्तिपद में जैसा उत्पाद कहा है वैसा यहां कह लेना चाहिए। (सहस्रार देवलोक तक उक्त रीति से तथा आगे केवल मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते है।) अनुत्तरोपपातिक विमानों तक व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार कहना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प में एक समय में कितने देव उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्यात और असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं। यह कथन सहस्रार देवलोक तक कहना चाहिए। आनत आदि चार कल्पों में, नवग्रैवेयकों में और अनुत्तरविमानों में जघन्य एक, दो, तीन यावत् उत्कृष्ट संख्यात जीव उत्पन्न होते है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प के देवों में से यदि प्रत्येक समय में एक-एक का अपहार किया जाये—निकाला जाये तो कितने काल में वे खाली हो सकेंगे ? गौतम ! वे देव असंख्यात हैं अत: यदि एक समय में एक देव का अपहार किया जाये तो असंख्यात उत्सर्पिणियों अवसर्पिणियों तक अपहार का यह क्रम चलता रहे तो भी वे कल्प खाली नहीं हो सकते। उक्त कथन सहस्रार देवलोक तक करना चाहिए। आगे के आनतादि चार कल्पों में, ग्रैवेयकों में तथा अनुत्तर विमानों के देवों के अपहार

सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में कहना चाहिए कि वे असंख्यात हैं अतः समय-समय में एक-एक का अपहार करने का क्रम पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक चलता रहे तो भी उनका अपहार पूरा नहीं हो सकता। (यह अपहार कभी हुआ नहीं, होगा नहीं, केवल संख्या बताने के लिए कल्पनामात्र है।)

२०१. (ई) सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागो, उक्कोसेणं सत्तरयणीओ। तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जइ भागो, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं। एवं एक्केक्का ओसारेत्ताणं जाव अणुत्तराणं एक्का रयणी। गेवेज्जणुत्तराणं एगे भवधारणिज्जे सरीरे उत्तरवेउव्विया णत्थि।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवाणं सरीरगा किं संघयणी पण्णत्ता ? गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी पण्णत्ता। नेवट्ठि नेव छिरा णवि ण्हारू णेव संघयणमत्थि; जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव एएसिं संघायत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवाणं सरीरगा किंसंठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा सरीरा, भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जा ते समचउरंससंठाणसंठिया पण्णत्ता। तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विया ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता जाव अच्चुओ। अवेउव्विया गेवेज्जणुत्तरा भवधारणिज्जा समचउरंससंठाणसंठिया, उत्तरवेउव्विया णत्थि।

सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! कणगत्तयरत्ताभा वण्णेणं पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु णं पउमपम्हगोरा वण्णेणं पण्णत्ता। बंभलोए णं भंते !० गोयमा ! अल्लमधुगवण्णाभा। एवं जाव गेवेज्जा। अणुत्तरोववाइया परमसुक्किल्ला वण्णेणं पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! से जहाणामए कोट्ठपुडाण वा तहेव सव्वं मणामतरगा चेव गंधेणं पण्णत्ता। जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवाणं सरीरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! थिरमउयणिद्धसुकुमालच्छवि फासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणदेवाणं केरिसया पोग्गला उस्सासत्ताए परिणमंति ? गोयमा ! जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव एएसिं उस्सासत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववाइया; एवं आहारत्ताएवि जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणदेवाणं कइ लेस्साओ ? गोयमा ! एगा तेउलेस्सा पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु एगा पम्हलेस्सा। एवं बंभलोएवि पम्हा, सेसेसु एक्का सुक्कलेस्सा; अणुत्तरोववाइयाणं एक्का परमसुक्कलेस्सा।

सोहम्मीसाणदेवा किं सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी ? तिण्णिवि, जाव अंतिमगेवेज्जादेवा सम्मदिट्ठीवि मिच्छादिट्ठीवि सम्मामिच्छादिट्ठीवि। अणुत्तरोववाइया सम्मदिट्ठी, नो मिच्छादिट्ठी नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

सोहम्मीसाणादेवा किं णाणी अण्णाणी ? गोयमा ! दोवि तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा णियमा जाव गेवेज्जा। अणुत्तरोववाइया नाणी, णो अण्णाणी। तिण्णि णाणा तिण्णि अण्णाणा णियमा जाव गेवेज्जा। अणुत्तरोववाइया णाणी, नो अण्णाणी, तिण्णि णाणा णियमा। तिविहे जोगे, दुविहे उवओगे, सव्वेसिं जाव अणुत्तरा।

२०१. (ई) भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्प में देवों के शरीर की अवगाहना कितनी है ?

गौतम ! उनके दो प्रकार के शरीर होते हैं—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय, उनमें भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट से सात हाथ है। उत्तरवैक्रिय शरीर की अपेक्षा से जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन है। इस प्रकार आगे-आगे के कल्पों में एक-एक हाथ कम करते जाना चाहिए, यावत् अनुत्तरोपपातिक देवों की एक हाथ की अवगाहना रह जाती है। (जैसे सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प में उत्कृष्ट भवधारणीय शरीर की अवगाहना छह हाथ प्रमाण, ब्रह्मलोक-लान्तक में पांच हाथ, महाशुक्र-सहस्रार में चार हाथ, आनत-प्राणत-आरण-अच्युत में तीन हाथ, नवग्रैवेयक में दो हाथ और अनुत्तर विमानों में एक हाथ प्रमाण अवगाहना है।) ग्रैवेयकों और अनुत्तर विमानों में केवल भवधारणीय शरीर होता है। वे देव उत्तरविक्रिया नहीं करते।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प में देवों के शरीर का संहनन कौनसा है ?

गौतम ! छह संहननों में से एक भी संहनन उनमें नहीं होता; क्योंकि उनके शरीर में न हड्डी होती है, न शिराएं होती हैं और न नसें ही होती हैं। अतः वे असंहननी हैं। जो पुद्गल इष्ट, कान्त यावत् मनोज्ञ-मनाम होते हैं, वे उनके शरीर रूप में एकत्रित होकर तथारूप में परिणत होते हैं। यही कथन अनुत्तरोपपातिक देवों तक कहना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प में देवों के शरीर का संस्थान कैसा है ?

गौतम ! उनके शरीर दो प्रकार के हैं—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। जो भवधारणीय शरीर है, उसका समचतुरस्रसंस्थान है और जो उत्तरवैक्रिय शरीर है, उनका संस्थान (आकार) नाना प्रकार का होता है। यह कथन अच्युत देवलोक तक कहना चाहिए। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों के देव उत्तर-विकुर्वणा नहीं करते। उनका भवधारणीय शरीर समचतुरस्रसंस्थान वाला है। उत्तरविक्रिया वहां नहीं है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान के देवों के शरीर का वर्ण कैसा है ?

गौतम ! तपे हुए स्वर्ण के समान लाल आभायुक्त उनका वर्ण है। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के देवों का वर्ण पद्म, कमल के पराग (केशर) के समान गौर है। ब्रह्मलोक के देव गीले महुए के वर्ण वाले (सफेद) हैं। इसी प्रकार ग्रैवेयक देवों तक सफेद वर्ण कहना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक देवों के शरीर का वर्ण परमशुक्ल है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्पों के देवों के शरीर की गंध कैसी है ?

गौतम ! जैसे कोष्ठपुट आदि सुगंधित द्रव्यों की सुगंध होती है, उससे भी अधिक इष्ट, कान्त यावत् मनाम उनके शरीर की गंध होती है। अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त ऐसा ही कथन करना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्पों के देवों के शरीर का स्पर्श कैसा कहा गया है ?

गौतम ! उनके शरीर का स्पर्श स्थिर रूप से मृदु, स्निग्ध और मुलायम छवि वाला कहा गया है। इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिकदेवों पर्यन्त कहना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान देवों के श्वास के रूप में कैसे पुद्‌गल परिणत होते है ?

गौतम ! जो पुद्‌गल इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनाम होते हैं, वे उनके श्वास के रूप में परिणत होते हैं। यही कथन अनुत्तरोपपातिकदेवों तक कहना चाहिए तथा यही बात उनके आहार रूप में परिणत होने वाले पुद्‌गलों के सम्बन्ध में जाननी चाहिए। यही कथन अनुत्तरोपपातिकदेवों पर्यन्त समझना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान देवलोक के देवों के कितनी लेश्याएं होती हैं ?

गौतम ! उनके मात्र एक तेजोलेश्या होती है। सनत्कुमार और माहेन्द्र में एक पद्मलेश्या होती है, ब्रह्मलोक में भी पद्मलेश्या होती है। शेष सब में केवल शुक्ललेश्या होती है। अनुत्तरोपपातिकदेवों में परमशुक्ललेश्या होती है।[1]

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प के देव सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं ?

गौतम ! तीनों प्रकार के हैं। ग्रैवेयक विमानों तक के देव सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि-मिश्रदृष्टि तीनों प्रकार के हैं। अनुत्तर विमानों के देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि वाले नहीं होते।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प के देव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

गौतम ! दोनों प्रकार के हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं वे नियम से तीन अज्ञान वाले हैं। यह कथन ग्रैवेयकविमान तक करना चाहिए। अनुत्तरोपपातिकदेव ज्ञानी ही हैं—अज्ञानी नही। इस प्रकार ग्रैवेयकदेवों तक तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की नियमा है। अनुत्तरोपपातिकदेव ज्ञानी ही हैं—अज्ञानी नहीं। इस प्रकार ग्रैवेयकदेवों तक तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की नियमा है। अनुत्तरोपपातिकदेव ज्ञानी ही हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें तीन ज्ञान नियमतः होते ही हैं।

इसी प्रकार उन देवों में तीन योग और दो उपयोग भी कहने चाहिए। सौधर्म-ईशान से लगाकर अनुत्तरोपपातिक पर्यन्त सब देवों में तीन योग और दो उपयोग पाये जाते हैं।

अवधिक्षेत्रादि प्ररूपण

२०२. सोहम्मीसाणेसु देवा ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव रयणप्पमापुढवी, उड्ढं जाव साइं विमाणाइं, तिरियं जाव असंखेज्जा दीवसमुद्दा एवं—

---

1. किण्हा नीला काऊ तेउलेस्सा य भवणवंतरिया।
जोइस सोहम्मीसाण तेउलेस्सा मुणेयव्वा॥ १॥
कप्पे सणंकुमारे माहिंदे चेव बंभलोए य।
एएसु पम्हलेस्सा तेण परं सुक्कलेस्सा य॥ २॥

सक्कीसाणा पढमं दोच्चं च सणंकुमारमाहिंदा।
तच्चं च बंभलंतक सुक्कसहस्सारगा चउत्थि ॥ १ ॥

आणयपाणयकप्पे देवा पासंति पंचमिं पुढवीं।
तं चेव आरणच्चुय ओहिनाणेण पासंति ॥ २ ॥

छट्ठिं हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जा सत्तमिं च उवरिल्ला।
संभिण्णलोगनालिं पासंति अणुत्तरा देवा ॥ ३ ॥

२०२. भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्प के देव अवधिज्ञान के द्वारा कितने क्षेत्र को जानते हैं—देखते हैं?

गौतम! जघन्यतः अंगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र को और उत्कृष्ट से नीची दिशा में रत्नप्रभापृथ्वी तक, ऊर्ध्वदिशा में अपने-अपने विमानों के ऊपरी भाग ध्वजा-पताका तक और तिरछीदिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों को जानते-देखते है। (इस विषय को तीन गाथाओं में कहा है—)

शक्र और ईशान प्रथम रत्नप्रभा नरकपृथ्वी के चरमान्त तक, सनत्कुमार और माहेन्द्र दूसरी पृथ्वी शर्कराप्रभा के चरमान्त तक, ब्रह्म और लांतक तीसरी पृथ्वी तक, शुक्र और सहस्रार चौथी पृथ्वी तक, आणत-प्राणत-आरण-अच्युत कल्प के देव पाचवीं पृथ्वी तक अवधिज्ञान के द्वारा जानते-देखते है। अधस्तनग्रैवेयक, मध्यमग्रैवेयक देव छठी नरक पृथ्वी के चरमान्त तक देखते हैं और उपरितन-ग्रैवेयक देव सातवीं नरकपृथ्वी तक देखते है। अनुत्तरविमानवासी देव सम्पूर्ण चौदह रज्जू प्रमाण लोकनाली को अवधिज्ञान के द्वारा जानते-देखते हैं।

विवेचन—यहा सौधर्म-ईशान कल्प के देवों का अवधिज्ञान जघन्यतः अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र बताया है। यहां ऐसी शंका होती है कि अंगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण क्षेत्र वाला जघन्य अवधिज्ञान तो मनुष्य और तिर्यंचों में ही होता है। देवों मे तो मध्यम अवधिज्ञान होता है। तो यहां सौधर्म ईशान में जघन्य अवधिज्ञान कैसे कहा गया है? इसका समाधान इस प्रकार है कि यहां जिस जघन्य अवधिज्ञान का देवों में होना बताया है, वह उन सौधर्मादि देवों के उपपातकाल में पारभविक अवधिज्ञान को लेकर बतलाया गया है। तद्भवज अवधिज्ञान को लेकर नहीं।[1] प्रज्ञापना में उत्कृष्ट अवधिज्ञान को लेकर जो कथन किया गया है—वही यहां निर्दिष्ट है। ऊपर मूल में दी गई तीन गाथाओं और उनके अर्थ से वह स्पष्ट हो है।

२०३. सोहम्मीसाणेसु णं भंते! देवाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता? गोयमा! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए, तेजससमुग्घाए। एवं जाव अच्चुए। गेवेज्जाणं आदिल्ला तिण्णिसमुग्घाया पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणदेवा भंते! केरिसयं खुहपिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति? गोयमा! णत्थि खुहपिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति जाव अणुत्तरोववाइया।

१. वेमाणियाणमंगुलभागमसंखं जहन्नओ ओही।
उववाए परभविओ तब्भवओ होइ तो पच्छा ॥ १ ॥

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवा एगत्तं पभू विउव्वित्तए, पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए ? हंता पभू; एगत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवं वा जाव पंचिंदियरूवं वा, पुहुत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवाणि वा जाव पंचिंदियरूवाणि वा; ताइं संखेज्जाइंपि असंखेज्जाइंपि सरिसाइंपि असरिसाइंपि संबद्धाइंपि असंबद्धाइंपि रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अप्पणा जहिच्छियाइं कज्जाइं करेंति जाव अच्चुओ।

गेविज्जणुत्तरोववाइयादेवा किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए, पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए ? गोयमा ! एगत्तंपि पुहुत्तंपि। नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा विउव्वंति वा विउव्विस्संति वा।

सोहम्मीसाणदेवा केरिसयं सायासोक्खं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ? गोयमा ! मणुण्णा सद्दा जाव मणुण्णा फासा जाव गेविज्जा। अणुत्तरोववाइया अणुत्तरा सद्दा जाव फासा।

सोहम्मीसाणेसु देवाणं केरिसया इड्ढी पण्णत्ता ? गोयमा ! महड्ढिया महज्जुइया जाव महाणुभागा इड्ढीए पण्णत्ता जाव अच्चुओ। गेविज्जणुत्तरा य सव्वे महिड्ढिया जाव सव्वे महाणुभागा अणिंदा जाव अहमिंदा णामं णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो !

२०३. भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्पों में देवों में कितने समुद्घात कहे हैं ?

गौतम ! पांच समुद्घात होते हैं—१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात, ३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात और ५. तेजससमुद्घात। इसी प्रकार अच्युतदेवलोक तक पांच समुद्घात कहने चाहिए। ग्रैवेयकदेवों के आदि के तीन समुद्घात कहे गये हैं—

वेदना, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान देवलोक के देव कैसी भूख-प्यास का अनुभव करते हुए विचरते हैं ? गौतम ! यह शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उन देवों को भूख-प्यास की वेदना होती ही नहीं है। अनुत्तरोपपातिकदेवों पर्यन्त इसी प्रकार का कथन करना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्पों के देव एकरूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं या बहुत सारे रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ? गौतम ! दोनों प्रकार की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं। एक की विकुर्वणा करते हुए वे एकेन्द्रिय का रूप यावत् पंचेन्द्रिय का रूप बना सकते हैं और बहुरूप की विकुर्वणा करते हुए वे बहुत सारे एकेन्द्रिय रूपों की यावत् पंचेन्द्रिय रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं। वे संख्यात अथवा असंख्यात सरीखे या भिन्न-भिन्न और संबद्ध (आत्मप्रदेशों से समवेत) असंबद्ध (आत्मप्रदेशों से भिन्न) नाना रूप बनाकर इच्छानुसार कार्य करते हैं। ऐसा कथन अच्युतदेवों पर्यन्त कहना चाहिए।

भगवन् ! ग्रैवेयकदेव और अनुत्तर विमानों के देव एक रूप बनाने में समर्थ हैं या बहुत सारे रूप बनाने में समर्थ हैं ? गौतम ! वे एकरूप भी बना सकते हैं और बहुत सारे रूप भी बना सकते हैं। लेकिन उन्होंने ऐसी विकुर्वणा न तो पहले कभी की है, न वर्तमान में करते हैं और न भविष्य में कभी करेंगे। (क्योंकि वे उत्तरविक्रिया करने की शक्ति से सम्पन्न होने पर भी प्रयोजन के अभाव तथा प्रकृति की उपशान्तता से विक्रिया नहीं करते।)

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प के देव किस प्रकार का साता-सौख्य अनुभव करते हुए विचरते हैं ?

गौतम ! मनोज्ञ शब्द यावत् मनोज्ञ स्पर्शो द्वारा सुख का अनुभव करते हुए विचरते है। यह कथन ग्रैवेयकदेवों तक समझना चाहिए। अनुत्तरोपपातिकदेव अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) शब्दजन्य यावत् अनुत्तर स्पर्शजन्य सुखों का अनुभव करते हैं।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान देवों की ऋद्धि कैसी है ? गौतम ! वे महान् ऋद्धिवाले, महाद्युतिवाले यावत् महाप्रभावशाली ऋद्धि से युक्त हैं। अच्युतविमान पर्यन्त ऐसा कहना चाहिए।

ग्रैवेयकविमानों और अनुत्तरविमानों में सब देव महान् ऋद्धिवाले यावत् महाप्रभावशाली हैं। वहां कोई इन्द्र नहीं है। सब "अहमिन्द्र" है, वहां छोटे-बड़े का भेद नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे देव अहमिन्द्र कहलाते है।

२०४. सोहम्मीसाणा देवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्वियसरीरा य, अवेउव्विय-सरीरा य। तत्थ णं जे से वेउव्वियसरीरा ते हारविराइयवच्छा जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा जाव पडिरूवा। तत्थ णं जे से अवेउव्वियसरीरा ते णं आभरणवसणरहिआ पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवीओ केरिसयाओ विभूसाए पण्णत्ताओ ? गोयमा ! दुविहाओ पण्णत्ताओ तं जहा—वेउव्वियसरीराओ य अवेउव्वियसरीराओ य। तत्थ णं जाओ वेउव्विय-सरीराओ ताओ सुवण्णसद्दालाओ सुवण्णसद्दालाइं वत्थाइं पवर परिहियाओ चंदाणणाओ चंदविला-सिणीओ चंदद्धसमणिडालाओ सिंगारागारचारुवेसाओ संगय जाव पासाइयाओ जाव पडिरूवाओ। तत्थ णं जाओ अवेउव्वियसरीराओ ताओ णं आभरणवसणरहियाओ पगइत्थाओ विभूसाए पण्णत्ताओ। सेसेसु देवीओ णत्थि जाव अच्चुओ।

गेवेज्जगदेवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता ? गोयमा ! आभरणवसणरहिया एवं देवी णत्थि भाणियव्वं। पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता एवं अणुत्तरावि।

सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ? गोयमा ! इट्ठा सद्दा इट्ठा रूवा जाव फासा। एवं जाव गेवेज्जा। अणुत्तरोववाइयाणं अणुत्तरा सद्दा जाव अणुत्तरा फासा।

ठिई सव्वेसिं भाणियव्वा। अणंतरं चयंति, चइत्ता जे जहिं गच्छंति तं भाणियव्वं।

२०४. भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प के देव विभूषा की दृष्टि से कैसे हैं ?

गौतम वे देव दो प्रकार के हैं—वैक्रियशरीर वाले और अवैक्रियशरीर वाले। उनमें जो वैक्रियशरीर (उत्तरवैक्रिय) वाले हैं वे हारों से सुशोभित वक्षस्थल वाले यावत् दसों दिशाओं को उद्योतित करने वाले, प्रभासित करने वाले यावत् प्रतिरूप हैं। जो अवैक्रियशरीर (भवधारणीय-शरीर) वाले हैं वे आभरण और वस्त्रों से रहित हैं और स्वाभाविक विभूषण से सम्पन्न हैं।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्पों में देवियां विभूषा की दृष्टि से कैसी हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार की हैं—उत्तरवैक्रियशरीर वाली और अवैक्रियशरीर (भवधारणीयशरीर) वाली। इनमें जो उत्तरवैक्रियशरीर वाली वे स्वर्ण के नूपुरादि आभूषणों की ध्वनि से युक्त हैं तथा स्वर्ण की बजती किंकिणियों वाले वस्त्रों को तथा उद्भट वेश को पहनी हुई हैं, चन्द्र के समान उनका मुखमण्डल है,

चन्द्र के समान विलास वाली हैं, अर्धचन्द्र के समान भाल वाली हैं, वे शृंगार की साक्षात् मूर्ति हैं और सुन्दर परिधान वाली हैं, वे सुन्दर यावत् दर्शनीय, प्रसन्नता पैदा करने वाली और सौन्दर्य की प्रतीक हैं। उनमें जो अविकुर्वित शरीर वाली हैं वे आभूषणों और वस्त्रों से रहित स्वाभाविक-सहज सौन्दर्य वाली है।

सौधर्म-ईशान को छोड़कर शेष कल्पों में देव ही हैं, वहां देवियां नहीं हैं। अतः अच्युतकल्प पर्यन्त देवों की विभूषा का वर्णन उक्त रीति के अनुसार ही करना चाहिए। ग्रैवेयकदेवों की विभूषा कैसी है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि गौतम ! वे देव आभरण और वस्त्रों की विभूषा से रहित हैं, स्वाभाविक विभूषा से सम्पन्न हैं। वहां देवियां नहीं हैं। इसी प्रकार अनुत्तरविमान के देवों की विभूषा का कथन भी कर लेना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प में देव कैसे कामभोगों का अनुभव करते हुए विचरते हैं ? गौतम ! इष्ट शब्द, इष्ट रूप यावत् इष्ट स्पर्श जन्य सुखों का अनुभव करते हैं। ग्रैवेयकदेवों तक उक्त रीति से कहना चाहिए। अनुत्तरविमान के देव अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्श जन्य सुख का अनुभव करते हैं।

सब वैमानिक देवों की स्थिति कहनी चाहिए तथा देवभव से च्यवकर कहां उत्पन्न होते हैं— यह उद्वर्तनाद्वार कहना चाहिए।

विवेचन—उक्त सूत्र में स्थिति और उद्वर्तना का निर्देशमात्र किया गया है। अतएव संक्षेप में उसकी स्पष्टता करना यहां आवश्यक है। स्थिति इस प्रकार है—

क्र. सं.	कल्पादि के नाम	जघन्यस्थिति	उत्कृष्टस्थिति
१.	सौधर्मकल्प	१ पल्योपम	२ सागरोपम
२.	ईशानकल्प	१ पल्यो. से कुछ अधिक	२ सागरोपम से कुछ अधिक
३.	सनत्कुमारकल्प	२ सागरोपम	७ सागरोपम
४.	माहेन्द्रकल्प	२ सागरोपम से अधिक	७ सागरोपम से अधिक
५.	ब्रह्मलोककल्प	७ सागरोपम	१० सागरोपम
६.	लान्तककल्प	१० सागरोपम	१४ सागरोपम
७.	महाशुक्रकल्प	१४ सागरोपम	१७ सागरोपम
८.	सहस्रारकल्प	१७ सागरोपम	१८ सागरोपम
९.	आनतकल्प	१८ सागरोपम	१९ सागरोपम
१०.	प्राणतकल्प	१९ सागरोपम	२० सागरोपम
११.	आरणकल्प	२० सागरोपम	२१ सागरोपम
१२.	अच्युतकल्प	२१ सागरोपम	२२ सागरोपम

देवों के नाम	जघन्यस्थिति	उत्कृष्टस्थिति
प्रथम ग्रैवेयक	२२ सागरोपम	२३ सागरोपम
द्वितीय ग्रैवेयक	२३ सागरोपम	२४ सागरोपम
तृतीय ग्रैवेयक	२४ सागरोपम	२५ सागरोपम
चतुर्थ ग्रैवेयक	२५ सागरोपम	२६ सागरोपम
पंचम ग्रैवेयक	२६ सागरोपम	२७ सागरोपम
षष्ठ ग्रैवेयक	२७ सागरोपम	२८ सागरोपम
सप्तम ग्रैवेयक	२८ सागरोपम	२९ सागरोपम
अष्टम ग्रैवेयक	२९ सागरोपम	३० सागरोपम
नवम ग्रैवेयक	३० सागरोपम	३१ सागरोपम
विजय अनुत्तर विमान	३१ सागरोपम	३२ सागरोपम
वैजयंत अनुत्तर विमान	३१ सागरोपम	३२ सागरोपम
जयंत अनुत्तर विमान	३१ सागरोपम	३२ सागरोपम
अपराजित अनुत्तर विमान	३१ सागरोपम	३२ सागरोपम
सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान	अजघन्योत्कर्ष	३३ सागरोपम

उद्वर्तनाद्वार—सौधर्म देवलोक के देव बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय अप्काय और वनस्पतिकाय में, संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। ईशानदेव भी इन्हीं में उत्पन्न होते हैं। सनत्कुमार से लेकर सहस्रार पर्यन्त के देव संख्यात वर्ष की आयुवाले पर्याप्त गर्भज तिर्यंच और मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं, ये एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते। आनत से लगाकर अनुत्तरोपपातिक देव तिर्यंच पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न नहीं होते, केवल संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं।

२०५. सोहम्मीसाणेसु भंते ! कप्पेसु सव्वपाणा सव्वभूया जाव सत्ता पुढविकाइयत्ताए[1] देवत्ताए देवित्ताए आसणसयण जाव भंडोवगरणत्ताए उववण्णपुव्वा ?

हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो। सेसेसु कप्पेसु एवं चेव नवरं नो चेव णं देवित्ताए जाव गेवेज्जगा। अणुत्तरोववाइएसुवि एवं णो चेव णं देवत्ताए देवित्ताए। सेत्तं देवा।

२०५. भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्पों में सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्त्व पृथिवीकाय के रूप में, देव के रूप में, देवी के रूप में, आसन-शयन यावत् भण्डोपकरण के रूप में पूर्व में उत्पन्न हो चुके हैं क्या ?

१. 'जाव वणस्सइकाइयत्ताए' पाठ कई प्रतियों में है, परन्तु वृत्तिकार ने उसे उचित नहीं माना है। क्योंकि वहां तेजस्काय संभव ही नहीं है।

हां, गौतम ! अनेकवार अथवा अनन्तवार उत्पन्न हो चुके हैं। शेष कल्पों में ऐसा ही कहना चाहिए, किन्तु देवी के रूप में उत्पन्न होना नहीं कहना चाहिए (क्योंकि सौधर्म-ईशान से आगे के विमानों में देवियां नहीं होती)। ग्रैवेयक विमानों तक ऐसा कहना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक विमानों में पूर्ववत् कहना चाहिये, किन्तु देव और देवीरूप में नहीं कहना चाहिए। यहां देवों का कथन पूर्ण हुआ।

विवेचन—यहां प्रश्न किया गया है कि सौधर्म देवलोक के बत्तीस लाख विमानों में से प्रत्येक में क्या सब प्राणी, भूत, जीव और सत्व पृथ्वीरूप में, देव, देवी और भंडोपकरण के रूप में पहले उत्पन्न हो चुके हैं? (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय को प्राण में सम्मिलित किया है, वनस्पति को भूत में, पंचेन्द्रियों को जीव में और शेष पृथ्वी-अप्-तेज-वायु को सत्व में शामिल किया गया है।[1] उत्तर में कहा गया है—अनेकबार अथवा अनन्तबार उत्पन्न हो चुके हैं। सांव्यवहारिक राशि के अन्तर्गत जीव प्रायः सर्वस्थानों में अनन्तबार उत्पन्न हुए हैं। यहाँ पर अनेक प्रतियों में "पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए" पाठ उपलब्ध होता है। परन्तु वृत्तिकार के अनुसार यह संगत नहीं है। क्योंकि वहां तेजस्काय का अभाव है। वृत्तिकार के अनुसार "पृथ्वीकाइयतया देवतया देवीतया" इतना ही उल्लेख संगत है। आसन, शयन यावत् भण्डोपकरण आदि पृथ्वीकायिक जीव में सम्मिलित हैं।

सौधर्म-ईशानकल्प तक ही देवियां हैं, अतएव आगे के विमानों में देवीरूप से उत्पन्न होना नहीं कहना चाहिए। ग्रैवेयक विमानों तक तो देवीरूप में उत्पन्न होने का निषेध किया गया है। अनुत्तरविमानों में देवीरूप और देवरूप दोनों का निषेध है। देवियां तो वहां होती ही नहीं। देवों का निषेध इसलिए किया गया है कि विजयादि चार विमानों में तो उत्कर्ष से दो बार, सर्वार्थसिद्ध विमान में केवल एक ही बार जीव जा सकता है, अनन्तबार नहीं। अनन्तबार न जाने की दृष्टि से ही निषेध समझना चाहिए। यहां देवों का वर्णन समाप्त होता है।

सामान्यतया भवस्थिति आदि का वर्णन

२०६. नेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, एवं सव्वेसिं पुच्छा। तिरिक्खजोणियाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं एवं मणुस्साणवि। देवाणं जहा णेरइयाणं।

देव-णेरइयाणं जा चेव ठिती सा चेव संचिट्ठणा। तिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। मणुस्से णं भंते ! मणुस्सेति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडि पुहुत्तमब्भहियाइं। णेरइयमणुस्सदेवाणं अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। तिरिक्खजोणियस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोपमसयपुहुत्तसाइरेगं।

---

१. प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः भूतास्च तरवः स्मृताः।
जीवाः पचेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्वा उदीरिता॥ —वृत्ति

एएसि णं भंते ! णेरइयाणं जाव देवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा, णेरइया असंखेज्जगुणा, देवा असंखेज्जगुणा, तिरिया अणंतगुणा। सेत्तं चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

२०६. भगवन् ! नैरयिकों की स्थिति कितनी है ?

गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। इस प्रकार सबके लिए प्रश्न कर लेना चाहिए। तिर्यंचयोनिक की जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। मनुष्यों की भी यही है। देवों की स्थिति नैरयिकों के समान जाननी चाहिए।

देव और नारक की जो स्थिति है, वही उनकी संचिट्ठणा है अर्थात् कायस्थिति है। (उसी-उसी भव में उत्पन्न होने के काल को कायस्थिति कहते हैं।)

तिर्यंच की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। भंते ! मनुष्य, मनुष्य के रूप में कितने काल तक रह सकता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है।

नैरयिक, मनुष्य और देवों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। तिर्यंचयोनियों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सौ से नौ सौ सागरोपम का होता है।

भगवन् ! इन नैरयिकों यावत् देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे थोड़े मनुष्य हैं, उनसे नैरयिक असंख्यगुण हैं, उनसे देव असंख्यगुण हैं और उनसे तिर्यंच अनन्तगुण हैं।

इस प्रकार चार प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का वर्णन पूरा होता है।

विवेचन—देवों के वर्णन के पश्चात् नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों की समुच्चय रूप से स्थिति, संचिट्ठना (कायस्थिति), अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। नारकों की जघन्यस्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। जघन्यस्थिति रत्नप्रभा नरक के प्रथम प्रस्तर की अपेक्षा से और उत्कृष्टस्थिति सप्तम नरकपृथ्वी की अपेक्षा से समझनी चाहिए।

तिर्यग्योनिकों की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। यह देवकुरु आदि की अपेक्षा से है। मनुष्यों की भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति है। देवों की जघन्य दस हजार वर्ष—भवनपति और व्यन्तर देवों की अपेक्षा से और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम विजयादि विमान की अपेक्षा से कही गई है। यह भवस्थिति बताई है।

संचिट्ठणा का अर्थ कायस्थिति है। अर्थात् कोई जीव उसी-उसी भव में जितने काल तक रह सकता है। नारकों और देवों की भवस्थिति ही उनकी कायस्थिति है। क्योंकि यह नियम है कि देव मरकर अनन्तर भव में देव नहीं होता है, नारक भी मरकर अनन्तर भव में नारक नहीं होता।[1]

१. "नो नेरइएसु उववज्जइ", "नो देव देवेसु उववज्जइ" इति वचनात्।

इसलिए कहा गया है कि देवों और नारकों की जो भवस्थिति है, वही उनकी संचिट्ठणा (कायस्थिति) है।

तिर्यग्योनिकों की संचिट्ठणा जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि तदनन्तर मरकर वे मनुष्यादि में उत्पन्न हो सकते हैं। उत्कृष्ट से उनकी संचिट्ठणा अनन्तकाल है, क्योंकि वनस्पति में अनन्तकाल तक जन्ममरण हो सकता है। अनन्तकाल का अर्थ यहां वनस्पतिकाल से है। वनस्पतिकाल का प्रमाण इस प्रकार है—काल से अनन्त उत्सर्पिणियां—अवसर्पिणियां प्रमाण, क्षेत्र से अनन्त लोक और असंख्यात पुद्गलपरावर्त प्रमाण। ये पुद्गलपरावर्त आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय हैं, उतने समझने चाहिए।

मनुष्य की संचिट्ठणा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त। तदनन्तर मरकर तिर्यग् आदि में उत्पन्न हो सकता है। उत्कृष्ट संचिट्ठणा पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है। महाविदेह आदि में सात मनुष्यभव (पूर्वकोटि आयु के) और आठवां भव देवकुरु आदि में उत्पन्न होने की अपेक्षा से समझना चाहिए।

अन्तरद्वार—कोई जीव एक भव से मरकर फिर जितने काल के बाद उसी भव मे आता है—वह अन्तर कहलाता है। नैरयिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। नरक से निकलकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त तिर्यंच या मनुष्य भव में रहकर पुनः नारक बनने की अपेक्षा से है। कोई जीव नरक से निकलकर गर्भज मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ, सब पर्याप्तियों से पूर्ण हुआ और विशिष्ट संज्ञान से युक्त होकर वैक्रियलब्धिमान होता हुआ राज्यादि का अभिलाषी, परचक्री का उपद्रव जानकर अपनी शक्ति के प्रभाव से चतुरंगिणी सेना विकुर्वित कर संग्राम करता हुआ महारौद्रध्यान ध्याता हुआ गर्भ में ही मरकर नरक में उत्पन्न होता है—इस अपेक्षा से मनुष्यभव में पैदा होकर जघन्य अन्तर्मुहूर्त में वह नारक जीव फिर नरक में उत्पन्न होता है। नरक से निकलकर तन्दुलमत्स्य के रूप में उत्पन्न होकर महारौद्रध्यान वाला बनकर अन्तर्मुहूर्त जीकर फिर नरक में पैदा होता है—इस अपेक्षा से तिर्यक्भव करके पुनः नारक उत्पन्न होने का जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त समझना चाहिए। उत्कृष्ट अन्तर वनस्पति में अनन्तकाल जन्म-मरण के पश्चात् नरक मे उत्पन्न होने पर घटित होता है।

तिर्यग्योनिकों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। कोई तिर्यंच मरकर मनुष्यभव में अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर तिर्यंच रूप में उत्पन्न हुआ, इस अपेक्षा से है। उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व से कुछ अधिक है। दो सौ सागरोपम से नौ सौ सागरोपम तक निरन्तर देव, नारक और मनुष्य भव में भ्रमण करते रहने पर घटित होता है।

मनुष्य का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है। मनुष्यभव से निकलकर अन्तर्मुहूर्त काल तक तिर्यग्भव में रहकर फिर मनुष्य बनने पर जघन्य अन्तर घटित होता है। उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल स्पष्ट ही है।

देवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। कोई जीव देवभव से च्यवकर गर्भज मनुष्य के रूप में पैदा हुआ, सब पर्याप्तियों से पूर्ण हुआ। विशिष्ट संज्ञान वाला हुआ। तथाविध श्रमण या श्रमणोपासक के पास धार्मिक आर्यवचनों को सुनकर धर्मध्यान ध्याता हुआ गर्भ में ही मरकर देवों में उत्पन्न हुआ, इस अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त काल घटित होता है। उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल का

है, जो वनस्पतिकाय में अनन्तकाल तक जन्म-मरण करते रहने के बाद देव बनने पर घटित होता है।

अल्पबहुत्वद्वार—अल्पबहुत्व विवक्षा में सबसे थोड़े मनुष्य हैं। क्योंकि वे श्रेणी के असंख्येय-भागवर्ती आकाशप्रदेशों की राशिप्रमाण हैं। उनसे नैरयिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे अंगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल को द्वितीय वर्गमूल से गुणित करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है उतने प्रमाण वाली श्रेणियों में जितने आकाशप्रदेश होते हैं, उतने प्रमाण में नैरयिक हैं। नैरयिकों से देव असंख्येयगुण हैं, क्योंकि महादण्डक में व्यन्तर और ज्योतिष्क देव नारकियों से असंख्यातगुण कहे गये है। देवों से तिर्यंच अनन्तगुण है, क्योंकि वनस्पति के जीव अनन्तानन्त कहे गये हैं।

इस प्रकार चार प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों की प्रतिपत्ति का कथन सम्पूर्ण हुआ।

॥ तृतीय प्रतिपत्ति समाप्त ॥



पञ्चविधाख्या चतुर्थ प्रतिपत्ति

२०७. तत्थ जंजे ते एवमाहंसु—पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा, ते एवमाहंसु, तं जहा—एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया।

से किं तं एगिंदिया ? एगिंदिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एवं जाव पंचिंदिया दुविहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

एगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं। बेइंदियस्स० जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि। एवं तेइंदियस्स एगूणपण्णं राइंदियाणं, चउरिंदियस्स छम्मासा, पंचिंदियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

अपज्जत्तएगिंदियस्स णं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं। एवं सव्वेसिं।

पज्जत्तेगिंदियाणं णं जाव पंचिंदियाणं पुच्छा ? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं। एवं उक्कोसियावि ठिई अंतोमुहुत्तूणा सव्वेसिं पज्जत्ताणं कायव्वा।

२०७. जो आचार्यादि ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि संसारसमापन्नक जीव पांच प्रकार के हैं, वे उनके भेद इस प्रकार कहते हैं, यथा—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय।

भगवन् ! एकेन्द्रिय जीवों के कितने प्रकार हैं ? गौतम ! एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त एकेन्द्रिय और अपर्याप्त एकेन्द्रिय। इस प्रकार पंचेन्द्रिय पर्यन्त सबके दो-दो भेद कहने चाहिये—पर्याप्त और अपर्याप्त।

भगवन् ! एकेन्द्रिय जीवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की। द्वीन्द्रिय की जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बारह वर्ष की, त्रीन्द्रिय की ४९ उनपचास रात-दिन की, चतुरिन्द्रिय की छह मास की और पंचेन्द्रिय की जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति है।

भगवन् ! अपर्याप्त एकेन्द्रिय की कितनी स्थिति है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तों की स्थिति कहनी चाहिए।

भगवन् ! पर्याप्त एकेन्द्रिय यावत् पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों की कितनी स्थिति है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बावीस हजार वर्ष की स्थिति है। इसी प्रकार सब पर्याप्तों की उत्कृष्ट स्थिति उनकी कुलस्थिति से अन्तर्मुहूर्त कम कहनी चाहिए।

२०८. एगिंदिए णं भंते ! एगिंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

बेइंदिए णं भंते ! बेइंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं जाव चउरिंदिए संखेज्जं कालं। पंचिंदिए णं भंते ! पंचिंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं सातिरेगं।

एगिंदिए णं अपज्जत्तए णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं जाव पंचिंदियअपज्जत्तए।

पज्जत्तगएगिंदिए णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं। एवं बेइंदिएवि, णवरि संखेज्जाइं वासाइं। तेइंदिए णं भंते० संखेज्जा राइंदिया। चउरिंदिए णं० संखेज्जा मासा। पज्जत्तपंचिंदिए सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं।

एगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होई ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।

बेइंदियस्स णं अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स पंचेंदियस्स। अपज्जत्तगाणं एवं चेव। पज्जत्तगाण वि एवं चेव।

२०८. भगवन् ! एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियरूप में कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यन्त रहता है।

भगवन् ! द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियरूप में कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रहता है। यावत् चतुरिन्द्रिय भी संख्यात काल तक रहता है।

भगवन् ! पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियरूप में कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम तक रहता है।

भगवन् ! अपर्याप्त एकेन्द्रिय उसी रूप में कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। इसी प्रकार अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तक कहना चाहिए।

भगवन् ! पर्याप्त एकेन्द्रिय उसी रूप में कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष तक रहता है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय का कथन करना चाहिए, विशेषता यह है कि यहां संख्यात वर्ष कहना चाहिए।

भगवन् ! त्रीन्द्रिय की पृच्छा ? संख्यात रात-दिन तक रहता है। चतुरिन्द्रिय संख्यात मास तक रहता है। पर्याप्त पंचेन्द्रिय साधिकसागरोपमशतपृथक्त्व तक रहता है।

भगवन् ! एकेन्द्रिय का अन्तर कितना कहा गया है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दो हजार सागरोपम और संख्यात वर्ष अधिक का अन्तर है। द्वीन्द्रिय का अन्तर कितना है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय का तथा अपर्याप्तक और पर्याप्तक का भी अन्तर इसी प्रकार कहना चाहिए।

विवेचन—भवस्थिति सम्बन्धी सूत्र तो स्पष्ट ही है। कायस्थिति तथा अन्तरद्वार की स्पष्टता इस प्रकार है—

एकेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, तदनन्तर मरकर द्वीन्द्रियादि में उत्पन्न हो सकते हैं। उत्कृष्ट अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल है। वनस्पति एकेन्द्रिय होने से एकेन्द्रियपद में उसका भी ग्रहण है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय सूत्रों में उत्कृष्ट कायस्थिति संख्येयकाल अर्थात् संख्येय-हजार वर्ष है, क्योंकि "विगलिंदियाणं वाससहस्सासंखेज्जा" ऐसा कहा गया है। पंचेन्द्रिय सूत्र में उत्कृष्ट कायस्थिति हजार सागरोपम से कुछ अधिक है—इतने काल तक नैरयिक, तिर्यक्, मनुष्य और देव भव में पंचेन्द्रिय रूप से बना रह सकता है।

एकेन्द्रियादि अपर्याप्तक सूत्रों में जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है, क्योंकि अपर्याप्तलब्धि का कालप्रमाण इतना ही है।

एकेन्द्रिय-पर्याप्त सूत्र में उत्कृट कायस्थिति संख्येय हजार वर्ष है। एकेन्द्रियों में पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट भवस्थिति बावीस हजार वर्ष है, अप्काय की सात हजार वर्ष, तेजस्काय की तीन अहोरात्र, वायुकाय की तीन हजार वर्ष, वनस्पतिकाय की दस हजार वर्ष की भवस्थिति है, अतः निरन्तर कतिपय पर्याप्त भवों को जोड़ने पर संख्येय हजार वर्ष ही घटित होते हैं। द्वीन्द्रिय पर्याप्त में उत्कृष्ट संख्येय वर्ष की कायस्थिति है। क्योंकि द्वीन्द्रिय की उत्कृष्ट भवस्थिति बारह वर्ष की है। सब भवों में उत्कृष्ट स्थिति तो होती नहीं, अतः कतिपय निरन्तर पर्याप्त भवों के जोड़ने से संख्येय वर्ष ही प्राप्त होते हैं, सौ वर्ष या हजार वर्ष नहीं। त्रीन्द्रिय-पर्याप्त सूत्र में संख्येय अहोरात्र की कायस्थिति है, क्योंकि उनकी भवस्थिति उत्कृष्ट उनपचास दिन की है। कतिपय निरन्तर पर्याप्त भवों की संकलना करने से संख्येय अहोरात्र ही प्राप्त होते हैं। चतुरिन्द्रिय-पर्याप्त सूत्र में संख्येय मास की उत्कृष्ट कायस्थिति है, क्योंकि उनकी भवस्थिति उत्कर्ष से छह मास है। अतः कतिपय निरन्तर पर्याप्त भवों की संकलना से संख्येय मास ही प्राप्त होते हैं। पंचेन्द्रिय-पर्याप्त सूत्र में सातिरेक सागरोपम शतपृथक्त्व की कायस्थिति है। नैरयिक-तिर्यंच-मनुष्य-देवभवों में पंचेन्द्रिय-पर्याप्त के रूप में इतने काल तक रह सकता है।

अन्तरद्वार—एकेन्द्रियों का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है; एकेन्द्रिय से निकलकर द्वीन्द्रियादि में अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पुनः एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। उत्कृष्ट अन्तर संख्येयवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। जितनी त्रसकाय की कायस्थिति है, उतना ही एकेन्द्रिय का अन्तर है। त्रसकाय की कायस्थिति संख्येयवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम की कही गई है।[1]

---

१. "तसकाइए णं भंते ! तसकाएत्ति कालओ केवच्चिरं होई ?
गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।"

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सूत्र में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सर्वत्र वनस्पतिकाल है। जो द्वीन्द्रिय से निकलकर अनन्तकाल तक वनस्पति में रहने के बाद फिर द्वीन्द्रियादि में उत्पन्न होने की अपेक्षा से समझना चाहिए।

जिस प्रकार अन्तर विषयक पांच औघिक सूत्र कहे हैं उसी प्रकार पर्याप्त विषय में अपर्याप्त विषय में भी कह लेने चाहिए।

अल्पबहुत्व द्वार

२०९. एएसि णं भंते ! एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचिंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेइंदिया विसेसाहिया, बेइंदिया विसेसाहिया, एगिंदिया अणंतगुणा।

एवं अपज्जत्तगाणं सव्वत्थोवा पंचिंदिया अपज्जत्तगा, चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा, पंचिंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदिया पज्जत्तगा अणंतगुणा, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया।

एतेसि णं भंते ! सइंदियाणं पज्जत्तग-अपज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा सइंदिया अपज्जत्तगा, सइंदियपज्जत्तगा संखेज्जगुणा। एवं एगिंदियावि।

एएसि णं भंते ! बेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्तगाणं अप्पाबहुं ? गोयमा ! सव्वत्थोवा बेइंदियपज्जत्तगा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा। एवं तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया वि।

एतेसि णं भंते ! एगिंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियाण य पज्जत्तगाण य अपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा, पंचिंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, पंचिंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, चउरिंदिया अपज्जत्ता विसेसाहिया, तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदिया पज्जत्ता संखेज्जगुणा, सइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया, सइंदिया विसेसाहिया। सेत्तं पंचविहा संसारसमावण्णगजीवा॥

२०९. भगवन् इन एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं और उनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

इसी प्रकार अपर्याप्तक एकेन्द्रियादि में सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक और उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्त अनन्तगुण हैं। उनसे सेन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार पर्याप्तक एकेन्द्रियादि में सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनन्तगुण हैं। उनसे सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

भगवन् ! इन सेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े सेन्द्रिय अपर्याप्त, उनसे सेन्द्रिय पर्याप्त संख्येयगुण हैं।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

भगवन् ! इन द्वीन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े द्वीन्द्रिय पर्याप्त, उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

भगवन् ! इन एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्तों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्त अनन्तगुण, उनसे सेन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय पर्याप्त संख्येयगुण, उनसे सेन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सेन्द्रिय विशेषाधिक।

इस प्रकार पांच प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन—(१) पहले एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रियों का सामान्यरूप से अल्पबहुत्व बताते हुए कहा गया है—सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं, क्योंकि ये पंचेन्द्रियजीव संख्यात योजन कोटी-कोटी प्रमाण विष्कंभसूची से प्रमित प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्य श्रेणियों के आकाश-प्रदेशों के बराबर हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये प्रभूत संख्येययोजन कोटीकोटिप्रमाण विष्कंभसूची के प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई श्रेणियों के आकाश-प्रदेशराशि के बराबर है। उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये प्रभूततर संख्येय कोटीकोटीप्रमाण विष्कंभसूची के प्रतर के असंख्येय-भागगत श्रेणियों की आकाशराशिप्रमाण हैं। उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये प्रभूततम संख्येय कोटीकोटीप्रमाण विष्कम्भसूची के प्रतरासंख्येयभागगत श्रेणियों के आकाश-प्रदेश-राशि के बराबर हैं। उनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय अनन्तानन्त हैं।

(२) **अपर्याप्तों का अल्पबहुत्व**—सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय अपर्याप्त हैं, क्योंकि ये एक प्रतर में अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण जितने खण्ड होते हैं, उतने प्रमाण में हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये प्रभूत अंगुलासंख्येय-भागखण्डप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये प्रभूततर प्रतरांगुलासंख्येयभागखण्डप्रमाण हैं। उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं,

क्योंकि ये प्रभूततम प्रतरांगुलासंख्येयभागखण्डप्रमाण है। उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्त अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय में अपर्याप्त जीव सदा अनन्तानन्त प्राप्त होते हैं।

(३) पर्याप्तों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय पर्याप्त हैं। क्योंकि चतुरिन्द्रिय जीव अल्पायु वाले होने से प्रभूतकाल तक नहीं रहते हैं, अतः पृच्छा के समय ये थोड़े हैं। थोड़े होते हुए भी वे प्रतर में अंगुलासंख्येयभागखण्डप्रमाण हैं। उनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये प्रभूततर अंगुलासख्येयभागखण्डप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योंकि स्वभाव से ही वे प्रभूततर अंगुलासंख्येयभागखण्डप्रमाण है। उनके एकेन्द्रिय पर्याप्त अनन्तगुण हैं। क्योंकि वनस्पतिकाय में पर्याप्त जीव अनन्त हैं।

(४) पर्याप्तापर्याप्तों का समुदित अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पर्याप्त उनसे संख्येयगुण। एकेन्द्रियों में सूक्ष्मजीव बहुत है क्योंकि वे सर्वलोकव्यापी हैं। सूक्ष्मों में अपर्याप्त थोड़े हैं और पर्याप्त संख्येयगुण है। द्वीन्द्रिय सूत्र में सबसे थोड़े द्वीन्द्रिय पर्याप्त, क्योंकि वे प्रतर में अंगुल के संख्यातवें भागप्रमाणखण्डों के बराबर हैं। उनसे अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि ये प्रतरगत अंगुलसंख्येयभागखण्ड प्रमाण हैं। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में पर्याप्त-अपर्याप्त को लेकर अल्पबहुत्व समझना चाहिए।

(५) एकेन्द्रियादि पांचों के पर्याप्त-अपर्याप्त का समुदित अल्पबहुत्व—यह पूर्वोक्त तृतीय और द्वितीय अल्पबहुत्व की भावनानुसार ही समझ लेना चाहिए। मूलपाठ के अर्थ में यह क्रमशः स्पष्टरूप से निर्दिष्ट कर दिया है।

इस प्रकार पांच प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का प्रतिपादन करने वाली चतुर्थ प्रतिपत्ति पूर्ण होती है।

षड्विधाख्या पंचम प्रतिपत्ति

२१०. तत्थ णं जेते एवमाहंसु छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा, ते एवमाहंसु, तं जहा—पुढविकाइया, आउक्काइया, तेउक्काइया, वाउकाइया वणस्सइकाइया, तसकाइया।

से किं तं पुढविकाइया ? पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता तं जहा—सुहुमपुढविकाइया, बायर-पुढविकाइया। सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एवं बायर-पुढविकाइयावि। एवं चउक्कएणं भेएणं आउतेउवाउवणस्सइकाइयाणं चउक्का णेयव्वा।

से किं तं तसकाइया ? तसकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

२१०. जो आचार्य ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि संसारसमापन्नक जीव छह प्रकार के हैं, उनका कथन इस प्रकार है—१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक और ६. त्रसकायिक।

भगवन् ! पृथ्वीकायिकों का क्या स्वरूप है ? गौतम ! पृथ्वीकायिक दो प्रकार के हैं—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादरपृथ्वीकायिक। सूक्ष्मपृथ्वीकायिक दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार बादरपृथ्वीकायिक के भी दो भेद (प्रकार) हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के चार-चार भेद कहने चाहिए।

भगवन् ! त्रसकायिक का स्वरूप क्या है ? गौतम ! त्रसकायिक दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

२११. पुढविकाइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं। एवं सव्वेसिं ठिई णेयव्वा। तसकाइयस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं जहन्नेण वि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तगाणं सव्वेसिं उक्कोसिया ठिई अंतोमुहुत्तऊणा कायव्वा।

२११. भगवन् ! पृथ्वीकायिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष। इसी प्रकार सबकी स्थिति कहनी चाहिए। त्रसकायिकों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। सब अपर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सब पर्याप्तकों की उत्कृष्ट स्थिति कुल स्थिति में से अन्तर्मुहूर्त कम करके कहनी चाहिए।

२१२. पुढविकाइए णं भंते ! पुढविकाइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया। एवं जाव आउ-तेउ-वाउक्काइयाणं, वणस्सइकाइयाणं अणंतं कालं जाव आवलियाए असंखेज्जइभागो।

तसकाइए णं भंते ! तसकाइएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं। अपज्जत्तगाणं छण्हवि जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तगाणं—

वाससहस्सा संखा पुढविदगाणिलतरुणपज्जत्ता।
तेऊ राइंदिसंखा तस सागरसयपुत्ताइं॥ १॥

[पज्जत्तगाणवि सव्वेसि एवं।]

पुढविकाइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ? गोयमा जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणप्फइकाले। एवं आउ-तेउ-वाउकाइयाणं वणस्सइकालो। तसकाइयाणवि। वणस्सइकाइयस्स पुढविकाइयकालो। एवं अपज्जत्तगाणवि वणस्सइकालो, वणस्सईणं पुढविकालो। पज्जत्तगाणवि एवं चेव वणस्सइकालो, पज्जत्तवणस्सईणं पुढविकालो।

२१२. भगवन् ! पृथ्वीकाय, पृथ्वीकाय के रूप मे कितने काल तक रह सकता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्येय काल यावत् असंख्येय लोकप्रमाण आकाशखण्डों का निर्लेपना-काल।

इसी प्रकार यावत् अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय की संचिट्ठणा जाननी चाहिए। वनस्पतिकाय की संचिट्ठणा अनन्तकाल है यावत् आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय है, उतने पुद्गलपरावर्तकाल तक।

त्रसकाय की कायस्थिति (संचिट्ठणा) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

छहों अपर्याप्तों की कायस्थिति जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त है।

पर्याप्तों में पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है। यही अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय पर्याप्तों की है। तेजस्काय पर्याप्तक की कायस्थिति संख्यात रातदिन की है, त्रसकाय पर्याप्त की कायस्थिति साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है।

भगवन् ! पृथ्वीकाय का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय का अन्तर वनस्पतिकाल है। त्रसकायिकों का अन्तर भी वनस्पतिकाल है। वनस्पतिकाय का अन्तर पृथ्वीकायिक कालप्रमाण (असंख्येयकाल) है।

इसी प्रकार अपर्याप्तकों का अन्तरकाल वनस्पतिकाल है। अपर्याप्त वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है। पर्याप्तकों का अन्तर वनस्पतिकाल है। पर्याप्त वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वीकायिक यावत् त्रसकाय की कायस्थिति (संचिट्ठणा) और अन्तर का निरूपण किया गया है। संचिट्ठणा या कायस्थिति का अर्थ है कि वह जीव उस रूप में लगातार जितने समय तक रह सकता है और अन्तर का अर्थ है कि वह जीव उस रूप से निकलकर फिर जितने समय के बाद फिर उस रूप में आता है। प्रस्तुत सूत्र में इन दो द्वारों का निरूपण है।

प्रश्न और उत्तर के रूप में जो कायस्थिति और अन्तर बताया है, वह पाठसिद्ध ही है। केवल उसमें आये हुए असंख्येयकाल और अनन्तकाल का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

असंख्येयकाल—असंख्येयकाल का निरूपण दो प्रकार से किया गया है—काल और क्षेत्र से। असंख्यात उत्सर्पिणी और असंख्यात अवसर्पिणी प्रमाण काल को असंख्येयकाल कहते है। असंख्यात लोक-प्रमाण आकाशखण्डों में से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहार करने पर जितने समय में वे आकाशखण्ड निर्लेपित (खाली) हो जाएं, उस समय को क्षेत्रापेक्षया असंख्येयकाल कहते हैं।

अनन्तकाल—यह निरूपण भी काल और क्षेत्र से किया गया है। अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण काल अनन्तकाल है। यह कालमार्गणा की दृष्टि से है। क्षेत्रमार्गणा की दृष्टि से अनन्तानन्त लोकालोकाकाशखण्डों में से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहार करने पर जितने काल में वे निर्लेप हो जायें, उस काल को अनन्तकाल समझना चाहिये। इसी अनन्तकाल को पुद्‌गलपरावर्त द्वारा कहा जाये तो असंख्येय पुद्‌गलपरावर्तरूप काल अनन्तकाल है। इन पुद्‌गलपरावर्तों की संख्या उतनी है, जितनी आवलिका के असंख्येय भाग में समयों की संख्या है।

प्रस्तुत पाठ में अन्तरद्वार में बताये हुए वनस्पतिकाल से तात्पर्य है अनन्तकाल और पृथ्वीकाय से तात्पर्य है—असंख्येयकाल।

अल्पबहुत्वद्वार

२१३. अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा तसकाइया, तेउक्काइया असंखेज्जगुणा, पुढविकाइया विसेसाहिया, आउकाइया विसेसाहिया, वाउक्काइया विसेसाहिया, वणस्सइकाइया अणंतगुणा। एवं अपज्जत्तगावि पज्जत्तगावि।

एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं पज्जत्तगाण अपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा एवं जाव विसेसाहिया? गोयमा! सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा, पुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

एएसि णं आउकाइयाणं०? सव्वत्थोवा आउक्काइया अपज्जत्तगा, पज्जत्तगा संखेज्जगुणा। जाव वणस्सइकाइया वि। सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं जाव तसकाइयाणं पज्जत्तग-अपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा? सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, तेउकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा, पुढविक्काइया आउक्काइया वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, तेउक्काइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, पुढवि-आउ-वाउ-पज्जत्तगा विसेसाहिया, वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया वणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया।

२१३. अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े त्रसकायिक, उनसे तेजस्कायिक असंख्येयगुण, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण।

अपर्याप्त पृथ्वीकायादि का अल्पबहुत्व भी उक्त प्रकार से है। पर्याप्त पृथ्वीकायादि का अल्पबहुत्व भी उक्त प्रकार ही है।

भगवन् ! पृथ्वीकाय के पर्याप्तों और अपर्याप्तों में कौन किससे अल्प, बहुत, सम या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक अपर्याप्त, उनसे पृथ्वीकायिक पर्याप्त संख्यातगुण। इसी तरह सबसे थोड़े अप्कायिक अपर्याप्तक, अप्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुण। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए। त्रसकायिकों में सबसे थोड़े पर्याप्त त्रसकायिक, उनसे अपर्याप्त त्रसकायिक असंख्येयगुण हैं।

भगवन् ! इन पृथ्वीकायिकों यावत् त्रसकायिकों के पर्याप्तों और अपर्याप्तों मे समुदित रूप में कौन किससे अल्प, बहुत, सम या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े त्रसकायिक पर्याप्तक, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे तेजस्कायिक पर्याप्त संख्येयगुण, उनसे पृथ्वी-अप्-वायुकाय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुण, उनसे सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्येयगुण, उनसे सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

विवेचन—प्रथम अल्पबहुत्व में सामान्य से छह काय का कथन है। उसमें सबसे थोड़े त्रसकायिक हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियादि त्रसकाय अन्य कायों की अपेक्षा अल्प हैं। उनसे तेजस्कायिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे असंख्येय लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रभूतासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाण है, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रभूततरासंख्येयभाग लोकाकाशप्रदेश-राशि-प्रमाण हैं। उनसे वायुकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रभूततमासंख्येयलोकाकाशप्रदेश-राशि के बराबर हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण हैं, क्योंकि वे अनन्त लोकाकाशप्रदेश-राशि तुल्य हैं।

द्वितीय अल्पबहुत्व उनके अपर्याप्त को लेकर कहा गया है। वह उक्त क्रमानुसार ही है। इनके पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व भी उक्त क्रमानुसार ही जानना चाहिए।

तृतीय अल्पबहुत्व पृथ्वीकायादि के अलग-अलग पर्याप्तों-अपर्याप्तों को लेकर कहा गया है। इसमें सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक अपर्याप्त है, उनसे पर्याप्त संख्येयगुण हैं। पृथ्वीकायिकों में सूक्ष्मजीव बहुत हैं, क्योंकि वे सकल लोकव्यापी हैं, उनमें पर्याप्त संख्येयगुण हैं। इसी तरह अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के सूत्र समझने चाहिए। त्रसकायिकों में सबसे थोड़े पर्याप्त त्रसकायिक हैं और अपर्याप्तक त्रसकायिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि पर्याप्त त्रसकायिक प्रतर के अंगुल के संख्येयभाग-खण्डप्रमाण हैं।

चौथे अल्पबहुत्व में पृथ्वीकायादिकों का पर्याप्त-अपर्याप्तरूप से समुदित अल्पबहुत्व बताया गया है। वह इस प्रकार है—सबसे थोड़े त्रसकायिक पर्याप्त, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं, कारण पहले कहा जा चुका है। उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे असंख्येय

लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उनसे पृथ्वी, अप्, वायु के अपर्याप्तक क्रम से विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रभूत-प्रभूततर-प्रभूततम असंख्येय लोकाकाशप्रदेश-राशिप्रमाण हैं। उनसे तेजस्कायिक पर्याप्त संख्येयगुण हैं, क्योंकि सूक्ष्मों में अपर्याप्तों से पर्याप्त संख्येयगुण हैं। उनसे पृथ्वी, अप्, वायु के पर्याप्त जीव क्रम से विशेषाधिक हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुण हैं, क्योंकि वे अनन्त लोकाकाशप्रदेश-राशिप्रमाण हैं। उनसे वनस्पतिकायिक पर्याप्त संख्येयगुण हैं, क्योंकि सूक्ष्मों में अपर्याप्तकों से पर्याप्त संख्येयगुण हैं। सूक्ष्म जीव सर्व बहु हैं, उनकी अपेक्षा से यह अल्पबहुत्व है।

२१४. सुहुमस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं। एवं जाव सुहुमणिओयस्स। एवं अपज्जत्तगाणवि पज्जत्तगाणवि जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं।

२१४. भगवन्! सूक्ष्म जीवों की स्थिति कितनी है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त। इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोदपर्यन्त कहना चाहिए। इस प्रकार सूक्ष्मों के पर्याप्त और अपर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में सूक्ष्म-सामान्य की स्थिति बताई गई है। सूक्ष्म जीव दो प्रकार के हैं—निगोदरूप और अनिगोदरूप। दोनों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। जघन्य अन्तर्मुहूर्त से उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त विशेषाधिक समझना चाहिए, अन्यथा उत्कृष्ट कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। इस प्रकार सूक्ष्मपृथ्वीकाय, सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेजस्काय, सूक्ष्म वायुकाय, सूक्ष्म वनस्पतिकाय और सूक्ष्म निगोद सम्बन्धी छह सूत्र कहने चाहिए।

यहाँ यह शंका की जा सकती है कि सूक्ष्म वनस्पति निगोद ही है; सूक्ष्म वनस्पति से उसका भी बोध हो जाता है, तो फिर अलग से निगोदसूत्र क्यों कहा गया है? इसका समाधान यह है—सूक्ष्म वनस्पति तो जीव रूप है और सूक्ष्म निगोद अनन्त जीवों के आधारभूत शरीर रूप है। अतएव भिन्न सूत्र की सार्थकता है। कहा गया है—"यह सारा लोक सूक्ष्म निगोदों से अंजनचूर्ण से पूर्ण समुद्गक (पेटी) की तरह सब ओर से ठसाठस भरा हुआ है। निगोदों से परिपूर्ण इस लोक में असंख्येय निगोद वृत्ताकार और बृहत्प्रमाण होने से "गोलक" कहे जाते हैं। निगोद का अर्थ है अनन्तजीवों का एक शरीर। ऐसे असंख्येय गोलक हैं और एक-एक गोलक में असंख्येय निगोद हैं और एक-एक निगोद में अनन्त जीव हैं।

एक निगोद में जो अनन्त जीव हैं उनका असंख्यातवां भाग प्रतिसमय उसमें से निकलता है और दूसरा असंख्यातवां भाग वहां उत्पन्न होता है। प्रत्येक समय यह उद्वर्तन और उत्पत्ति चलती रहती है। जैसे एक निगोद में यह उद्वर्तन और उपपात का क्रम चलता रहता है, वैसे ही सर्वलोकव्यापी निगोदों में यह उद्वर्तन और उपपात क्रिया प्रतिसमय चलती रहती है। अतएव सब निगोदों और निगोद जीवों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र कही है। अतः सब निगोद प्रतिसमय उद्वर्तन एवं उपपात द्वारा अन्तर्मुहूर्त मात्र समय में परिवर्तित हो जाते हैं, लेकिन वे शून्य नहीं होते। केवल पुराने

निकलते हैं और नये उत्पन्न होते हैं।[1]

इसी प्रकार सात सूत्र अपर्याप्त सूक्ष्मों के और सात सूत्र पर्याप्त सूक्ष्मों के कहने चाहिए। सर्वत्र जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है।

२१५. सुहुमे णं भंते ! सुहुमेत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव असंखेज्जा लोया। सव्वेसिं पुढविकालो जाव सुहुमणिओयस्स पुढविकालो। अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं; एवं पज्जत्तगाणवि सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं।

२१५. भगवन् ! सूक्ष्म, सूक्ष्मरूप में कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक रहता है। यह असंख्यातकाल असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा असंख्येय लोककाश के प्रदेशों के अपहारकाल के तुल्य है। इसी तरह सूक्ष्म पृथ्वीकाय अप्काय तेजस्काय वायुकाय वनस्पतिकाय की संचिट्ठणा का काल पृथ्वीकाल अर्थात् असंख्येयकाल है यावत् सूक्ष्म-निगोद की कायस्थिति भी पृथ्वीकाल है। सब अपर्याप्त सूक्ष्मों की कायस्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है।

२१६. सुहुमस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं; कालओ असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो। सुहुमवणस्सइकाइयस्स सुहुमणिगोदस्सवि जाव असंखेज्जइ भागो। पुढविकाइयादीणं वणस्सइकालो। एवं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणवि।

२१६. भगवन् ! सूक्ष्म, सूक्ष्म से निकलने के बाद फिर कितने समय में सूक्ष्मरूप से पैदा होता है ? यह अन्तराल कितना है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असंख्येयकाल है। यह असंख्येयकाल असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल रूप है तथा क्षेत्र से अंगुलासंख्येय भाग क्षेत्र में जितने आकाशप्रदेश हैं उन्हें प्रति समय एक-एक का अपहार करने पर जितने काल में वे निर्लेप हो जायें, वह काल असंख्येयकाल समझना चाहिए। (सूक्ष्म पृथ्वीकाय यावत् सूक्ष्म वायुकायिकों का अन्तर उत्कर्ष से वनस्पतिकाल—अनन्तकाल है, वनस्पति में जन्म लेने की अपेक्षा से।) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म-निगोद का अन्तर असंख्येय काल (पृथ्वीकाल) है। सूक्ष्म अपर्याप्तों और सूक्ष्म पर्याप्तों का अन्तर औधिकसूत्र के समान है।

---

१. गोला य असंखेज्जा, असंखनिगोदो य गोलओ भणिओ।
एक्किक्कंमि निगोए अणंत जीवा मुणेयव्वा ॥ १ ॥
एगो असंखभागो वट्टइ उव्वट्टणोववायम्मि।
एग निगोदे निच्चं एवं सेसेसु वि स एव ॥ २ ॥
अंतोमुहुत्तमेत्तं ठिई निगोयाण जंति णिद्दिट्ठा।
पल्लटंति निगोया तम्हा अंतोमुहुत्तेणं ॥ ३ ॥ —वृत्ति

२१७. एवं अप्पबहुगं—सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया, सुहुमआउ-याउ विसेसाहिया, सुहुमणिओया असंखेज्जगुणा, सुहुमवणस्सइकाइया अणंतगुणा, सुहुमा विसेसाहिया।

एवं अपज्जत्तगाणं, पज्जत्तगाणं एवं चेव। एएसि णं भंते ! सुहुमाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ?

सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा, संखेज्जगुणा पज्जत्तगा। एवं जाव सुहुमणिगोया।

एएसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं जाव सुहुमणिओयाण य पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा०।

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, सुहुमआउकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमतेउक्काइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, सुहुमपुढवि-आउ-वाउपज्जत्तगा विसेसाहिया, सुहुमणिओया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, सुहुमणिओया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सुहुमा अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, सुहुमा पज्जत्ता विसेसाहिया।

२१७. अल्पबहुत्वद्वार इस प्रकार है—सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक क्रमशः विशेषाधिक, सूक्ष्म-निगोद असंख्येयगुण, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुण और सूक्ष्म विशेषाधिक हैं।

सूक्ष्म अपर्याप्तों और सूक्ष्म पर्याप्तों का अल्पबहुत्व भी इसी क्रम से है।

भगवन् ! सूक्ष्म पर्याप्तों और सूक्ष्म अपर्याप्तों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े सूक्ष्म अपर्याप्तक हैं, सूक्ष्म पर्याप्तक उनसे संख्येयगुण हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म-निगोद पर्यन्त कहना चाहिए।

भगवन् ! सूक्ष्मों में सूक्ष्मपृथ्वीकायिक यावत् सूक्ष्म-निगोदों में पर्याप्तों और अपर्याप्तों में समुदित अल्पबहुत्व का क्रम क्या है ?

गौतम ! सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्काय अपर्याप्तक, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त संखेयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वी-अप्-वायुकायिक पर्याप्त क्रमशः विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक असंखेयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तक संखेयगुण, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुण, उनसे सूक्ष्म अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्तक संखेयगुण, उनसे सूक्ष्म पर्याप्त विशेषाधिक हैं।

बादर जीव निरूपण

२१८. बायरस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। एवं बायरतस-काइयस्सवि। बायरपुढविकाइयस्स बावीसं वास सहस्साइं, बायरआउस्स सत्त वाससहस्सं, बायर-

तेउस्स तिण्णिराइंदिया, बायरवाउस्स तिण्णि वाससहस्साइं, बायरवणस्सइकाइयस्स दसवाससहस्साइं। एवं पत्तेयसरीरबायरस्सवि । णिग्रोदस्स जहन्नेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं । एवं बायरणिगोदस्सवि, अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगाणं उक्कोसिया ठिई अंतोमुहुत्तूणा कायव्वा सव्वेसिं ।

२१८. भगवन् ! बादर की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति है ।

बादर त्रसकाय की भी यही स्थिति है । बादर पृथ्वीकाय की बावीस हजार वर्ष की, बादर अप्कायिकों की सात हजार वर्ष की, बादर तेजस्काय की तीन अहोरात्र की, बादर वायुकाय की तीन हजार वर्ष की और बादर वनस्पति की दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट स्थिति है । इसी तरह प्रत्येकशरीर बादर की भी यही स्थिति है ।

निगोद की जघन्य से भी और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति है । बादर निगोद की भी यही स्थिति है । सब अपर्याप्त बादरों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और सब पर्याप्तों की उत्कृष्ट स्थिति उनकी कुल स्थिति में से अन्तर्मुहूर्त कम करके कहना चाहिए ।

बादर की कायस्थिति

२१९. बायरे णं भंते ! बायरेत्ति कालग्रो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं काल—असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीग्रो कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो ।

बायरपुढविकाइय-ग्राउ-तेउ-वाउ० पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयस्स बायर णिग्रोदस्स (बादरवणस्सइस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कासेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीग्रो कालओ, खेत्तग्रो अंगुलस्स असंखेज्जइभागो ।

पत्तेगसरीरबादरवणस्सइकाइयस्स बायरणिगोदस्स पुढवीव । बायरणिगोदस्स णं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं—अणंता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालग्रो खेत्तओ अड्डाइज्जा पोग्गलपरियट्टा ।) एतेसिं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तरसागरोवम कोडाकोडीओ ।

संखातीयाओ समाओ अंगुल भागे तहा असंखेज्जा ।
ओहे य बायर तरु-अणुबंधो सेसओ वोच्छं ॥ १ ॥
उस्सप्पिणि-ओसप्पिणी अड्डाइय पोग्गलाण परियट्टा ।
बेउदधिसहस्सा खलु साधिया होंति तसकाए ॥ २ ॥
अंतोमुहुत्तकालो होइ अपज्जत्तगाण सव्वेसिं ।
पज्जत्तबायरस्स य बायरतसकाइयस्सावि ॥ ३ ॥
एतेसिं ठिई सागरोवम सयपुहत्तसाइरेगं ।
तेउस्स संख राइंदिया दुविहणिओदे मुहुत्तमद्धं तु ।
सेसाणं संखेज्जा वाससहस्सा य सव्वेसिं ॥ ४ ॥

२१९. भगवन् ! बादर जीव, बादर के रूप में कितने काल तक रहता है? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से असंख्यातकाल। यह असंख्यातकाल असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों के बराबर है तथा क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र के आकाशप्रदेशों का प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर जितने समय में वे निर्लेप हो जाएं, उतने काल के बराबर हैं। बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद की जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है। बादर वनस्पति की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्येयकाल है, जो कालमार्गणा से असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तुल्य है और क्षेत्रमार्गणा से अंगुलासंख्येयभाग के आकाशप्रदेशों का प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर लगने वाले काल के बराबर है। सामान्य निगोद की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है और क्षेत्रमार्गणा से ढाई पुद्गल-परावर्त तुल्य है। बादर त्रसकायसूत्र में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येयवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम की कायस्थिति कहनी चाहिए।

बादर अपर्याप्तों की कायस्थिति के दसों सूत्रों में जघन्य और उत्कृष्ट से सर्वत्र अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये।

बादर पर्याप्त के औधिकसूत्र में कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शतपृथक्त्व है। (इसके बाद अवश्य बादर रहते हुए भी पर्याप्तलब्धि नहीं रहती।) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तसूत्र में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष कहने चाहिए। (इसके बाद बादरत्व होते हुए भी पर्याप्तलब्धि नहीं रहती।) इसी प्रकार अप्कायसूत्रों में भी कहना चाहिए। तेजस्काय-सूत्र में जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट संख्यात अहोरात्र कहने चाहिए। वायुकायिक, सामान्य बादर-वनस्पति, प्रत्येक बादर वनस्पतिकाय के सूत्र बादर पर्याप्त पृथ्वीकायवत् (जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष) कहने चाहिए। सामान्य निगोद-पर्याप्तसूत्र में जघन्य, उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त; बादर त्रसकायपर्याप्तसूत्र में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शतपृथक्त्व कहना चाहिए। (इतनी स्थिति चारों गतियों में भ्रमण करने से घटित होती है)।[1]

अन्तरद्वार

२२०. अंतरं बायरस्स, बायरवणस्सइस्स, णिओदस्स, बादरणिओदस्स एतेसिं चउण्हवि पुढविकालो जाव असंखेज्जा लोया, सेसाणं वणस्सइकालो।

एवं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणवि अंतरं।

ओहे य बायरतरु ओघनिगोदे बायरणिओए य।
कालमसंखेज्जं अंतरं सेसाण वणस्सइकालो ॥१॥

२२०. औधिक बादर, बादर वनस्पति, निगोद और बादर निगोद, इन चारों का अन्तर पृथ्वीकाल है, अर्थात् असंख्यातकाल है। यह असंख्यातकाल असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के बराबर है (कालमार्गणा से) तथा क्षेत्रमार्गणा से असंख्येय लोकाकाश के प्रदेशों का प्रतिसमय एक-एक

१. सूत्रोक्त गाथाएं संक्षिप्त होने से उनके भावों को टीकानुसार स्पष्ट किया गया है।

के मान से अपहार करने पर जितने समय में वे निर्लिप्त हो जायें, उतना कालप्रमाण जानना चाहिए। (सूक्ष्म की जो कायस्थिति है, वही बादर का अन्तर जाना चाहिए।)

शेष बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक, प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक और बादर त्रसकायिक—इन छहों का अन्तर वनस्पतिकाल जानना चाहिए।

इसी तरह अपर्याप्तक और पर्याप्तक संबंधी दस-दस सूत्र भी ऊपर की तरह कहने चाहिए। यही बात गाथा में कही गई है—औघिक, बादर वनस्पति, सामान्य निगोद और बादर निगोद का अंतर संख्येयकाल है और शेष का अन्तर वनस्पतिकाल-प्रमाण है।

अल्पबहुत्वद्वार

२२१. (अ) (१) अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा बायरतसकाइया, बायरतेउक्काइया असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा, बायरनिगोया असंखेज्जगुणा, बायरपुढविकाइया असंखेज्जगुणा, बायरआउ-वाउ असंखेज्जगुणा, बायरवणस्सइकाइया अणंतगुणा, बायरा विसेसाहिया।

(२) एवं अपज्जत्तगाणवि।

(३) पज्जत्तगाणं सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया, बायरतसकाइया असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीर-बायरा असंखेज्जगुणा, सेसा तहेव जाव बादरा विसेसाहिया।

(४) एतेसि णं भंते! बायराणं पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

सव्वत्थोवा बायरा पज्जत्ता, बायरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा एवं सव्वे जाव बायरतसकाइया।

(५) एएसि णं भंते! बायराणं बायरपुढविकाइयाणं जाव बायरतसकाइयाण य पज्जत्ता-पज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा०?

सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्तगा, बायरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरणिओया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, पुढवि-आउ-वाउ-पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरतेउ अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायरवणस्सइ अपज्जत्ता असंखेज्जगुण, बायरा णिओदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरपुढवि-आउ-वाउ अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरवणस्सइ अपज्जत्तगा अणंतगुणा, बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया, बायरवणस्सइ अपज्जत्तगा असंखगुणा, बायरा अपज्जत्तगा विसेसाहिया, बायरा पज्जत्ता विसेसाहिया।

२२१. (अ) (१) प्रथम औघिक अल्पबहुत्व—

सबसे थोड़े बादर त्रसकाय, उनसे बादर तेजस्काय असंख्येयगुण, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकाय असंख्येयगुण, उनसे बादर निगोद असंख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकाय असंख्येयगुण, उनसे बादर अप्काय, बादर वायुकाय क्रमशः असंख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुण, उनसे बादर विशेषाधिक।

(२) अपर्याप्त बादरों का अल्पबहुत्व औधिकसूत्र के अनुसार ही जानना चाहिए—जैसे सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक अपर्याप्त, उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण इत्यादि औधिक क्रम।

(३) पर्याप्त बादरों का अल्पबहुत्व—

सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असंख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वायुकाय पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुण, उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक।

(४) प्रत्येक के बादर पर्याप्त-अपर्याप्तों का अल्पबहुत्व—

(सब जगह) पर्याप्त बादर थोड़े हैं और बादर अपर्याप्तक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि एक बादर पर्याप्त की निश्रा में असंख्येय बादर अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

(सब सूत्रों का कथन बादर त्रसकायिकों की तरह है।)

(५) सबका समुदित अल्पबहुत्व—

भगवन्! बादरों में—बादर पृथ्वीकाय यावत् बादर त्रसकाय के पर्याप्तों और अपर्याप्तों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्येयगुण, उनसे बादर त्रसकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुण, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त असंखेयगुण, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असंखेयगुण, उनसे पृथ्वी-अप्-वायुकाय पर्याप्तक क्रमशः असंख्यातगुण, उनसे बादर तेजस्काय अपर्याप्तक असंखेयगुण, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पति अपर्याप्त असंखेयगुण, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्तक असंखेयगुण, उनसे बादर पृथ्वी-अप्-वायुकाय अपर्याप्तक असंखेयगुण, उनसे बादर वनस्पति पर्याप्तक अनन्तगुण, उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे बादर वनस्पति अपर्याप्त असंख्यगुण, उनसे बादर अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे बादर पर्याप्त विशेषाधिक हैं।

विवेचन—सर्वप्रथम षट्काय का औधिक अल्पबहुत्व बताया है। वह इस प्रकार है—सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय आदि ही बादर त्रस हैं और वे शेष कायों की अपेक्षा अल्प हैं। उनसे बादर तेजस्कायिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे असंख्येय लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि इनके स्थान असंख्येयगुण हैं।[1] बादर

---

1. तथा चोक्तं प्रज्ञापनाया द्वितीये स्थानाख्ये पदे—अन्तोमणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु निव्वाघाएणं पन्नरससु कम्मभूमिसु, वाघाएणं पंचसु महाविदेहेसु एत्थ णं बायरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता, तथा यत्रैव बायरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता तत्थेव अपज्जत्ताणं बायरतेउकाइयाणं ठाणा पण्णत्ता।

तेज तो मनुष्यक्षेत्र मे ही है, जबकि वादर वनस्पतिकाय तीनों लोकों में है।[1] अतः क्षेत्र के असंख्येयगुण होने से वादर तेजस्कायिकों से प्रत्येकशरीर वादर वनस्पतिकायिक असंख्येयगुण हैं। उनसे बादर-निगोद असख्येयगुण है, क्योंकि अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहना होने से तथा प्रायः जल में सर्वत्र होने से—पनक, सेवाल आदि जल मे अवश्यंभावी है, अतः असंख्येयगुण घटित होते हैं।

बादर निगोद से बादर पृथ्वीकायिक असंख्येयगुण है, क्योंकि वे आठों पृथ्वियों, सब विमानों, सब भवनों और पर्वतादि में है। उनसे बादर अप्कायिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि समुद्रों में जल की प्रचुरता है। उनसे बादर वायुकायिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि पोलारों में भी वायु संभव है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुण है, क्योंकि प्रत्येक बादर निगोद में अनन्त जीव हैं। उनसे सामान्य वादर विशेषाधिक हैं, क्योंकि बादर त्रसकायिक आदि का भी उनमे समावेश होता है।

(२) दूसरा अल्पबहुत्व इन षट्कायों के अपर्याप्तकों के सम्बन्ध में है। सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक अपर्याप्त (युक्ति पहले बता दी है), उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण है, क्योंकि वे असंख्येय लोकाकाशप्रमाण हैं। इस तरह प्रागुक्तक्रम से ही अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए।

(३) तीसरा अल्पबहुत्व षट्कायों के पर्याप्तों से सम्बन्धित है। सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक है, क्योंकि ये आवलिका के समयों के वर्ग को कुछ समय न्यून आवलिका समयों से गुणित करने पर जितने समय होते हैं, उनके बराबर है। उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे प्रतर में अंगुल के संख्येयभागमात्र जितने खण्ड होते हैं, उनके बराबर हैं, उनसे प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे प्रतर में अंगुल के असंख्येयभागमात्र जितने खण्ड होते हैं, उनके तुल्य हैं। उनसे बादरनिगोद पर्याप्तक असंख्येयगुण है, क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहना वाले तथा जलाशयों में सर्वत्र होते है। उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि अतिप्रभूत संख्येय प्रतरांगुलासंख्येयभाग-खण्डप्रमाण है। उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे अतिप्रभूततरासंख्येयप्रतरांगुलासंख्येयभागप्रमाण हैं। उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि घनीकृत लोक के असंख्येय प्रतरों के संख्यातवें भागवर्ती क्षेत्र के आकाशप्रदेशों के बराबर है। उनसे बादर वनस्पति पर्याप्त अनन्तगुण है, क्योंकि प्रति बादरनिगोद में अनन्तजीव है। उनसे सामान्य बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि बादर तेजस्कायिक आदि सब पर्याप्तों का इनमें समावेश है।

(४) चौथा अल्पबहुत्व इनके प्रत्येक के पर्याप्तों और अपर्याप्तों को लेकर कहा गया है। सर्वत्र पर्याप्तों से अपर्याप्त असंख्येयगुण कहना चाहिए। बादर पृथ्वीकाय से लेकर बादर त्रसकाय तक सर्वत्र

---

१. कहि णं भंते ! बादरवणस्सइकाउयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ? गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणोदहीसु सत्तसु घणोदधिवलएसु, अहोलोए पायालेसु, भवणपत्थडेसु उड्ढलोए कप्पेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु उज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु एत्थ णं बायरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पणत्ता। तथा जत्थेव बायरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता तत्थेव बायरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता। —प्रज्ञापना स्थानपद

अपर्याप्तों से पर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि एक बादरपर्याप्त की निश्रा में असंख्येय बादर-अपर्याप्त पैदा होते हैं।[1]

(५) पांचवां अल्पबहुत्व छह कायों के पर्याप्त और अपर्याप्तों का समुदित रूप से कहा गया है। वह निम्न है—

सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर निगोद पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण। (उक्त पदों की युक्ति पूर्ववत् जाननी चाहिए।)

उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि बादर वायुकायिक पर्याप्त असंख्येयलोकाकाशप्रदेश के आकाशप्रदेशों के तुल्य हैं, किन्तु बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येय-लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। असंख्यात के असंख्यात भेद होने से यह असंख्यात पूर्व के असंख्यात से असंख्येयगुण जानना चाहिए।

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त से प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वी-कायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त यथोत्तर असंख्येयगुण कहने चाहिए। बादर वायुकायिक अपर्याप्तों से बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुण हैं, क्योंकि एक-एक बादर निगोद में अनन्त जीव हैं। उनसे सामान्य बादर पर्याप्त विशेषाधिक है, क्योंकि बादर तेजस्कायिक आदि पर्याप्तों का उनमें प्रक्षेप होता है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि एक-एक पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक निगोद की निश्रा में असंख्येय अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक निगोद उत्पन्न होते हैं। उनसे सामान्य बादर अपर्याप्त विशेषाधिक है, क्योंकि उनमें बादर तेजस्कायिक आदि अपर्याप्तों का प्रक्षेप है। उनसे पर्याप्त-अपर्याप्त विशेषण रहित सामान्य बादर विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें सब बादर पर्याप्त-अपर्याप्तों का समावेश हो जाता है। इस प्रकार बादर को लेकर पांच अल्पबहुत्व कहे हैं।

सूक्ष्म-बादरों के समुदित अल्पबहुत्व

२२१ (आ) (१) एएसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं जाव सुहुमणिगोयाणं बायराणं बादरपुढविकाइयाणं जाव बादरतसकाइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरतसकाइया, बायरतेउक्काइया असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायर-वणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा तहेव जाव बायरवाउकाइया असंखेज्जगुणा, सुहुमतेउक्काइया असंखेज्ज-गुणा, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया, सुहुम आउ० सुहुम वाउ० विसेसाहिया, सुहुमनिगोया असंखेज्ज-गुणा, बायरवणस्सइकाइया अणंतगुणा, बायरा विसेसाहिया, सुहुमवणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा, सुहुमा विसेसाहिया।

---

१. "पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति वचनात्।

(२-३) एवं अपज्जत्तगावि पज्जत्तगावि, णवरि सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्ता, बायरतसकाइया पज्जत्ता असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया पज्जत्ता असंखेज्जगुणा, सेसं तहेव जाव सुहुमपज्जत्ता विसेसाहिया।

(४) एएसि णं भंते ! सुहुमाणं बादराण य पज्जत्ताणं अपज्जत्ताण य कयरे कयरेहितो अप्पा वा० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बायरा पज्जत्ता, बायरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा, सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्ता, सुहुमपज्जत्ता संखेज्जगुणा। एवं सुहुमपुढवि बायरपुढवि जाव सुहुमणिगोदा बायरनिगोया, नवरं पत्तेयसरीरवणस्सइकाइया सव्वत्थोवा पज्जत्ता अपज्जत्ता, असंखेज्जगुणा। एवं बायरतसकाइयावि।

(५) सव्वेसि पज्जत्तापज्जत्तगाणं कयरे कयरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्ता, बायरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, ते चेव अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायरवणस्सइ अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरणिओया पज्जत्ता असंखेज्ज०, बायरपुढवि० असंखे०, आउ-वाउ पज्जत्ता असंखेज्जगुणा, बायरतेउकाइया अपज्जत्ता असंखे०, पत्तेयसरीर० असंखे०, बायरणिगोयपज्जत्ता असं०, बायरपुढवि० आउ-वाउ-काइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, सुहुमतेउक्काइया अपज्जत्तगा असं०, सुहुमपुढवि० आउ-वाउ-अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमतेउकाइयपज्जत्तगा संखेज्जगुणा, सुहुमपुढवि-आउ-वाउपज्जत्तगा विसेसाहिया, सहुमणिगोया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, सहुमणिगोया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायर-वणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा, बायरा पज्जत्तगा विसेसाहिया, बायरवणस्सइ अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा, बायरा अपज्जत्ता विसेसाहिया, बायरा विसेसाहिया, सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, सुहुमा अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा, सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाहिया, सुहुमा विसेसाहिया।

२२१. स्पष्टता के लिए और पुनरावृत्ति को टालने के लिए प्रस्तुत पाठ का अर्थ विवेचनयुक्त दिया जाता है। प्रस्तुत पाठ में सूक्ष्मों और बादरों के समुदित पांच अल्पबहुत्व कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) प्रथम अल्पबहुत्व—भगवन् ! सूक्ष्मों में सूक्ष्म पृथ्वीकायिक यावत् सूक्ष्म निगोदों में तथा बादरों में—बादर पृथ्वीकायिक यावत् बादर त्रसकायिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक हैं, उनसे बादर तेजस्कायिक असंख्येयगुण हैं, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्येयगुण हैं, उनसे बादर निगोद असंख्येयगुण हैं, उनसे बादर पृथ्वीकाय असंख्येयगुण हैं, उनसे बादर अप्काय, बादर वायुकाय क्रमशः असंख्येयगुण हैं, उन बादर वायुकाय से सूक्ष्म तेजस्काय असंख्येयगुण हैं, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकाय विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म वायुकाय विशेषाधिक हैं,उनसे सूक्ष्मनिगोद असंख्यातगुण हैं, उन सूक्ष्मनिगोद से बादरवनस्पति-

कायिक अनन्तगुण हैं, उनसे बादर विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असंख्येयगुण हैं, उनसे (सामान्य) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं।

(२) द्वितीय अल्पबहुत्व इनके ही अपर्याप्तकों को लेकर है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक अपर्याप्त, उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुण, उनसे सामान्य बादर अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सामान्य सूक्ष्म अपर्याप्त विशेषाधिक हैं।

(३) तीसरा अल्पबहुत्व इनके ही पर्याप्तकों को लेकर कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुण, उनसे सामान्य बादर पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सामान्य सूक्ष्म पर्याप्त विशेषाधिक हैं।

(४) चौथा अल्पबहुत्व इन प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्तों के सम्बन्ध में है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े बादर पर्याप्त हैं, क्योंकि ये परिमित क्षेत्रवर्ती हैं। उनसे बादर अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि प्रत्येक बादर पर्याप्त की निश्रा में असंख्येय बादर अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

उनसे सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे सर्वलोकव्यापी होने से उनका क्षेत्र असंख्येयगुण है। उनसे सूक्ष्म पर्याप्त संख्येयगुण हैं, क्योंकि चिरकाल-स्थायी होने से ये सदैव संख्येयगुण प्राप्त होते हैं।

सब संख्या में यहां सात सूत्र हैं—१. सामान्य से सूक्ष्म-बादर पर्याप्त-अपर्याप्त विषयक, २. सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तापर्याप्तविषयक, ३. सूक्ष्म-बादर अप्कायिक पर्याप्तापर्याप्त विषयक, ४. सूक्ष्म-बादर तेजस्कायिक पर्याप्तापर्याप्त विषयक, ५. सूक्ष्म-बादर वायुकायिक पर्याप्तापर्याप्त विषयक, ६. सूक्ष्म-बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तापर्याप्त विषयक और ७. सूक्ष्म-बादर निगोद पर्याप्तापर्याप्त विषयक।

सूक्ष्मों में अपर्याप्त थोड़े और पर्याप्त संख्येयगुण हैं और बादरों में पर्याप्त थोड़े और अपर्याप्त असंख्यातगुण हैं।

(५) पांचवां अल्पबहुत्व इन सबका समुदित रूप में कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर त्रसकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त संख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण।

(ये बादर पर्याप्त तेजस्काय से लेकर पर्याप्त निगोद तक के जीव यद्यपि अन्यत्र समान रूप से असंख्येय लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण कहे हैं, तथापि असंख्यात के असंख्यात भेद होने से यहां जो कहीं असंख्येयगुण, संख्येयगुण और विशेषाधिक कहे हैं, उनमें कोई विरोध नहीं समझना चाहिए।)

उन पर्याप्त सूक्ष्म निगोदों से बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुण हैं।

उनसे सामान्य बादर पर्याप्त विशेषाधिक हैं, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण हैं, उनसे सामान्य बादर अपर्याप्त विशेषाधिक है, उनसे सामान्यतः बादर विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण है, उनसे सामान्य सूक्ष्म अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त संख्येयगुण हैं, उनसे सामान्य सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, उनसे सामान्य पर्याप्त-अपर्याप्त विशेषणरहित सूक्ष्म विशेषाधिक है।

निगोद की वक्तव्यता

२२२. कतिविहा णं भंते ! णिओया पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा णिओया पण्णत्ता, तं जहा—णिओया य णिओदजीवा य। णिओया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमणिओदा य बादरणिओदा य।

सुहुमणिओया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। बायरणिओयावि दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

णिओदजीवा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमणिगोदजीवा य बादरणिगोयजीवा य। सुहुमणिगोदजीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। बायरणिगोदजीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

२२२. भगवन् ! निगोद कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! निगोद दो प्रकार के हैं—निगोद और निगोदजीव !

भगवन् ! निगोद कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! दो प्रकार के हैं—सूक्ष्मनिगोद और बादर-निगोद ।

भगवन् ! सूक्ष्मनिगोद कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

बादरनिगोद भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

भगवन् ! निगोदजीव कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! दो प्रकार के हैं—सूक्ष्मनिगोदजीव और बादर-निगोदजीव । सूक्ष्मनिगोदजीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । बादर-निगोदजीव भी दो प्रकार के है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

विवेचन—निगोद जैनसिद्धान्त का पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है अनन्त जीवों का आधार अथवा आश्रय । वैसे सामान्यतया निगोद सूक्ष्म और साधारण वनस्पति रूप है, तथापि इसकी अलग-सी पहचान है । इसलिए इसके दो प्रकार कहे गये हैं—निगोद और निगोदजीव । निगोद अनन्त जीवों का आधारभूत शरीर है और निगोदजीव एक ही औदारिकशरीर में रहे हुए भिन्न-भिन्न तैजस-कार्मणशरीर वाले अनन्त जीवात्मक है ।[1] आगम में कहा है—यह सारा लोक सूक्ष्मनिगोदों से अंजनचूर्ण से परिपूर्ण समुद्गक की तरह ठसाठस भरा हुआ है । निगोदों से परिपूर्ण इस लोक में असंख्येय निगोद वृत्ताकार और बृहत्प्रमाण होने से "गोलक" कहे जाते हैं । ऐसे असंख्येय गोले हैं और एक-एक गोले में असंख्येय निगोद हैं और एक-एक निगोद में अनन्त जीव हैं ।

निगोद और निगोदजीव दोनों दो-दो प्रकार के हैं—सूक्ष्मनिगोद और बादरनिगोद । सूक्ष्मनिगोद सारे लोक में रहे हुए हैं और बादरनिगोद मूल, कंद आदि रूप हैं । ये दोनों सूक्ष्म और बादर निगोदजीव दो-दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त ।

२२३. णिगोदा णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ? गोयमा ! णो संखेज्जा, असंखेज्जा, णो अणंता । एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि ।

सुहुमणिगोदा णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ? गोयमा ! णो संखेज्जा, असंखेज्जा, णो अणंता । एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि ।

एवं बायरावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि णो संखेज्जा, असंखेज्जा, णो अणंता ।

णिओदजीवा णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ? गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता । एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । एवं सुहुमणिगोदजीवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । बायरणिगोदजीवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि ।

णिगोदा णं भंते ! पदेसट्ठयाए किं संखेज्जा० पुच्छा ? गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता । एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । एवं सुहुमणिगोदावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । पएसट्ठयाए सव्वे अणंता । एवं बायरनिगोदावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । पएसट्ठयाए सव्वे अणंता ।

---

१. तत्र निगोदा जीवाश्रयविशेषा, निगोदजीवा विभिन्नतैजसकार्मणाजीवा एव ।

एवं णिओदजीवा नवविहावि पएसट्ठयाए सव्वे अणंता ।

२२३. भगवन् ! निगोद द्रव्य की अपेक्षा क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

गौतम ! संख्यात नहीं हैं, असंख्यात हैं, अनन्त नहीं हैं। इसी प्रकार इनके पर्याप्त और अपर्याप्त सूत्र भी कहने चाहिए।

भगवन् ! सूक्ष्मनिगोद द्रव्य की अपेक्षा संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

गौतम ! संख्यात नही, असंख्यात हैं, अनन्त नही। इसी तरह पर्याप्त विषयक सूत्र तथा अपर्याप्त विषयक सूत्र भी कहने चाहिए।

इसी प्रकार बादरनिगोद के विषय में भी कहना चाहिए। उनके पर्याप्त विषयक सूत्र तथा अपर्याप्त विषयक सूत्र भी इसी तरह कहने चाहिए।

भगवन् ! निगोदजीव द्रव्य की अपेक्षा संख्यात है, असंख्यात है या अनन्त हैं ?

गौतम ! संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, अनन्त हैं। इसी तरह इसके पर्याप्तसूत्र भी जानने चाहिए। इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोदजीव, इनके पर्याप्त और अपर्याप्तसूत्र तथा बादरनिगोदजीव और उनके पर्याप्त और अपर्याप्तसूत्र भी कहने चाहिए। (ये द्रव्य की अपेक्षा से ९ निगोद के तथा ९ निगोदजीव के कुल अठारह सूत्र हुए।)

भगवन् ! प्रदेश की अपेक्षा निगोद संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

गौतम ! संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त हैं। इसी प्रकार पर्याप्तसूत्र और अपर्याप्तसूत्र भी कहने चाहिए।

इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोद और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त सूत्र कहने चाहिए। ये सब प्रदेश की अपेक्षा अनन्त हैं।

इसी प्रकार बादरनिगोद के और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त सूत्र कहने चाहिए। ये सब प्रदेश की अपेक्षा अनन्त हैं।

इसी प्रकार निगोदजीवों के प्रदेशों की अपेक्षा से नो ही सूत्रों में अनन्त कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में निगोद और निगोदजीवों की संख्या के विषय मे जिज्ञासा और उत्तर है। जिज्ञासा प्रकट की गई है कि निगोद संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर दो अपेक्षाओं से हैं—द्रव्य की अपेक्षा और प्रदेश की अपेक्षा से। द्रव्य को अपेक्षा से निगोद संख्येय नहीं है, क्योंकि अंगुलासंख्येयभाग अवगाहना वाले निगोद सारे लोक में व्याप्त हैं। वे असंख्यात हैं, क्योंकि असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। वे अनन्त नहीं हैं, क्योंकि केवलज्ञानियों ने उन्हें अनन्त नहीं जाना है। सामान्यनिगोद, अपर्याप्त सामान्यनिगोद और पर्याप्त सामान्यनिगोद संबंधी तीन सूत्र इसी तरह जानने चाहिए। इसो प्रकार सूक्ष्मनिगोद के तीन सूत्र और बादरनिगोद के भी तीन सूत्र—कुल नौ सूत्र कहे गये हैं।

निगोदजीव द्रव्य की अपेक्षा से संख्यात नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं। प्रतिनिगोद में अनन्तजीव होने से निगोदजीव द्रव्यापेक्षया अनन्त हैं। इसी तरह इनके अपर्याप्तसूत्र और पर्याप्तसूत्र में भी अनन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोदजीव और उनके अपर्याप्त और पर्याप्त विषयक तीनों सूत्रों में भी अनन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार बादरनिगोदजीव और उनके अपर्याप्त और पर्याप्त विषयक तीन सूत्रों में भी अनन्त कहने चाहिए। उक्त वर्णन द्रव्य की अपेक्षा से हुआ।

प्रदेशों की अपेक्षा से निगोद और निगोदजीवों के सामान्य तथा अपर्याप्त और पर्याप्त तथा सूक्ष्म और बादर सब अठारह ही सूत्रों में अनन्त कहना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक निगोद में अनन्त प्रदेश होते हैं। ये अठारह सूत्र इस प्रकार कहे हैं—

निगोद के ९ तथा निगोदजीवों के ९, कुल १८ हुए।

निगोद के ९ सूत्र—निगोदसामान्य, निगोद-अपर्याप्त, निगोद-पर्याप्त; सूक्ष्मनिगोदसामान्य, सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त; बादरनिगोदसामान्य, बादरनिगोद अपर्याप्त और बादर-निगोद पर्याप्त।

निगोदजीव के ९ सूत्र—निगोदजीवसामान्य, निगोदजीव अपर्याप्तक और निगोदजीव पर्याप्तक। सूक्ष्मनिगोदजीव सामान्य और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त। बादरनिगोदजीव और इनके अपर्याप्त और पर्याप्त। कुल अठारह सूत्र प्रदेशापेक्षया हैं।

निगोदों का अल्पबहुत्व

२२४. (अ) एएसि णं भंते ! णिगोदाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्तयाणं अपज्जत्तगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बायरणिगोदा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए, बादरनिगोदा अपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

एवं पएसट्ठयाएवि।

दव्वपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा बायरणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए जाव सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा। सुहुमणिगोदेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरनिगोदा पज्जत्ता पएसट्ठया अणंतगुणा, बायरणिओदा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा।

एवं णिगोदजीवावि। णवरि संकमए जाव सुहुमणिओयजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओदजीवा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सेसं तहेव जाव सुहुमणिओदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा।

२२४ (अ) भगवन् ! इन सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त निगोदों में द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा तथा द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से कौन किससे कम, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे थोड़े बादरनिगोद (मूल-कन्दादिगत) पर्याप्तक हैं (क्योंकि वे

प्रतिनियत क्षेत्रवर्ती हैं।) उनसे बादरनिगोद अपर्याप्तक असंख्येयगुण हैं (क्योंकि प्रत्येक बादरनिगोद की निश्रा में असंख्येय अपर्याप्त बादरनिगोद उत्पन्न होते हैं।) उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक असंख्येयगुण हैं, (क्योंकि लोकव्यापी होने से क्षेत्र असंख्येयगुण है।), उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण हैं (क्योंकि सूक्ष्मों में अपर्याप्तों से पर्याप्त संख्येयगुण है।)

प्रदेश की अपेक्षा से—ऊपर कहा हुआ क्रम ही जानना चाहिए। यथा—सबसे थोड़े बादरनिगोद पर्याप्त, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्यातगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण और उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण है।

द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से—सबसे थोड़े बादरनिगोद पर्याप्त द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त अनन्तगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण प्रदेशापेक्षया।

निगोदजीवों का अल्पबहुत्व—द्रव्य की अपेक्षा—सबसे थोड़े बादरनिगोदजीव पर्याप्त, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्तक असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्तक संख्येयगुण है।

प्रदेशापेक्षया—सबसे थोड़े बादरनिगोदजीव पर्याप्तक, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्तक असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्तक असंख्येयगुण, उनके सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्तक संख्येयगुण।

द्रव्य-प्रदेशापेक्षया—सबसे थोड़े बादरनिगोदजीव पर्याप्त द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्यातगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्यगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त संख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोदजीव पर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त संख्येयगुण प्रदेशापेक्षया।

२२४. (आ) एएसि णं भंते ! णिगोदाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं णिओयजीवाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए दव्वपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बायरणिओदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए, बायरणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा। सुहुमणिगोदेहिंतो पज्जत्तेहिंतो बायरणिओदजोवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, बायरणिओदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिओदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिओदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा।

पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा बायरणिगोदजीवा पज्जत्ता, पएसट्ठयाए बायरणिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, सुहुमणिओयजीवा अपज्जत्तगा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिओयजीवा पज्जत्ता

पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, सुहुमणिओवजीवेहिंतो पएसट्ठयाए बायरणिगोदा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए अणंत-गुणा, बायरणिओया अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा जाव सुहुमणिओदा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा।

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा बायरणिओया पज्जत्ता दव्वट्ठयाए, बायरणिओदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा जाव सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, सुहुमणिगोदेहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिगोदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, सेसा तहेव जाव सुहुमणिओदजीवा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, सुहुमणिओदजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओयजीवा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सेसा तहेव जाव सुहुमणिओदा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा।

से त्तं छव्विहा संसारसमावण्णगा।

२२४. (आ) भगवन्! इन सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त निगोदों में और सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त निगोदजीवों में द्रव्यापेक्षया, प्रदेशापेक्षया और द्रव्य-प्रदेशापेक्षया कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

गौतम! सब से कम बादरनिगोद पर्याप्त द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येय-गुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद जीव पर्याप्त अनन्तगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद जीव अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद जीव पर्याप्त संख्येयगुण द्रव्यापेक्षया।

प्रदेशों की अपेक्षा—सबसे थोड़े बादरनिगोदजीव पर्याप्तक, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त संख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त अनन्तगुण, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण।

द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ की अपेक्षा—सबसे थोड़े बादरनिगोद पर्याप्त द्रव्यार्थतया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे बादरनिगोदजीव पर्याप्त अनन्तगुण द्रव्यार्थतया, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त संख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे बादरनिगोदजीव पर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे सूक्ष्म-निगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त संख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त अनंतगुण प्रदेशार्थतया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त संख्येयगुण प्रदेशार्थतया।

उक्त रीति से निगोद और निगोदजीवों का सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त का अल्प-बहुत्व द्रव्यापेक्षया, प्रदेशापेक्षया और द्रव्य-प्रदेशापेक्षया बताया गया है।

इस प्रकार छह प्रकार के संसारसमापन्नकों की पंचम प्रतिपत्ति पूर्ण हुई। □□

सप्तविधाख्या षष्ठ प्रतिपत्ति

२२५. तत्थ णं जेते एवमाहंसु—'सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा' ते एवमाहंसु, तं जहा—नेरइया तिरिक्खा तिरिक्खजोणिणीओ मणुस्सा मणुस्सीओ देवा देवीओ।

नेरइयस्स ठिई जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। तिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, एवं तिरिक्खजोणिणीएवि, मणुस्साणवि, मणुस्सीणवि। देवाणं ठिई जहा णेरइयाणं, देवीणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं पणपन्न-पलिओवमाइं।

नेरइय-देव-देवीणं जाचेव ठिई साचेव संचिट्ठणा। तिरिक्खजोणियाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतकालं, तिरिक्खजोणिणीणं जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं। एवं मणुस्सस्स मणुस्सीएवि।

णेरइयस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। एवं सव्वाणं तिरिक्खजोणिय-वज्जाणं। तिरिक्खजोणियाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ, मणुस्सा असंखेज्जगुणा, नेरइया असंखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ, देवा असंखेज्जगुणा, देवीओ संखेज्जगुणाओ, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

सेत्तं सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा।

२२५. जो ऐसा कहते हैं कि संसारसमापन्नकजीव सात प्रकार के हैं, उनके अनुसार वे सात प्रकार ये हैं—नैरयिक, तिर्यंच, तिरश्ची (तिर्यक्स्त्री), मनुष्य, मानुषी, देव और देवी।

नैरयिक की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। तिर्यक्योनिक की जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। तिर्यक्स्त्री, मनुष्य और मनुष्यस्त्री की भी यही स्थिति है। देवों की स्थिति नैरयिक की तरह जानना चाहिये और देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम है।

नैरयिक और देवों की तथा देवियों की जो भवस्थिति है, वही उनकी संचिट्ठणा (कायस्थिति) है। तिर्यंचों की जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल है। तिर्यक्स्त्रियों की संचिट्ठणा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है। इसी प्रकार मनुष्यों और मनुष्य-स्त्रियों की भी संचिट्ठणा जाननी चाहिए।

नैरयिकों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल (अनन्तकाल) है। तिर्यक्योनिकों को छोड़कर सबका अन्तर उक्त प्रमाण ही कहना चाहिए। तिर्यक्योनिकों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है।

अल्पबहुत्व—सबसे थोड़ी मानुषी स्त्रियां, उनसे मनुष्य असंख्यातगुण, उनसे नैरयिक असंख्येयगुण, उनसे तिर्यक्स्त्रियां असंख्येयगुण, उनसे देव असंख्येयगुण, उनसे देवियां संख्यातगुण और उनसे तिर्यक्योनिक अनन्तगुण हैं।

यह सप्तविधि संसारसमापन्नक प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

विवेचन—सप्तविधप्रतिपत्ति के अनुसार संसारसमापन्नक जीव सात प्रकार के हैं—नैरयिक, तिर्यक्योनिक, तिर्यक्स्त्रियां, मनुष्य, मानुषी स्त्रियां, देव और देवियां। इन सातों की स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व इस सूत्र में प्रतिपादित है।

स्थिति—नैरयिक की स्थिति जघन्य दसहजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। तिर्यक्योनिक, तिर्यक्योनिकस्त्रियां, मनुष्य और मनुष्यस्त्रियां, इनकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। देवों की स्थिति जघन्य दसहजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम है। देवियों की स्थिति जघन्य दसहजार वर्ष और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है। यह स्थिति अपरिगृहिता ईशानदेवियों की अपेक्षा से है।

संचिट्ठणा—नैरयिकों की, देवों की और देवियों की जो भवस्थिति है, वही उनकी संचिट्ठणा—कायस्थिति जाननी चाहिए। क्योंकि नैरयिक और देव मरकर अनन्तरभव में नैरयिक या देव नहीं होते। तिर्यक्योनिकों की संचिट्ठणा जघन्य अन्तर्मुहूर्त (इतने समय बाद अन्यत्र उत्पन्न होना संभव है) और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीप्रमाण (कालमार्गणा की अपेक्षा से) है तथा क्षेत्रमार्गणा की अपेक्षा असंख्येय लोकाकाशप्रदेशों को प्रतिसमय एक-एक के अपहार करने पर जितने समय में वे खाली हों उतनाकाल समझना चाहिए तथा असंख्येय-पुद्गलपरावर्तप्रमाण यह अनन्तकाल है। आवलिका के असंख्येयभाग में जितने समय हैं उतने वे पुद्गलपरावर्त जानना चाहिए। तिर्यचस्त्रियों की संचिट्ठणा (कायस्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है। निरन्तर पूर्वकोटि आयुष्यवाले सात भव और आठवें भव में देवकुरु आदि में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। मनुष्य और मनुष्यस्त्री सम्बन्धी कायस्थिति भी यही समझनी चाहिए।

अन्तर—नैरयिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। यह नरक से निकल कर तिर्यग् या मनुष्य गर्भ में अशुभ अध्यवसाय से मरकर नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा से समझना चाहिए। उत्कर्ष से अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल वनस्पतिकाल समझना चाहिए। नरक से निकलकर अनन्तकाल वनस्पति में रहकर फिर नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा है।

तिर्यक्योनिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व (दो सौ से लेकर नौ सौ सागरोपम) है। तिर्यक्योनिकी, मनुष्य, मानुषी तथा देव, देवी सूत्र में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अन्तर है।

अल्पबहुत्व—सबसे थोड़ी मनुष्यस्त्रियां हैं, क्योंकि वे कतिपय कोटिकोटिप्रमाण हैं। उनसे मनुष्य असंख्येयगुण हैं, क्योंकि सम्मूर्छिम मनुष्य श्रेणी के असंख्येयप्रदेशराशिप्रमाण हैं। उनसे तिर्यंचस्त्रियां असंख्येयगुण हैं, क्योंकि महादण्डक में जलचर तिर्यंक्योनिकियों से वान-व्यन्तर-ज्योतिष्क देव भी संख्येयगुण कहे गये है। उनसे देविया असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे देवों से बत्तीस गुणी हैं। उनसे तिर्यंच अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिजीव अनन्त हैं।[1] □□

॥ इति षष्ठ प्रतिपत्ति ॥

१. "बत्तीसगुणा बत्तीसरूव-अहियाओ होंति देवाणं देवीओ" इति वचनात्।

अष्टविधाख्या सप्तम प्रतिपत्ति

२२६. तत्थ णं जेते एवमाहंसु—'अट्ठविहा संसारसमावण्णगा जीवा' ते एवमाहंसु—पढमसमयनेरइया, अपढमसमयनेरइया, पढमसमयतिरिक्खजोणिया, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया, पढमसमयमणुस्सा, अपढमसमयमणुस्सा, पढमसमयदेवा, अपढमसमयदेवा।

पढमसमयनेरइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एक्कं समयं। अपढमसमयनेरइयस्स जहन्नेणं दसवाससहस्साइं समय-ऊणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समय-ऊणाइं।

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एक्कं समयं। अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊणं, उक्कोसेणं तिण्णिपलिओवमाइं समय-ऊणाइं।

एवं मणुस्साणवि जहा तिरिक्खजोणियाणं।

देवाणं जहा णेरइयाणं ठिई।

णेरइय-देवाणं जा चेव ठिई सा चेव संचिट्ठणा दुविहाणवि।

पढमसमयतिरिक्खजोणिए णं भंते। पढमसमयतिरिक्खजोणिएत्ति कालओ केवचिरं होई ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणवि एक्कं समयं। अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊणं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयमणुस्साणं जहन्नेणं उक्कोसेण य एक्कं समयं। अपढमसमयमणुस्साणं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊणं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं समय-ऊणाइं।

२२६. जो आचार्यादि ऐसा कहते हैं कि संसारसमापन्नक जीव आठ प्रकार के हैं, उनके अनुसार वे आठ प्रकार इस तरह हैं—१. प्रथमसमयनैरयिक, २ अप्रथमसमयनैरयिक, ३. प्रथमसमयतिर्यग्योनिक, ४. अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक, ५. प्रथमसमयमनुष्य, ६. अप्रथमसमयमनुष्य, ७. प्रथमसमयदेव और ८. अप्रथमसमयदेव।

स्थिति—भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक की स्थिति कितनी है ? गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से भी एक समय। अप्रथमसमयनैरयिक की जघन्यस्थिति एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से एक समय कम तेतीस सागरोपम की है।

प्रथमसमयतिर्यग्योनिक की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय है। अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक की जघन्य स्थिति एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण[1] है और उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम तीन पल्योपम है।

इसी प्रकार मनुष्यों की स्थिति तिर्यग्योनिकों के समान और देवों की स्थिति नैरयिकों के समान कहनी चाहिए।

नैरयिक और देवों की जो स्थिति है, वही दोनों प्रकार के (प्रथमसमय-अप्रथमसमय) नैरयिकों और देवों की कायस्थिति (संचिट्ठणा) है।

भगवन्! प्रथमसमयतिर्यग्योनिक उसी रूप में कितने समय तक रह सकता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कर्ष से भी एक समय तक रह सकता है। अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल तक रह सकता है।

प्रथमसमयमनुष्य जघन्य और उत्कृष्ट से एक समय तक और अप्रथमसमयमनुष्य जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण पर्यन्त और उत्कर्ष से एक समय कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है।

२२७. अंतरं—पढमसमयणेरइयस्स जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयणेरइयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयतिरिक्खजोणिए जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समय-उणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइ-कालो। अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं सागरोवमसय-पुहुत्तं सातिरेगं।

पढमसमयमणुस्सस्स जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयमणुस्सस्स जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

देवाणं जहा णेरइयाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइ-कालो। अपढमसमयदेवाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अप्पाबहुयं—एतेसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं जाव पढमसमयदेवाण य कयरे कयरेहितो अप्पा वा बहुया वा०? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा, पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइयाणं जाव अपढमसमयदेवाणं एवं चेव अप्पाबहुयं, णवरि अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

एतेसि पढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयणेरइयाण य कयरे कयरेहितो अप्पा०? सव्वत्थोवा पढमसमयणेरइया, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा।

एवं सव्वे।

---

1. २५६ आवलिकाओं का क्षुल्लकभव होता है।

अष्टविधाख्या सप्तम प्रतिपत्ति

२२६. तत्थ णं जेते एवमाहंसु—'अट्ठविहा संसारसमावण्णगा जीवा' ते एवमाहंसु—पढमसमयनेरइया, अपढमसमयनेरइया, पढमसमयतिरिक्खजोणिया, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया, पढमसमयमणुस्सा, अपढमसमयमणुस्सा, पढमसमयदेवा, अपढमसमयदेवा।

पढमसमयनेरइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एक्कं समयं। अपढमसमयनेरइयस्स जहन्नेणं दसवाससहस्साइं समय-उणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समय-उणाइं।

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एक्कं समयं। अपढमसमय-तिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं समय-उणं, उक्कोसेणं तिण्णिपलिओवमाइं समय-उणाइं।

एवं मणुस्साणवि जहा तिरिक्खजोणियाणं।

देवाणं जहा णेरइयाणं ठिई।

णेरइय-देवाणं जा चेव ठिई सा चेव संचिट्ठणा दुविहाणवि।

पढमसमयतिरिक्खजोणिए णं भंते। पढमसमयतिरिक्खजोणिएत्ति कालओ केवचिरं होई ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणवि एक्कं समयं। अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊण, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयमणुस्साणं जहन्नेणं उक्कोसेण य एक्कं समयं। अपढमसमयमणुस्साणं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊणं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं समय-ऊणाइं।

२२६. जो आचार्यादि ऐसा कहते हैं कि संसारसमापन्नक जीव आठ प्रकार के हैं, उनके अनुसार ये आठ प्रकार इस तरह हैं—१. प्रथमसमयनैरयिक, २ अप्रथमसमयनैरयिक, ३. प्रथमसमय-तिर्यग्योनिक, ४. अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक, ५. प्रथमसमयमनुष्य, ६. अप्रथमसमयमनुष्य, ७. प्रथम-समयदेव और ८. अप्रथमसमयदेव।

स्थिति—भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक की स्थिति कितनी है ? गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से भी एक समय। अप्रथमसमयनैरयिक की जघन्यस्थिति एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से एक समय कम तेतीस सागरोपम की है।

प्रथमसमयतिर्यग्योनिक की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय है। अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक की जघन्य स्थिति एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण[1] है और उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम तीन पल्योपम है।

इसी प्रकार मनुष्यों की स्थिति तिर्यग्योनिकों के समान और देवो की स्थिति नैरयिकों के समान कहनी चाहिए।

नैरयिक और देवों की जो स्थिति है, वही दोनों प्रकार के (प्रथमसमय-अप्रथमसमय) नैरयिकों और देवों की कायस्थिति (संचिट्ठणा) है।

भगवन्! प्रथमसमयतिर्यग्योनिक उसी रूप मे कितने समय तक रह सकता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कर्ष से भी एक समय तक रह सकता है। अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल तक रह सकता है।

प्रथमसमयमनुष्य जघन्य और उत्कृष्ट से एक समय तक और अप्रथमसमयमनुष्य जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण पर्यन्त और उत्कर्ष से एक समय कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता हैं।

२२७. अंतरं—पढमसमयणेरइयस्स जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयणेरइयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयतिरिक्खजोणिए जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं।

पढमसमयमणुस्सस्स जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयमणुस्सस्स जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

देवाणं जहा णेरइयाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयदेवाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अप्पाबहुयं—एतेसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं जाव पढमसमयदेवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा०? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा, पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइयाणं जाव अपढमसमयदेवाणं एवं चेव अप्पाबहुयं, णवरि अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

एतेसिं पढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयणेरइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा०? सव्वत्थोवा पढमसमयणेरइया, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा।

एवं सव्वे।

---

१. २५६ आवलिकाओं का क्षुल्लकभव होता है।

पढमसमयणेरइयाणं जाव अपढमसमयदेवाण य कयरे कयरेहितो अप्पा वा० ? सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा, अपढमसमयमणुस्सा असंखेज्जगुणा, पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

सेत्तं अट्ठविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

अट्ठविहपडिवत्ती समत्ता।

२२७. अन्तरद्वार—प्रथमसमयनैरयिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष है, उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयनैरयिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

प्रथमसमयतिर्यक्योनिक का जघन्य अन्तर एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयतिर्यक्योनिक का जघन्य अन्तर समयाधिक एक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कृष्ट सागरोपमशतपृथक्त्व से कुछ अधिक है।

प्रथमसमयमनुष्य का जघन्य अन्तर एक समय कम दो क्षुल्लकभव है, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयमनुष्य का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव है और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

देवों के सम्बन्ध में नैरयिकों की तरह कहना चाहिए। जैसे कि प्रथमसमयदेव का जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। अप्रथमसमयदेव का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

अल्पबहुत्वद्वार—भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिकों यावत् प्रथमसमयदेवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयमनुष्य, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयदेव असंख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयतिर्यक्योनिक असंख्येयगुण।

अप्रथमसमयनैरयिकों यावत् अप्रथमसमयदेवों का अल्पबहुत्व उक्त क्रम से ही है, किन्तु अप्रथमसमयतिर्यक्योनिक अनन्तगुण कहने चाहिए।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिकों और अप्रथमसमयनैरयिकों में कौन किससे अल्पादि हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयनैरयिक, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण हैं।

इसी प्रकार तिर्यक्योनिक, मनुष्य और देवों के प्रथमसमय और अप्रथमसमयों का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिकों यावत् अप्रथमसमयदेवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयमनुष्य, उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असंख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयदेव असंख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयतिर्यक्योनिक असंख्येय-

गुण, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयदेव असंख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमय तिर्यक्योनिक अनन्तगुण।

इस प्रकार आठ तरह के संसारसमापन्नक जीवों का वर्णन हुआ। अष्टविधप्रतिपत्ति नामक सातवी प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—इस सप्तमप्रतिपत्ति में आठ प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का कथन है। नारक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव—इन चार के प्रथमसमय और अप्रथमसमय के रूप में दो-दो भेद किये गये हैं, इस प्रकार आठ भेदों में सम्पूर्ण संसारसमापन्नक जीवों का समावेश किया है।

जो अपने जन्म के प्रथमसमय में वर्तमान हैं, वे प्रथमसमयनारक आदि हैं। प्रथमसमय को छोड़कर शेष सब समयों में जो वर्तमान हैं, वे अप्रथमसमयनारक आदि हैं। इन आठों भेदों को लेकर स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

प्रथमसमयनैरयिक की जघन्य और उत्कृष्ट भवस्थिति एक समय की है, क्योंकि द्वितीय आदि समयों में वह प्रथमसमय वाला नहीं रहता। अप्रथमसमयनैरयिक की जघन्यस्थिति एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एकसमय कम तेतीस सागरोपम की है। तिर्यग्योनिकों में प्रथमसमय वालों की जघन्य उत्कर्ष स्थिति एक समय की और अप्रथमसमय वालों की जघन्य स्थिति एक समय कम क्षुल्लकभव और उत्कर्ष से एकसमय कम तीन पल्योपम है। इसी प्रकार मनुष्यों के विषय में तिर्यंचों के समान और देवों के सम्बन्ध में नारकों के समान भवस्थिति जाननी चाहिए।

संचिट्ठणा—देवों और नारकों की जो भवस्थिति है, वही उनकी कायस्थिति (संचिट्ठणा) है, क्योंकि देव और नारक मरकर पुनः देव और नारक नहीं होते। प्रथमसमयतिर्यग्योनिकों की जघन्य संचिट्ठणा एकसमय की है और उत्कृष्ट से भी एक समय की है। क्योंकि तदनन्तर वह प्रथमसमय विशेषण वाला नहीं रहता। अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक की जघन्य संचिट्ठणा एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण है, क्योंकि प्रथमसमय में वह अप्रथमसमय विशेषण वाला नहीं है, अतः वह प्रथमसमय कम करके कहा गया है। उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल अर्थात् अनन्तकाल कहना चाहिए, जिसका स्पष्टीकरण पूर्व में कालमार्गणा और क्षेत्रमार्गणा से किया गया है।

प्रथमसमयमनुष्यों की जघन्य, उत्कृष्ट संचिट्ठणा एकसमय की है और अप्रथमसमयमनुष्यों की जघन्य एकसमय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम में एक समय कम संचिट्ठणा है। पूर्वकोटि आयुष्क वाले लगातार सात भव और आठवें भव में देवकुरु आदि में उत्पन्न होने की अपेक्षा से उक्त संचिट्ठणाकाल जानना चाहिए।

अन्तरद्वार—प्रथमसमयनैरयिक का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अधिक दसहजार वर्ष है। यह दसहजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिक के नरक से निकलकर अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त अन्यत्र रहकर फिर नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो नरक से निकलने के पश्चात् वनस्पति में अनन्तकाल तक उत्पन्न होने के पश्चात् पुनः नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है।

अप्रथमसमयनैरयिक का जघन्य अन्तर समयाधिक अन्तर्मुहूर्त है। यह नरक से निकल कर तिर्यक्गर्भ में या मनुष्यगर्भ में अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा से

है । प्रथमसमय अधिक होने से समयाधिकता कही गई है । कहीं पर केवल अन्तर्मुहूर्त ही कहा गया है; इस कथन में प्रथम समय को भी अन्तर्मुहूर्त में ही सम्मिलित कर लिया गया है, अतः पृथक् नहीं कहा गया है । उत्कर्ष से अन्तर वनस्पतिकाल है ।

प्रथमसमयतिर्यक्योनिक में जघन्य अन्तर एकसमय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण है । ये क्षुल्लक मनुष्य-भव ग्रहण के व्यवधान से पुनः तिर्यंचो में उत्पन्न होने की अपेक्षा से हैं । एकभव तो प्रथम-समय कम तिर्यक्-क्षुल्लकभव और दूसरा सम्पूर्ण मनुष्य का क्षुल्लकभवग्रहण है । उत्कर्ष से वनस्पति-काल है । उसके व्यतीत होने पर मनुष्यभव व्यवधान से पुनः प्रथमसमयतिर्यंच के रूप में उत्पन्न होने की अपेक्षा है ।

अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक का जघन्य अन्तर समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है । यह तिर्यक्योनिक-क्षुल्लकभवग्रहण के चरम समय को अधिकृत अप्रथमसमय मानकर उसमें मरने के बाद मनुष्य का क्षुल्लकभवग्रहण और फिर तिर्यंच में उत्पन्न होने के प्रथम समय व्यतीत हो जाने की अपेक्षा जानना चाहिए । उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है । देवादि भवों में इतने काल तक भ्रमण के पश्चात् पुनः तिर्यंच में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है ।

मनुष्यों की वक्तव्यता तिर्यक्-वक्तव्यता के अनुसार ही है । केवल यहां व्यवधान तिर्यक्भव का कहना चाहिए ।

देवों का कथन नैरयिकों के समान ही है ।

अल्पबहुत्व—प्रथम अल्पबहुत्व प्रथमसमयनैरयिकों यावत् प्रथमसमयदेवों को लेकर कहा गया है । जो इस प्रकार है—

सबसे थोड़े प्रथमसमयमनुष्य हैं । ये श्रेणी के असंख्येयभाग में रहे हुए आकाश-प्रदेशतुल्य हैं । उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि एक समय में ये अतिप्रभूत उत्पन्न हो सकते हैं । उनसे प्रथमसमयदेव असंख्येयगुण हैं—व्यन्तर ज्योतिष्कदेव एकसमय में अतिप्रभूततर उत्पन्न हो सकते हैं । उनसे प्रथमसमयतिर्यंच असंख्येयगुण हैं । यहां नरकादि तीन गतियों से आकर तिर्यंच के प्रथमसमय में वर्तमान हैं, वे ही प्रथमसमयतिर्यंच हैं, शेष नहीं । अतः यद्यपि प्रतिनिगोद का असंख्येय-भाग सदा विग्रहगति के प्रथमसमयवर्ती होता है, तो भी निगोदों के भी तिर्यक्त्व होने से वे प्रथमसमय-तिर्यंच नहीं हैं । वे इनसे संख्येयगुण ही है ।

दूसरा अल्पबहुत्व अप्रथमसमयनैरयिकों यावत् अप्रथमसमयदेवों को लेकर कहा गया है । वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े अप्रथमसमयमनुष्य है, क्योंकि ये श्रेणी के असंख्येयभागप्रमाण है । उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि ये अंगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथमवर्गमूल में द्वितीयवर्गमूल का गुणा करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है, उतनी श्रेणियों में जितने आकाशप्रदेश हैं, उनके बराबर वे हैं । उनसे अप्रथमसमयदेव असंख्येयगुण हैं, क्योंकि व्यन्तर ज्योतिष्कदेव भी अतिप्रभूत हैं । उनसे अप्रथमसमय तिर्यंच अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय अनन्त

तीसरा अल्पबहुत्व प्रत्येक नैरयिकादिकों में प्रथमसमय और

इस प्रकार है—सबसे थोड़े प्रथमसमयनैरयिक हैं, क्योंकि एकस .

स्तोक ही हैं। उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि यह चिरकाल-स्थायी होने से अन्य-अन्य बहुत समयों में अतिप्रभूत उत्पन्न होते हैं। इस तरह तिर्यक्योनिक, मनुष्य और देवों में भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि तिर्यक्योनिकों में अप्रथमसमयतिर्यंग्योनिक अनन्तगुण कहने चाहिए, क्योंकि वनस्पतिजीव अनन्त हैं।

चौथा अल्पबहुत्व प्रथमसमय और अप्रथमसमय नारकादि का समुदितरूप में कहा गया है।

सबसे थोड़े प्रथमसमयमनुष्य हैं, क्योंकि एक समय में संख्यातीत उत्पन्न होने पर भी स्तोक ही हैं। उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असंख्येयगुण हैं, क्योंकि चिरकालस्थायी होने से वे अतिप्रभूत उपलब्ध होते हैं। उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण हैं, एक समय में अतिप्रभूत उत्पन्न होने से। उनसे प्रथमसमयदेव असंख्येयगुण हैं व्यन्तर ज्योतिष्कों में प्रभूत उत्पन्न होने से। उनसे प्रथमसमय-तिर्यग्योनिक असंख्येयगुण है, क्योंकि नारकादि तीनों गतियों से आकर जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि वे अंगुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल में द्वितीय वर्गमूल का गुणा करने पर जो प्रदेशराशि होती है, उतनी श्रेणियों में जितनी प्रदेशराशि है, उसके तुल्य है। उनसे अप्रथमसमयतिर्यंग्योनिक अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिजीव अनन्त हैं।

इस प्रकार अष्टविधसंसारसमापन्नकजीवों का कथन करने वाली सप्तम प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

॥ इति सप्तम प्रतिपत्ति ॥

———

नवविधाख्या अष्टम प्रतिपत्ति

२२८. तत्थ णं जेते एवमाहंसु-'णवविहा संसारसमावण्णगा जीवा' ते एवमाहंसु—पुढविक्काइया, आउक्काइया, तेउक्काइया, वाउक्काइया, वणस्सइकाइया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया।

ठिई सव्वेसिं भाणियव्वा।

पुढवीक्काइयाणं संचिट्ठणा पुढविकालो जाव वाउक्काइयाणं। वणस्सइकाइयाणं वणस्सइकालो।

बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया संखेज्जं कालं। पंचिंदियाणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं।

अंतरं सव्वेसिं अणंतकालं। वणस्सइकाइयाणं असंखेज्जकालं।

अप्पाबहुगं—सव्वत्थोवा पंचिंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेइंदिया विसेसाहिया, बेइंदिया विसेसाहिया, तेउक्काइया असंखेज्जगुणा, पुढविकाइया आउकाइया वाउकाइया विसेसाहिया, वणस्सइकाइया अणंतगुणा।

सेत्तं णवविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

णवविहपडिवत्ती समत्ता।

२२८. जो नौ प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का कथन करते है, वे ऐसा कहते हैं—१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक, ६. द्वीन्द्रिय, ७. त्रीन्द्रिय, ८. चतुरिन्द्रिय और ९. पंचेन्द्रिय।

सबकी स्थिति कहनी चाहिए।

पृथ्वीकायिकों की संचिट्ठणा पृथ्वीकाल है, इसी तरह वायुकाय पर्यन्त कहना चाहिए। वनस्पतिकाय की संचिट्ठणा अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की संचिट्ठणा संख्येय काल है और पंचेन्द्रियों की संचिट्ठणा साधिक हजार सागरोपम है।

सबका अन्तर अनन्तकाल है। केवल वनस्पतिकायिकों का अन्तर असंख्येय काल है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे तेजस्कायिक असंख्येयगुण हैं, उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक क्रमशः विशेषाधिक हैं और उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण हैं।

इस तरह नवविध संसारसमापन्नकों का कथन पूरा हुआ। नवविध प्रतिपत्ति नामक अष्टमी प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—जो नौ प्रकार के संसारसमापन्नकों का प्रतिपादन करते हैं, उनके मन्तव्य के अनुसार वे नौ प्रकार हैं—१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक, ६. द्वीन्द्रिय, ७. त्रीन्द्रिय, ८. चतुरिन्द्रिय और ९. पंचेन्द्रिय।

स्थिति—इनकी स्थिति इस प्रकार है—सबकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टस्थिति में पृथ्वीकाय की बावीस हजार वर्ष, अप्काय की सात हजार वर्ष, तेजस्काय की तीन अहोरात्र, वायुकायिक की तीन हजार वर्ष, वनस्पतिकायिकों की दस हजार वर्ष, द्वीन्द्रिय की बारह वर्ष, त्रीन्द्रिय की ४९ दिन, चतुरिन्द्रिय की छह मास और पंचेन्द्रिय की तेतीस सागरोपम है।

संचिट्ठणा—इन सबकी जघन्य संचिट्ठणा (कायस्थिति) अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष से पृथ्वीकाय की असंख्येयकाल (जिसमें असंख्येय उत्सर्पिणियां अवसर्पिणियां कालमार्गणा से समाविष्ट हैं तथा क्षेत्रमार्गणा से असंख्येय लोकाकाशों के प्रदेशों के अपहारकालप्रमाण काल समाविष्ट है।) इसी तरह अप्कायिकों, तेजस्कायिकों और वायुकायिकों की भी यही संचिट्ठणा कहनी चाहिए। वनस्पतिकाय की संचिट्ठणा अनन्तकाल है। इस अनन्तकाल में अनन्त उत्सर्पिणियां अवसर्पिणियां समाविष्ट हैं तथा क्षेत्र से अनन्तलोकों के आकाशप्रदेशों का अपहारकाल तथा असंख्येयपुद्गलपरावर्त समाविष्ट हैं। पुद्गलपरावर्तों का प्रमाण आवलिका के असंख्येयभागवर्ती समयों के बराबर है।

द्वीन्द्रिय की संचिट्ठणा संख्येयकाल है। त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय की संचिट्ठणा भी संख्येयकाल है। पंचेन्द्रिय की संचिट्ठणा साधिक हजार सागरोपम है।

अन्तरद्वार—पृथ्वीकायिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से अनन्तकाल है। अनन्तकाल का प्रमाण पूर्ववत् जानना चाहिए। पृथ्वीकाय से निकलकर वनस्पति में अनन्तकाल रहने के पश्चात् पुनः पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों का भी अन्तर जानना चाहिए। वनस्पतिकाय का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से असंख्येयकाल है। यह असंख्येयकाल असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप आदि पूर्ववत् जानना चाहिए।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं। क्योंकि ये संख्येय योजन कोटी-कोटी प्रमाण विष्कंभसूची से प्रतरासंख्येय भागवर्ती असंख्येय श्रेणीगत आकाशप्रदेशराशि के बराबर हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनकी विष्कंभसूची प्रभूत संख्येययोजन कोटाकोटी प्रमाण है। उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक है, क्योंकि इनकी विष्कंभसूची प्रभूततर संख्येययोजन कोटाकोटी प्रमाण है। उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनकी विष्कंभसूची प्रभूततम संख्येययोजन कोटाकोटी प्रमाण है। उनसे तेजस्कायिक असंख्येयगुण हैं, क्योंकि ये असंख्येय लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, क्योंकि ये प्रभूतासंख्येय लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं। उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि प्रभूततरासंख्येय लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं। उनसे वायुकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये प्रभूततमासंख्येय लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण हैं, क्योंकि ये अनन्त लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं।

॥ इति नवविधप्रतिपत्तिरूपा अष्टमी प्रतिपत्ति ॥

प्रथमसमयवालों की संचिट्ठणा (कायस्थिति) जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से भी एक समय है। अप्रथमसमयवालों की जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से एकेन्द्रिय की वनस्पतिकाल और द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियों की संख्येयकाल एवं पंचेन्द्रियों की साधिक हजार सागरोपम पर्यन्त संचिट्ठणा (कायस्थिति) है।

२३०. पढमसमयएगिंदियाणं केवइयं अंतरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयएगिंदियाणं अंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।

सेसाणं सव्वेसिं पढमसमयिकाणं अंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयिकाणं सेसाणं जहण्णेणं खड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयाणं सव्वेसिं सव्वत्थोवा पढमसमयपंचेंदिया, पढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया, पढमसमयतेइंदिया विसेसाहिया, पढमसमयबेइंदिया विसेसाहिया, पढमसमयएगिंदिया विसेसाहिया।

एवं अपढमसमयिकावि णवरिं अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा।

दोण्हं अप्पबहुयं—सव्वत्थोवा पढमसमयएगिंदिया, अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा। सेसाणं सव्वत्थोवा पढमसमयिका, अपढमसमयिका असंखेज्जगुणा।

एएसि णं भंते ! पढमसमयएगिंदियाणं अपढमसमयएगिंदियाणं जाव अपढमसमयपंचिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयपंचिंदिया, पढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया, पढमसमयतेइंदिया विसेसाहिया एवं हेट्ठामुहा जाव पढमसमयएगिंदिया विसेसाहिया, अपढमसमयपंचिंदिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया जाव अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा।

सेत्तं दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

सेत्तं संसारसमावण्णगजीवाभिगमे।

२३०. भगवन् ! प्रथमसमयएकेन्द्रियों का अन्तर कितना होता है ? गौतम ! जघन्य से एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अप्रथमसमयएकेन्द्रिय का जघन्य अन्तर एकसमय अधिक एक क्षुल्लकभव है और उत्कर्ष से संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। शेष सब प्रथमसमयिकों का अन्तर जघन्य से एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। शेष अप्रथमसमयिकों का जघन्य अन्तर समयाधिक एक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

सब प्रथमसमयिकों में सबसे थोड़े प्रथमसमय पंचेन्द्रिय हैं, उनसे प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे प्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं और उनसे प्रथमसमयएकेन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार अप्रथमसमयिकों का अल्पबहुत्व भी जानना चाहिए। विशेषता यह है कि अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

दोनों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े प्रथमसमयएकेन्द्रिय, उनसे अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं। शेष में सबसे थोड़े प्रथमसमय वाले हैं और अप्रथमसमय वाले असंख्येयगुण हैं।

भगवन् ! इन प्रथमसमयएकेन्द्रिय, अप्रथमसमयएकेन्द्रिय यावत् अप्रथमसमयपंचेन्द्रियों मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयपंचेन्द्रिय, उनसे प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयएकेन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयपंचेन्द्रिय असंख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमय एकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

इस प्रकार दस प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का कथन पूर्ण हुआ। इस प्रकार संसार-समापन्नकजीवाभिगम का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत प्रतिपत्ति में संसारसमापन्नक जीवों के दस भेद कहे गये हैं, जो एकेन्द्रिय से लगाकर पंचेन्द्रियों के प्रथमसमय और अप्रथमसमय रूप में दो-दो भेद करने पर प्राप्त होते हैं। प्रथमसमयएकेन्द्रिय वे हैं जो एकेन्द्रियत्व के प्रथमसमय में वर्तमान हैं, शेष एकेन्द्रिय अप्रथमसमय-एकेन्द्रिय हैं। इसी तरह द्वीन्द्रियादि के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

उक्त दसों की स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व इस प्रतिपत्ति में प्रतिपादित है।

स्थिति—प्रथमसमयएकेन्द्रिय की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक समय की है, क्योंकि दूसरे समयों में वह प्रथमसमय वाला नहीं रहता। इसी प्रकार प्रथमसमय वाले द्वीन्द्रियों आदि के विषय में भी समझ लेना चाहिए। अप्रथमसमयएकेन्द्रिय की स्थिति जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभव (२५६ आवलिका-प्रमाण) है। एकसमय कम कहने का तात्पर्य यह है कि प्रथमसमय में वह अप्रथमसमय वाला नहीं है। उत्कर्ष में एक समय कम बावीस हजार वर्ष की स्थिति है।

अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय में जघन्यस्थिति समयकम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट समयकम बारह वर्ष, अप्रथमसमयत्रीन्द्रियों की जघन्यस्थिति समय कम क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट समयकम ४९ अहोरात्र है। अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय की जघन्य स्थिति समयोन क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट समयोन छहमास है। अप्रथमसमयपंचेन्द्रियों की जघन्य स्थिति समयोन क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट समयोन तेतीस सागरोपम है। सर्वत्र समयोनता प्रथमसमय से हीन समझना चाहिए।

संचिट्ठणा (कायस्थिति)—प्रथमसमयएकेन्द्रिय उसी रूप में एक समय तक रहता है। इसके बाद वह प्रथमसमय वाला नहीं रहता। इसी तरह प्रथमसमयद्वीन्द्रियादि के विषय में भी समझना चाहिए। अप्रथमसमयएकेन्द्रिय जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण तक रहता है। फिर अन्यत्र कहीं उत्पन्न हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल तक रहता है। अनन्तकाल का स्पष्टीकरण पूर्ववत् अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकाल पर्यन्त आदि जानना चाहिए।

अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय जघन्य समयोन क्षुल्लकभव, उत्कर्ष से संख्येयकाल तक रहता है, फिर अवश्य अन्यत्र उत्पन्न होता है। इसी तरह अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय के लिए भी समझना चाहिए।

अप्रथमसमयपंचेन्द्रिय जघन्य से समयोन क्षुल्लकभव और उत्कर्ष से साधिक हजार सागरोपम तक रहता है, क्योंकि देवादिभवों में लगातार परिभ्रमण करते हुए उत्कर्ष से इतने काल तक ही पंचेन्द्रिय के रूप में रह सकता है।

अन्तरद्वार—प्रथमसमयएकेन्द्रिय का अन्तर जघन्य से समयोन दो क्षुल्लकभव है। वे क्षुल्लकभव द्वीन्द्रियादि भवग्रहण के व्यवधान से पुनः एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने की अपेक्षा से हैं। जैसे कि एक भव तो प्रथमसमय कम एकेन्द्रिय का क्षुल्लकभव और दूसरा भव द्वीन्द्रियादि का सम्पूर्ण क्षुल्लकभव, इस तरह समयोन दो क्षुल्लकभव जानने चाहिए। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल—अनन्तकाल है, जिसका स्पष्टीकरण पूर्व में बताया जा चुका है। इतने काल तक वह अप्रथमसमय है, प्रथमसमय नहीं। क्योंकि द्वीन्द्रियादि में क्षुल्लकभव के रूप में रहकर फिर एकेन्द्रिय रूप में उत्पन्न होने पर प्रथम-समय में प्रथमसमयएकेन्द्रिय कहा जाता है। अतः उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल कहा गया है।

अप्रथमसमयएकेन्द्रिय का जघन्य अन्तर समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है। उस एकेन्द्रिय-भवगत चरमसमय को अधिक अप्रथमसमय मानकर उसमें मरकर द्वीन्द्रियादि क्षुल्लकभवग्रहण का व्यवधान होने पर फिर एकेन्द्रिय रूप में उत्पन्न होने का प्रथमसमय बीत जाने पर प्राप्त होता है। इतने काल का अप्रथमसमयएकेन्द्रिय का अन्तर प्राप्त होता है। उत्कर्ष से संख्येयवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम का अन्तर हो सकता है। द्वीन्द्रियादि भवभ्रमण लगातार इतने काल तक ही सम्भव है।

प्रथमसमयद्वीन्द्रिय का जघन्य अन्तर समयोन दो क्षुल्लकभवग्रहण है। एक तो प्रथमसमयहीन द्वीन्द्रिय का क्षुल्लकभव और दूसरा सम्पूर्ण एकेन्द्रिय-त्रीन्द्रियादि का कोई भी क्षुल्लकभवग्रहण है। इसी प्रकार प्रथमसमयत्रीन्द्रिय, प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय और प्रथमसमयपंचेन्द्रियों का अन्तर भी जानना चाहिए।

अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय का जघन्य अन्तर समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है। यह अन्यत्र क्षुल्लक। भव पर्यन्त रहकर पुनः द्वीन्द्रिय के रूप में उत्पन्न होने का प्रथमसमय बीत जाने पर प्राप्त होता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल का अन्तर है। यह अनन्तकाल पूर्ववत् अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों का होता है आदि कथन करना चाहिए। द्वीन्द्रियभव से निकल कर इतने काल तक वनस्पति में रहकर पुनः द्वीन्द्रिय रूप में उत्पन्न होने से प्रथमसमय बीत जाने के पश्चात् यह अन्तर प्राप्त होता है। इसी तरह अप्रथमसमय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर समझना चाहिए।

अल्पबहुत्वद्वार—पहला अल्पबहुत्व प्रथमसमयिकों को लेकर कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े प्रथमसमयपंचेन्द्रिय हैं, क्योंकि वे एक समय में थोड़े ही उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे एकसमय में प्रभूत उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथमसमय-त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे एकसमय में प्रभूततर उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे एक समय में प्रभूततम उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथमसमयएकेन्द्रिय विशेषाधिक हैं। यहां जो द्वीन्द्रियादि से निकलकर एकेन्द्रिय रूप में उत्पन्न होते हैं और प्रथमसमय में वर्तमान हैं वे ही प्रथमसमयएकेन्द्रिय जानना चाहिए, अन्य नहीं। वे प्रथमसमयद्वीन्द्रियों से विशेषाधिक ही हैं, असंख्येय या अनन्तगुण नहीं।

दूसरा अल्पबहुत्व अप्रथमसमयिकों का लेकर कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े अप्रथमसमयपंचेन्द्रिय, उनसे अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

तीसरा अल्पबहुत्व प्रत्येक एकेन्द्रियादि में प्रथमसमय वालों और अप्रथमसमय वालों की अपेक्षा से है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े प्रथमसमयएकेन्द्रिय हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियादि से आकर एक समय में थोड़े ही उत्पन्न होते हैं। उनसे अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिकाल अनन्त है।

द्वीन्द्रियों में सबसे थोड़े प्रथमसमयद्वीन्द्रिय हैं, उनसे अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय असंख्येयगुण हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय सब संख्या से भी असंख्यात ही हैं।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रियों में भी प्रथमसमय वाले कम हैं और अप्रथमसमय वाले असंख्यातगुण हैं।

चौथा अल्पबहुत्व उक्त दस भेदों की अपेक्षा से कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोड़े प्रथमसमयपंचेन्द्रिय, उनसे प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयएकेन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयपंचेन्द्रिय असंख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

युक्ति स्पष्ट ही है।

इस प्रकार दसविधि प्रतिपत्ति पूर्ण हुई। उसके पूर्ण होने से संसारसमापन्नक जीवाभिगम भी पूर्ण हुआ। □□

सर्वजीवाभिगम

सर्वजीव–द्विविधवक्तव्यता

संसारसमापन्नक जीवों की दस प्रकार की प्रतिपत्तियों का प्रतिपादन करने के पश्चात् अब सर्वजीवाभिगम का कथन किया जा रहा है। इस सर्वजीवाभिगम में संसारसमापन्नक और असंसार-समापन्नक—दोनों को लेकर प्रतिपादन किया गया है।

२३१. से किं तं सव्वजीवाभिगमे ?

सव्वजीवेसु णं इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति। एगे एवमाहंसु—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता जाव दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—सिद्धा य असिद्धा य।

सिद्धे णं भंते ! सिद्धेत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! साइ-अपज्जवसिए।

असिद्धे णं भंते ! असिद्धत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! असिद्धे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्ज-वसिए।

सिद्धस्स णं भंते ! केवइकालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

असिद्धे णं भंते ! केवइयं अंतरं होइ ?

गोयमा ! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

एएसि णं भंते ! सिद्धाणं असिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सिद्धा, असिद्धा अणंतगुणा।

२३१. भगवन् ! सर्वजीवाभिगम क्या है ?

गौतम ! सर्वजीवाभिगम में नौ प्रतिपत्तियां कही हैं। उनमें कोई ऐसा कहते हैं कि सब जीव दो प्रकार के हैं यावत् दस प्रकार के हैं। जो दो प्रकार के सब जीव कहते हैं, वे ऐसा कहते हैं, यथा—सिद्ध और असिद्ध।

भगवन् ! सिद्ध, सिद्ध के रूप में कितने समय तक रह सकता है ? गौतम ! सिद्ध सादि-अपर्यवसित है, (अतः सदाकाल सिद्धरूप में रहता है।)

भगवन् ! असिद्ध, असिद्ध के रूप में कितने समय तक रहता है ? गौतम ! असिद्ध जीव दो प्रकार के हैं—

अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। (अनादि-अपर्यवसित असिद्ध सदाकाल असिद्ध रहता है और अनादि-सपर्यवसित मुक्ति-प्राप्ति के पहले तक असिद्धरूप में रहता है।)

भगवन् ! सिद्ध का अन्तर कितना है ? गौतम ! सादि-अपर्यवसित का अन्तर नहीं होता है।

भगवन् ! असिद्ध का अंतर कितना होता है ?

गौतम ! अनादि-अपर्यवसित असिद्ध का अंतर नहीं होता है। अनादि-सपर्यवसित का भी अंतर नहीं होता है।

भगवन् ! इन सिद्धों और असिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े सिद्ध, उनसे असिद्ध अनन्तगुण हैं।

विवेचन—जैसे संसारसमापन्नक जीवों के विषयों में नौ प्रकार की प्रतिपत्तियां कही गई हैं, वैसे ही सर्वजीव के विषय में भी नौ प्रतिपत्तियां कही गई हैं। सर्वजीव में संसारी और मुक्त, दोनों प्रकार के जीवों का समावेश होता है। अतएव इन कही जाने वाली नौ प्रतिपत्तियों में सब जीवों का समावेश होता है। वे नौ प्रतिपत्तियां इस प्रकार हैं—

(१) कोई कहते हैं कि सब जीव दो प्रकार के हैं, यथा—सिद्ध और असिद्ध।

(२) कोई कहते हैं कि सब जीव तीन प्रकार के हैं, यथा—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

(३) कोई कहते हैं कि सब जीव चार प्रकार के हैं, यथा—मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी।

(४) कोई कहते हैं कि सब जीव पांच प्रकार के हैं, यथा—नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध।

(५) कोई कहते हैं कि सब जीव छह प्रकार के हैं—औदारिकशरीरी, वैक्रियशरीरी, आहारकशरीरी, तैजसशरीरी, कार्मणशरीरी और अशरीरी।

(६) कोई कहते हैं कि सब जीव सात प्रकार के हैं, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक।

(७) कोई कहते हैं सब जीव आठ प्रकार के हैं, यथा—मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी।

(८) कोई कहते हैं कि सब जीव नौ प्रकार के हैं, यथा—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध।

(९) कोई कहते हैं कि सब जीव दस प्रकार के हैं, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अतीन्द्रिय।

उक्त नौ प्रतिपत्तियों में से प्रत्येक में और भी विवक्षा से अन्य भेद भी किये गये हैं, जो यथास्थान कहे जायेंगे।

जो ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि सब जीव दो प्रकार के हैं, उनका मन्तव्य है कि सब जीवों का समावेश सिद्ध और असिद्ध इन दो भेदों में हो जाता है। जिन्होंने आठ प्रकार के बंधे हुए कर्मों को

भस्मीकृत कर दिया है, वे सिद्ध हैं।[1] अर्थात् जो कर्मबंधनों से सर्वथा मुक्त हो चुके हैं, वे सिद्ध हैं। जो संसार के एवं कर्म के बन्धनों से मुक्त नहीं हुए हैं, वे असिद्ध हैं।

सिद्ध सदा काल निजस्वरूप में रमण करते रहते हैं, अतः उनकी कालमर्यादारूप भवस्थिति नहीं कही गई है। उनकी कायस्थिति अर्थात् सिद्धत्व के रूप में उनकी स्थिति सदा काल रहती है। सिद्ध सादि-अपर्यवसित हैं। अर्थात् संसार से मुक्ति के समय सिद्धत्व की आदि है और सिद्धत्व की कभी च्युति न होने से अपर्यवसित हैं।

असिद्ध दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। जो अभव्य होने से या तथाविध सामग्री के अभाव से कभी सिद्ध नहीं होगा, वह अनादि-अपर्यवसित असिद्ध है। जो सिद्धि को प्राप्त करेगा वह अनादि-सपर्यवसित हैं, अर्थात् अनादि संसार का अन्त करने वाला है। जब तक वह मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक असिद्ध, असिद्ध के रूप में रहता है।

सिद्ध सिद्धत्व से च्युत होकर फिर सिद्ध नहीं बनते, अतएव उनमें अन्तर नहीं है। वे सादि और अपर्यवसित हैं, अतः अन्तर नहीं है। असिद्धों में जो अनादि-अपर्यवसित हैं, उनका असिद्धत्व कभी छूटेगा ही नहीं, अतः अन्तर नहीं है। जो अनादि-सपर्यवसित हैं, उनका भी अन्तर नहीं है, क्योंकि मुक्ति से पुनः आना नहीं होता। अल्पबहुत्वद्वार में सिद्ध थोड़े हैं और असिद्ध अनन्तगुण हैं, क्योंकि निगोदजीव अतिप्रभूत हैं।

२३२. अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सइंदिया चेव अणिंदिया चेव। सइंदिए णं भंते! सइंदिएत्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते,—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए। अणिंदिए साइए वा अपज्जवसिए, दोण्हवि अंतरं णत्थि। सव्वत्थोवा अणिंदिया, सइंदिया अणंतगुणा।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सकाइया चेव अकाइया चेव। एवं चेव।

एवं सजोगी चेव अजोगी चेव तहेव,

(एवं सलेस्सा चेव अलेस्सा चेव, ससरीरा चेव असरीरा चेव।) संचिट्ठणं अंतरं अप्पाबहुयं जहा सइंदियाणं।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सवेदगा चेव अवेदगा चेव। सवेदए णं भंते! सवेदएत्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! सवेदए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाइए अपज्जवसिए, अणाइए सपज्जवसिए, साइए सपज्जवसिए। तत्थ णं जेसे साइए सपज्जवसिए से जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतकालं जाव खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अवेयए णं भंते! अवेयएत्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! अवेयए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—साईए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जेसे साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

सवेयगस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ? अणादियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। अणादियस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं। सादियस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

१. सितं बद्धमष्टप्रकारं कर्म ध्मातं-भस्मीकृतं यैस्ते सिद्धाः। —वृत्तिः

अवेयगस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ? साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

अप्पाबहुगं—सव्वत्थोवा अवेयगा, सवेयगा अणंतगुणा। एवं सकसाई चेव अकसाई चेव जहा सवेयगे तहेव भाणियव्वे।

अहवा दुविहा सव्वजीवा—सलेसा य अलेसा य जहा असिद्धा सिद्धा। सव्वत्थोवा अलेसा, सलेसा अणंतगुणा।

२३२. अथवा सब जीव दो प्रकार के हैं, यथा—सेन्द्रिय और अनिन्द्रिय।

भगवन् ! सेन्द्रिय, सेन्द्रिय के रूप में काल से कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! सेन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। अनिन्द्रिय में सादि-अपर्यवसित। दोनों में अन्तर नहीं है। सेन्द्रिय की वक्तव्यता असिद्ध की तरह और अनिन्द्रिय की वक्तव्यता सिद्ध की तरह कहनी चाहिए। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े अनिन्द्रिय हैं और सेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

अथवा दो प्रकार के सर्व जीव हैं—सकायिक और अकायिक। इसी तरह सयोगी और अयोगी (सलेश्य और अलेश्य, सशरीर और अशरीर)। इनकी संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व सेन्द्रिय की तरह जानना चाहिए।

अथवा सब जीव दो प्रकार के हैं—सवेदक और अवेदक।

भगवन् ! सवेदक कितने समय तक सवेदक रहता है ? गौतम ! सवेदक तीन प्रकार के हैं, यथा—अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमें जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक रहता है यावत् वह अनन्तकाल क्षेत्र से देशोन अपार्धपुद्‌गलपरावर्त है।

भगवन् ! अवेदक, अवेदक रूप में कितने काल तक रहता है ? गौतम ! अवेदक दो प्रकार के कहे गये हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमें जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य से एकसमय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

भगवन् ! सवेदक का अन्तर कितने काल का है ? गौतम ! अनादि-अपर्यवसित का अन्तर नहीं होता। अनादि-सपर्यवसित का भी अन्तर नहीं होता। सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

भगवन् ! अवेदक का अन्तर कितना है ? गौतम ! सादि-अपर्यवसित का अन्तर नहीं होता, सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है यावत् देशोन अपार्ध-पुद्‌गलपरावर्त।

अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े अवेदक हैं, उनसे सवेदक अनन्तगुण हैं। इसी प्रकार सकषायिक का भी कथन वैसा करना चाहिए जैसा सवेदक का किया है।

अथवा दो प्रकार के सब जीव हैं—सलेश्य और अलेश्य। जैसा असिद्धों और सिद्धों का कथन किया, वैसा इनका भी कथन करना चाहिए यावत् सबसे थोड़े अलेश्य हैं, उनसे सलेश्य अनन्तगुण हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में सर्वजीवाभिगम की द्विविध प्रतिपत्ति का अन्य-अन्य अपेक्षाओं से प्ररूपण किया गया है।

पूर्वसूत्र में सिद्धत्व और असिद्धत्व को लेकर दो भेद किये थे। इस सूत्र मे सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय, सकायिक-अकायिक, सयोगी-अयोगी, सलेश्य-अलेश्य, सवेदक-अवेदक और सकषाय-अकषाय को लेकर सर्वजीवाभिगम का द्वैविध्य बताया है।

टीकाकार के अनुसार सयोगी-अयोगी के अनन्तर ही सलेश्य-अलेश्य और सशरीर-अशरीर का कथन है, जबकि मूलपाठ में सलेश्य-अलेश्य के विषय में अन्त में अलग सूत्र दिया गया है।

सर्वजीवों के इन दो-दो भेदों में उपाधि और अनोपाधिकृत भेद हैं। कर्मजन्य-उपाधि के कारण सेन्द्रिय, सकायिक, सयोगी, सलेश्य, सवेदक और सकषायिक संसारी जीव कहे गये हैं। जबकि कर्मजन्य उपाधि से रहित होने के कारण अनिन्द्रिय, अकायिक, अयोगी, अलेश्य और अकषायिक सिद्ध जीव कहे गये हैं।

सेन्द्रिय की कायस्थिति और अन्तर असिद्ध की वक्तव्यता के अनुसार और अनिन्द्रिय की वक्तव्यता सिद्ध की वक्तव्यता के अनुसार कहनी चाहिए। वह इस प्रकार है—

भगवन्! सेन्द्रिय के रूप में कितने काल तक रहता है? गौतम! सेन्द्रिय दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। अनिन्द्रिय, अनिन्द्रिय के रूप में कितने समय तक रहता है? गौतम! वह सादि-अपर्यवसित है। भगवन्! सेन्द्रिय का काल से कितना अन्तर है? गौतम! अनादि-अपर्यवसित का अन्तर नहीं है; अनादि-सपर्यवसित का भी अन्तर नही है। अनिन्द्रिय का अन्तर कितना है? गौतम! सादि-अपर्यवसित का अन्तर नही है? अल्पबहुत्व में अनिन्द्रिय थोड़े हैं और सेन्द्रिय अनन्तगुण हैं, क्योंकि सेन्द्रिय वनस्पतिजीव अनन्त हैं।

इसीतरह की वक्तव्यता सकायिक-अकायिक, सयोगी-अयोगी, सलेश्य-अलेश्य और सशरीर-अशरीर जीवों के विषय में भी कहनी चाहिए। अर्थात् इनकी संचिट्ठणा (कायस्थिति), अन्तर और अल्पबहुत्व सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय की तरह ही है।

सवेदक-अवेदक और सकषायिक-अकषायिक के सम्बन्ध में विशेषता होने से पृथक् निरूपण है। वह इस प्रकार है—

सवेदक की कायस्थिति बताते हुए कहा गया है कि सवेदक तीन प्रकार के हैं—१. अनादि-अपर्यवसित, २. अनादि-सपर्यवसित और ३. सादि-सपर्यवसित। उनमें अनादि-अपर्यवसित सवेदक या तो अभव्य जीव है या तथाविध सामग्री के अभाव से मुक्ति में न जाने वाले जीव हैं। क्योंकि कई भव्य जीव भी सिद्ध नहीं होते।[1] अनादि-सपर्यवसित सवेदक वह भव्य जीव है, जो मुक्तिगामी है और जिसने पहले उपशमश्रेणी प्राप्त नहीं की है। सादि-सपर्यवसित सवेदक वह है जो भव्य मुक्तिगामी है और जिसने पहले उपशमश्रेणी प्राप्त की है।

इनमें उपशमश्रेणी को प्राप्त कर वेदोपशम के उत्तरकाल में अवेदकत्व का अनुभव कर श्रेणी समाप्ति पर भवक्षय से अपान्तराल में मरण होने से अथवा उपशमश्रेणी से गिरने पर पुनः

१. "भव्वावि ण सिज्झंति केइ।' इति वचनात्।

वेदोदय हो जाने से सवेदक हो गया जीव सादि-सपर्यवसित सवेदक है। इस सादि-सपर्यवसित सवेदक की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि श्रेणी की समाप्ति पर सवेदक हो जाने के अन्तर्मुहूर्त बाद पुनः श्रेणी पर चढ़कर अवेदक हो सकता है।

यहां शंका हो सकती है कि क्या एक जन्म में दो बार उपशमश्रेणी पर चढ़ा जा सकता है? समाधान करते हुए कहा गया है कि दो बार उपशमश्रेणी हो सकती है, किन्तु एक जन्म में उपशम-श्रेणी और क्षपकश्रेणी ये दोनों श्रेणियां नहीं हो सकती हैं।[1]

सादि-सपर्यवसित सवेदक की उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल, काल-मार्गणा की अपेक्षा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्रमार्गणा से देशोन अपार्द्धपुद्गल-परावर्त है। इतने काल के बाद पूर्वप्रतिपन्न उपशमश्रेणी वाला जीव आसन्नमुक्ति वाला होकर श्रेणी को प्राप्त कर अवेदक हो सकता है।

अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित की संचिट्ठणा नहीं है।

अवेदक के सम्बन्ध में प्रश्न किये जाने पर कहा गया है कि अवेदक दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित (समयानन्तर) क्षीणवेद वाले और सादि-सपर्यवसित उपशान्तवेद वाले। जो सादि-सपर्यवसित अवेदक हैं उनकी संचिट्ठणा जघन्य एक समय, उपशमश्रेणी को प्राप्त कर वेदोपशमन के एक समय बाद मरण होने पर पुनः सवेदक होने की अपेक्षा से। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त, क्योंकि उपशमश्रेणी का काल इतना ही है। इसके बाद पतन होने से नियमतः सवेदक होता है।

अनादि-अपर्यवसित सवेदक का अन्तर नहीं है, क्योंकि अपर्यवसित होने से उस भाव का कभी त्याग नहीं होता। अनादि-सपर्यवसित सवेदक का भी अन्तर नहीं होता, क्योंकि अनादि-सपर्यवसित अपान्तराल में उपशमश्रेणी न करके भावी क्षीणवेदी होता है। क्षीणवेदी के पुनः सवेदक होने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि उसमें प्रतिपात नहीं होता। सादि-सपर्यवसित सवेदक का अन्तर जघन्य एक समय है, क्योंकि दूसरी बार उपशमश्रेणीप्रतिपन्न का वेदोपशमन के अनन्तर समय में किसी का मरण सम्भव है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि दूसरी बार उपशमश्रेणीप्रतिपन्न का वेदोपशमन होने पर श्रेणी का अन्तर्मुहूर्त काल समाप्त होने पर पुनः सवेदकत्व संभव है।

अवेदकसूत्र में सादि-अपर्यवसित अवेदक का अन्तर नहीं है, क्योंकि क्षीणवेद वाला जीव पुनः सवेदक नहीं होता। सादि-सपर्यवसित अवेदक का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उपशमश्रेणी की समाप्ति पर सवेदक होने पर पुनः अन्तर्मुहूर्त में दूसरी बार उपशमश्रेणी पर चढ़कर अवेदकत्व स्थिति हो सकती है। उत्कर्ष से अन्तर अनन्तकाल है। वह अनन्तकाल अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्र से अपार्धपुद्गलपरावर्त है, क्योंकि एक बार उपशमश्रेणी प्राप्त कर यहां अवेदक होकर श्रेणी समाप्ति पर पुनः सवेदक होने की स्थिति में इतने काल के अनन्तर पुनः श्रेणी को प्राप्त कर अवेदक हो सकता है।

इनका अल्पबहुत्व पूर्ववत् जानना चाहिये, अर्थात् अवेदक थोड़े और सवेदक अनन्तगुण हैं, वनस्पतिजीवों की अनन्तता की अपेक्षा से।

---

[1] ... [illegible] उपशमश्रेणिद्वयं तु भवत्येव।"

सकषायिक और अकषायिक जीवों के विषय में यही सवेदक और अवेदक की वक्तव्यता कहनी चाहिए।

२३३. अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—णाणी चेव अण्णाणी चेव। णाणी णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! णाणी दुविहे पण्णत्ते—साईए वा अपज्जवसिए साईए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जेसे साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं। अण्णाणी जहा सवेदया।

णाणिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अण्णाणियस्स दोण्हवि आइल्लाणं णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा णाणी, अण्णाणी अणंतगुणा।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य। संचिट्ठणा अंतरं य जहण्णेणं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं। अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा अणागारोवउत्ता, सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा।

२३३. अथवा सब जीव दो प्रकार के हैं—ज्ञानी और अज्ञानी।

भगवन् ! ज्ञानी, ज्ञानीरूप में कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! ज्ञानी दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमें जो सादि-सपर्यवसित हैं वे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकते हैं।

अज्ञानी के लिए वही वक्तव्यता है जो पूर्वोक्त सवेदक की है।

ज्ञानी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है। आदि के दो अज्ञानी—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर नहीं है। सादि-सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े ज्ञानी, उनसे अज्ञानी अनन्तगुण हैं।

अथवा दो प्रकार के सब जीव हैं—साकार-उपयोग वाले और अनाकार-उपयोग वाले। इनकी संचिट्ठणा और अन्तर जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है। अल्पबहुत्व में अनाकार-उपयोग वाले थोड़े हैं, उनसे साकार-उपयोग वाले संख्येयगुण हैं।

विवेचन—ज्ञानी और अज्ञानी की अपेक्षा से सब जीवों का द्वैविध्य इस सूत्र में कहा गया है। ज्ञानी से यहां सम्यग्ज्ञानी अर्थ अभिप्रेत है और अज्ञानी से मिथ्याज्ञानी अर्थ समझना चाहिए। ज्ञानी दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। केवली सादि-अपर्यवसित हैं, क्योंकि केवलज्ञान सादि-अनन्त है। मतिज्ञानी आदि सादि-सपर्यवसित हैं, क्योंकि मतिज्ञान आदि छाद्मस्थिक होने से सादि-सान्त हैं। इनमें जो सादि-सपर्यवसित ज्ञानी है, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक और उत्कृष्ट से छियासठ सागरोपम तक रहता। सम्यक्त्व की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त है इस अपेक्षा से[1] सम्यक्त्वधारी ज्ञानी की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त बतायी है। सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल छियासठ

१. "सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यासः" इति वचनात्।

सागरोपम से कुछ अधिक है, अतः ज्ञानी की उत्कृष्ट संचिट्ठणा छियासठ सागरोपम से कुछ अधिक बताई है। यह स्थिति सम्यक्त्व से गिरे बिना विजयादि में जाने की अपेक्षा से है। जैसा कि भाष्य में कहा है कि दो बार विजयादि विमान में अथवा तीन बार अच्युत देवलोक में जाने से छियासठ सागरोपम काल और मनुष्य के भवों का काल साधिक में गिनने से उक्त स्थिति बनती है।[1]

अज्ञानी की संचिट्ठणा बताते हुए कहा गया है कि अज्ञानी तीन प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। अनादि-अपर्यवसित अज्ञानी वह है जो कभी मोक्ष में नहीं जायेगा। अनादि-सपर्यवसित अज्ञानी वह है जो अनादि-मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व पाकर और उससे अप्रतिपतित होकर क्षपकश्रेणी को प्राप्त करेगा। सादि-सपर्यवसित अज्ञानी वह है जो सम्यग्दृष्टि बनकर मिथ्यादृष्टि बन गया हो। ऐसा अज्ञानी जघन्य से अन्तर्मुहूर्तकाल उसमें रहकर फिर सम्यग्दृष्टि बन सकता है, इस अपेक्षा से उसकी संचिट्ठणा जघन्य अन्तर्मुहूर्त कही है और उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्र से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है।

अन्तरद्वार—सादि-अपर्यवसित ज्ञानी का अन्तर नहीं होता, क्योंकि अपर्यवसित होने से वह कभी उस रूप का त्याग नहीं करता। सादि-सपर्यवसित ज्ञानी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल तक मिथ्यादर्शन में रहकर फिर ज्ञानी हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल (अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप) है, जो क्षेत्र से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि, सम्यक्त्व से गिरकर इतने काल तक मिथ्यात्व का अनुभव करके अवश्य ही फिर सम्यक्त्व पाता है।

अज्ञानी का अन्तर बताते हुए कहा है कि अनादि-अपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर नहीं है, क्योंकि वह अपर्यवसित होने से उस भाव का त्याग नहीं करता। अनादि-सपर्यवसित अज्ञानी का भी अन्तर नहीं है, क्योंकि केवलज्ञान प्राप्त करने पर वह जाता नहीं है। सादि-सपर्यवसित अज्ञानी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जघन्य सम्यग्दर्शन का काल इतना ही है। उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम का अन्तर है, क्योंकि सम्यग्दर्शन से गिरने के बाद इतने काल तक अज्ञानी रह सकता है।

अल्पबहुत्व सूत्र स्पष्ट ही है। ज्ञानियों से अज्ञानी अनन्तगुण हैं। अज्ञानी वनस्पतिजीव अनन्त हैं।

अथवा सब जीवों के दो भेद उपयोग को लेकर किये गये हैं। दो प्रकार के उपयोग हैं—साकार-उपयोग और अनाकार-उपयोग। उपयोग की द्विरूपता के कारण सब जीव भी दो प्रकार के हैं—साकार-उपयोग वाले और अनाकार-उपयोग वाले।

इन दोनों की संचिट्ठणा और अन्तर जघन्य और उत्कृष्ट दोनों अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त है। यहां टीकाकार लिखते हैं कि सूत्रगति विचित्र होने से यहां सब जीवों से तात्पर्य छद्मस्थ ही लेने चाहिए, केवली नहीं। क्योंकि केवलियों का साकार-अनाकार उपयोग एकसामयिक होने से कायस्थिति और अन्तरद्वार में एकसामयिक भी कहा जाना चाहिए, जो नहीं कहा गया है। वह "अन्तर्मुहूर्त" ही कहा गया है, जो छद्मस्थों में होता है।

१. दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निअच्चुए अहव ताइं।
मइरेगं नरभविय नाणा जीवाण सव्वद्धा॥ —भाष्यगाथा

अल्पबहुत्वद्वार में सबसे थोड़े अनाकार-उपयोग वाले हैं, क्योंकि अनाकार-उपयोग का काल अल्प होने से पृच्छा के समय वे अल्प ही प्राप्त होते हैं। साकार-उपयोग वाले उनसे संख्येयगुण हैं, क्योंकि अनाकार-उपयोग के काल से साकार-उपयोग का काल संख्येयगुण है।

२३४. अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—आहारगा चेव अणाहारगा चेव।

आहारए णं भंते! जाव केवचिरं होइ? गोयमा! आहारए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—छउमत्थआहारए य केवलिआहारए य। छउमत्थआहारए णं जाव केवचिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमयऊणं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव कालओ० खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। केवलिआहारए णं जाव केवचिरं होइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

अणाहारए णं भंते! केवचिरं होइ? गोयमा! अणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—छउमत्थअणाहारए य केवलिअणाहारए य। छउमत्थअणाहारए णं जाव केवचिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं दो समया।

केवलिअणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सिद्धकेवलिअणाहारए य भवत्थकेवलिअणाहारए य। सिद्धकेवलिअणाहारए णं भंते! कालओ केवचिरं होइ? साइए अपज्जवसिए। भवत्थकेवलि-अणाहाराए णं भंते! कइविहे पण्णत्ते? भवत्थकेवलिअणाहाराए दुविहे पण्णत्ते, सजोगिभवत्थ-केवलिअणाहारए य अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य।

सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए णं भंते! कालओ केवचिरं होइ? अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया। अजोगीभवत्थकेवली०? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

छउमत्थआहारगस्स केवइयं कालं अंतरं? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं दो समया।

केवलिआहारगस्स अंतरं अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया। छउमत्थअणाहारगस्स अंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं दुसमयऊणं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

सिद्धकेवलिअणाहारगस्स साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि। अजोगिभवत्थकेवलि-अणाहारगस्स णत्थि अंतरं।

एएसि णं भंते! आहारगाणं अणाहारगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० गोयमा! सव्वत्थोवा अणाहारगा, आहारगा असंखेज्जगुणा।

२३४. अथवा सर्व जीव दो प्रकार के हैं—आहारक और अनाहारक।

भगवन्! आहारक, आहारक के रूप में कितने समय तक रहता है?

गौतम! आहारक दो प्रकार के हैं—छद्मस्थ-आहारक और केवलि-आहारक।

भगवन्! छद्मस्थ-आहारक, आहारक के रूप में कितने काल तक रहता है?

गौतम ! जघन्य दो समय कम क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट से असंख्येय काल तक यावत् क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल का असंख्यातवां भाग।

केवलि-आहारक यावत् काल से कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि।

भगवन् ! अनाहारक यावत् काल से कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! अनाहारक दो प्रकार के हैं—छद्मस्थ-अनाहारक और केवलि-अनाहारक।

भगवन् ! छद्मस्थ-अनाहारक उसी रूप में कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट दो समय तक। केवलि-अनाहारक दो प्रकार के हैं—सिद्धकेवलि-अनाहारक और भवस्थकेवलि-अनाहारक।

भगवन् ! सिद्धकेवलि-अनाहारक उसी रूप में कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! वह सादि-अपर्यवसित है।

भगवन् ! भवस्थकेवलि-अनाहारक कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! दो प्रकार के हैं—सयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक और अयोगि-भवस्थकेवलि-अनाहारक।

भगवन् ! सयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक उसी रूप में कितने समय तक रहता है ? जघन्य उत्कृष्ट रहित तीन समय तक। अयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त।

भगवन् ! छद्मस्थ-आहारक का अन्तर कितना कहा गया है ?

गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय। केवलि-आहारक का अन्तर जघन्य-उत्कृष्ट रहित तीन समय। अनाहारक का अंतर जघन्य दो समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से असंख्यात काल यावत् अंगुल का असंख्यातभाग।

सिद्धकेवलि-अनाहारक सादि-अपर्यवसित है अतः अन्तर नहीं है। सयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट से भी यही है।

अयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक का अन्तर नहीं है।

भगवन् ! इन आहारकों और अनाहारकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े अनाहारक हैं, उनसे आहारक असंख्येयगुण हैं।

विवेचन—आहारक और अनाहारक को लेकर प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीवों के दो प्रकार बताये हैं। विग्रहगतिसमापन्न, केवलिसमुद्घात वाले केवली, अयोगी केवली और सिद्ध—ये ही अनाहारक हैं, शेष जीव आहारक हैं।[1]

---

१. विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा॥

कायस्थिति—आहारक जीव दो प्रकार के हैं—छद्मस्थ-आहारक और केवलि-आहारक। छद्मस्थ-आहारक की जघन्य कायस्थिति दो समय कम क्षुल्लकभवग्रहण है। यह विग्रहगति से आकर क्षुल्लकभव में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है।

लोकनिष्कुट आदि में उत्पन्न होने की स्थिति में चार समय की या पांच समय की भी विग्रहगति होती है, परन्तु बाहुल्य से तीन समय की विग्रहगति होती है। उसी को लेकर यह सूत्र कहा गया है। अन्य पूर्वाचार्यों ने भी यही कहा है। जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र में "एक द्वौ वा अनाहारका:" कहा है।[1] तीन समय की विग्रहगति में से दो समय अनाहारकत्व के हैं। उन दो समयों को छोड़कर शेष क्षुल्लकभव तक जघन्य रूप से आहारक रह सकता है। उत्कर्ष से असंख्यातकाल तक आहारक रह सकता है। यह असंख्येयकाल कालमार्गणा से असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है और क्षेत्रमार्गणा की अपेक्षा अंगुलासंख्येय भाग है। अर्थात् अंगुलमात्र के असंख्येयभाग में जितने आकाश-प्रदेश हैं, उनका प्रतिसमय एक-एक अपहार करने पर जितने काल में वे निर्लेप होते हैं, उतनी उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप हैं। इतने काल तक जीव अविग्रह रूप से उत्पन्न हो सकता है और अविग्रह से उत्पत्ति में सतत आहारकत्व होता है।

केवली-आहारक की जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है। यह अन्तकृतकेवली की अपेक्षा से है। उत्कर्ष से देशोनपूर्वकोटि है। यह पूर्वकोटि आयु वाले को नौ वर्ष की वय में केवलज्ञान उत्पन्न होने की अपेक्षा से है।

अनाहारक दो प्रकार के हैं—छद्मस्थ-अनाहारक और केवली-अनाहारक। छद्मस्थ-अनाहारक जघन्य से एक समय तक अनाहारक रह सकता है। यह दो समय की विग्रहगति की अपेक्षा से है। उत्कर्ष से दो समय अनाहारक रह सकता है। यह तीन समय की विग्रहगति की अपेक्षा से है। चूर्णिकार ने कहा है कि यद्यपि भगवती में चार समय तक अनाहारकत्व कहा है, तथापि वह कादाचित्क होने से यहां उसे स्वीकार न कर बाहुल्य को प्रधानता दी गई है। बाहुल्य से दो समय तक अनाहारक रह सकता है।[2]

केवली-अनाहारक दो प्रकार के हैं—भवस्थकेवली-अनाहारक और सिद्धकेवली-अनाहारक। सिद्धकेवली-अनाहारक सादि-अपर्यवसित हैं। सिद्धों के सादि-अपर्यवसित होने से उनका अनाहारकत्व भी सादि-अपर्यवसित है।

भवस्थकेवली-अनाहारक दो प्रकार के हैं—सयोगिभवस्थकेवली-अनाहारक और अयोगिभवस्थ-केवली-अनाहारक। अयोगिभवस्थकेवली-अनाहारक जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक अनाहारक रह सकता है। अयोगित्व शैलेशी-अवस्था में होता है। उसमें नियम से वह अनाहारक ही होता है, क्योंकि औदारिककाययोग उस समय नहीं रहता। शैलेशी-अवस्था का कालमान जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त ही है। परन्तु जघन्यपद से उत्कृष्टपद अधिक जानना चाहिए, अन्यथा उभयपद देने की आवश्यकता नहीं थी।

१. "एकं द्वौ वा अनाहारका:—" तत्त्वार्थ. अ. २, सू. ३१

२. यद्यपि भगवत्यां चतुःसामयिकोऽनाहारकः उक्तस्तथापि नांगीक्रियते, कदाचित्कोऽसौ भावो येन, बाहुल्यमेवाङ्गीक्रियते; बाहुल्याच्च समयद्वयमेवेति। —वृत्तिः

सयोगिभवस्थकेवली-अनाहारक जघन्य और उत्कर्ष के भेद विना तीन समय तक रह सकता है। यह अष्ट-सामयिक केवलीसमुद्‌घात की अवस्था में तीसरे, चौथे और पांचवें समय में केवल कार्मणकाययोग ही होता है। अतः उन तीन समयों में वह नियम से अनाहारक होता है।[1]

अन्तरद्वार—छद्‌मस्थ-आहारक का अन्तर जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से दो समय है। जितना काल जघन्य और उत्कर्ष से छद्‌मस्थ-अनाहारक का है, उतना ही काल छद्‌मस्थ-आहारक का अन्तरकाल है। वह काल जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से दो समय अनाहारकत्व का है। अतः छद्‌मस्थ-आहारकत्व का अन्तर जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से दो समय कहा है।

केवली-आहारक का अन्तर अजघन्योत्कर्ष से तीन समय का है। केवली-आहारक सयोगी-भवस्थकेवली होता है। उसका अनाहारकत्व तीन समय का ही है जो पहले बताया जा चुका है। केवली-आहारक का अन्तर यही तीन समय का है।

छद्‌मस्थ-अनाहारक का अन्तर जघन्य से दो समय कम क्षुल्लकभव है और उत्कर्ष से असख्येयकाल यावत् अंगुल का असंख्येय भाग है। इसकी स्पष्टता पहले की जा चुकी है। जितना छद्‌मस्थ का आहारककाल है, उतना ही छद्‌मस्थ-अनाहारक का अन्तर है।

सिद्धकेवली-अनाहारक सादि-अपर्यवसित होने से अंतर नहीं है।

सयोगिभवस्थकेवलि-अनाहरक का अन्तर जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि केवलि-समुद्‌घात करने के अनन्तर अन्तर्मुहूर्त में ही शैलेशी-अवस्था हो जाती है। यहां भी जघन्यपद से उत्कृष्टपद विशेषाधिक समझना चाहिए।

अयोगीभवस्थकेवली-अनाहारक का अन्तर नहीं है। क्योंकि अयोगी-अवस्था में सब अनाहारक ही होते हैं। सिद्धों में भी सादि-अपर्यवसित होने से अनाहारक का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े अनाहारक हैं, क्योंकि सिद्ध, विग्रहगतिसमापन्नक, समुद्‌घातगत-केवली और अयोगीकेवली ही अनाहारक हैं। उनसे आहारक असंख्येयगुण हैं।

यहां शंका हो सकती है कि सिद्धों से वनस्पतिजीव अनन्तगुण हैं और वे प्रायः आहारक हैं तो अनन्तगुण क्यों नहीं कहा गया है? समाधान यह है कि प्रतिनिगोद का असंख्येयभाग प्रतिसमय सदा विग्रहगति में होता है और विग्रहगति में जीव अनाहारक होते हैं। इसलिए आहारक असंख्येयगुण ही घटित होते हैं, अनन्तगुण नहीं।

यहां वृत्ति में क्षुल्लक भव के विषय में जानकारी दी गई है। वह उपयोगी होने से यहां भी दी जा रही है।

क्षुल्लकभव—क्षुल्लक का अर्थ लघु या स्तोक है। सबसे छोटे भव (लघु आयु का संवेदनकाल) का ग्रहण क्षुल्लकभवग्रहण है। आवलिकाओं के मान से यह दो सौ छप्पन आवलिका का होता है। एक श्वासोच्छ्‌वास में कुछ अधिक सत्रह क्षुल्लकभव होते हैं। एक मुहूर्त में पैंसठ हजार पांच सौ

---

१. कार्मणशरीरयोगी चतुर्थके पंचमे तृतीये च।
समयत्रयेऽपि तस्माद् भवत्यनाहारको नियमात् ॥ —वृत्ति

छत्तीस (६५५३६) क्षुल्लकभव होते हैं ।[1]

एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) ग्रानप्राण (श्वासोच्छ्वास) होते हैं ।[2] त्रैराशिक से एक उच्छ्वास में सत्रह क्षुल्लकभव प्राप्त होते हैं। पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस में तीन हजार सात सौ तिहत्तर का भाग देने से एक उच्छ्वास में भवों की संख्या प्राप्त होती है। उक्त भाग देने से १७ भव ग्रोर १३९४ शेष बचता है, जिसकी ग्रावलिकाएं कुछ ग्रधिक ९४ होती हैं।

यदि हम एक ग्रानप्राण में ग्रावलिकाग्रों की संख्या जानना चाहते हैं तो २५६ में १७ का गुणा करके उसमें ऊपर की ९४ ग्रावलिकाएं मिलानी चाहिए, तो ४४४६ ग्रावलिकाएं होती हैं। यदि एक मुहूर्त में ग्रावलिकाग्रों की संख्या जानना चाहते हैं तो इन ४४४६ एक श्वासोच्छ्वास की ग्रावलिकाग्रों को एक मुहूर्त के श्वासोच्छ्वास ३७७३ से गुणा करने से १,६७,७४,७५८ ग्रावलिका होती हैं। इसमें साधिक की २४५८ ग्रावलिकाएं मिलाने से १,६७,७७,२१६ ग्रावलिकाएं एक मुहूर्त में होती है।[3]

ग्रथवा मुहूर्त के ६५५३६ क्षुल्लकभवों को एक भव की २५६ ग्रावलिकाग्रों से गुणा करने पर एक मुहूर्त मे ग्रावलिकाग्रों की संख्या ज्ञात हो जाती है। इसलिए जो कहा जाता है कि एक उच्छ्वास-निःश्वास में संख्येय ग्रावलिकाएं हैं, सो समीचीन ही है।

२३५. अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सभासगा य अभासगा य।

सभासए णं भंते ! सभासएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। अभासए णं भंते ! ०? गोयमा ! अभासए दुविहे पण्णत्ते—साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जेसे साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतकालं—अणंता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीग्रो वणस्सइकालो।

भासगस्स णं भंते ! केवइकालं अंतरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं ग्रणंतकालं वणस्सइकालो। अभासगस्स साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। साइय-सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा भासगा, ग्रभासगा ग्रणंतगुणा।

अहवा दुविहा सव्वजीवा ससरीरी य असरीरी य। असरीरी जहा सिद्धा। ससरीरी जहा असिद्धा। थोवा ग्रसरीरी, ससरीरी अणंतगुणा।

२३५. ग्रथवा सर्व जीव दो प्रकार के हैं—सभापक ग्रोर ग्रभापक। भगवन् ! सभापक, सभापक के रूप में कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट से ग्रन्तर्मुहूर्त।

---

१. पन्नट्ठिसहस्साइं पंचेव सया हवंति छत्तीसा।
खुड्डागभवग्गहणा हवंति अंतोमुहुत्तम्मि॥

२. तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइ तेवत्तरिं च ऊसासा।
एस मुहुत्तो भणिग्रो, सव्वेहिं ग्रणंतणाणीहिं॥

३. एगा कोडी सत्तट्ठि लक्ख सत्तत्तरी सहस्सा य।
दोयसया सोलहिया ग्रावलिया मुहुत्तम्मि॥

भंते ! अभापक, अभापक रूप में कितने समय रहता है ? गौतम ! अभापक दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमें जो सादि-सपर्यवसित अभापक हैं, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट में अनन्त काल तक अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल तक अर्थात् वनस्पतिकाल तक।

भगवन् ! भापक का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल।

सादि-अपर्यवसित अभापक का अन्तर नहीं है। सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े भापक हैं, अभापक उनसे अनन्तगुण है।

अथवा सब जीव दो प्रकार के हैं—सशरीरी और अशरीरी। अशरीरी की संचिट्ठणा आदि सिद्धों की तरह तथा सशरीरी की असिद्धों की तरह कहना चाहिए यावत् अशरीरी थोड़े हैं और सशरीरी अनन्तगुण हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में भापक और अभापक की अपेक्षा से सब जीवों के दो भेद कहे गये हैं। जो बोल रहा है वह भापक है और अन्य अभापक हैं।[1]

भापक, भापक के रूप में जघन्य एक समय रहता है। भापा द्रव्य के ग्रहण समय में ही मरण हो जाने से या अन्य किसी कारण से भापा-व्यापार से उपरत हो जाने से एक समय कहा गया है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। इतने काल तक ही भापा द्रव्य का निरन्तर ग्रहण और निसर्ग होता है। इसके बाद तथाविध जीवस्वभाव से वह अवश्य अभापक हो जाता है।

अभापक दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। सादि-अपर्यवसित सिद्ध हैं और सादि-सपर्यवसित पृथ्वीकाय आदि हैं। जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक अभापक रहता है, इसके बाद पुनः भापक हो जाता है। अथवा पृथ्वी आदि भव की जघन्य स्थिति इतने ही काल की है। उत्कर्ष से अभापक, अभापक रूप में वनस्पतिकाल पर्यन्त रहता है। वह वनस्पतिकाल अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्रमार्गणा से अनन्त लोकाकाश के प्रदेशों का प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर उनके निर्लेप होने में जितना काल लगता है, उतना काल है; यह काल असंख्येय पुद्गलपरावर्त रूप है। इन पुद्गलपरावर्तों का प्रमाण आवलिका के असंख्येयभागवर्ती समयों के बराबर है। वनस्पति में इतने काल तक अभापक रूप में रह सकता है।

अन्तरद्वार—भापक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से अनन्तकाल—वनस्पतिकाल है। अभापक रहने का जो काल है, वही भापक का अन्तर है। सादि-अपर्यवसित अभापक का अन्तर नहीं है। क्योंकि वह अपर्यवसित है। सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि भापक का काल ही अभापक का अन्तर है। भापक का काल जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त ही है। अल्पबहुत्वसूत्र स्पष्ट ही है।

---

१. भापमाणा भापका इतरेऽभापकाः। —वृत्ति

सशरीरी और अशरीरी की वक्तव्यता सिद्ध और असिद्धवत् जाननी चाहिए।

२३६. अथवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—चरिमा चेव अचरिमा चेव।

चरिमे णं भंते ! चरिमेत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! चरिमे अणाइए सपज्जवसिए। अचरिमे दुविहे पण्णत्ते—अणाइए वा अपज्जवसिए, साइए वा अपज्जवसिए। दोण्हंपि णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा अचरिमा, चरिमा अणंतगुणा। (सेत्तं दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।)

२३६. अथवा सर्व जीव दो प्रकार के हैं—चरम और अचरम।

भगवन् ! चरम, चरमरूप में कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! चरम अनादि-सपर्यवसित है। अचरम दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और सादि-अपर्यवसित। दोनों का अन्तर नहीं है। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े अचरम हैं, उनसे चरम अनन्तगुण हैं। (यह सर्व जीवों की दो भेदरूप प्रतिपत्ति पूरी हुई।)

विवेचन—चरम और अचरम के रूप में सर्व जीवों के दो भेद इस सूत्र में वर्णित हैं। चरम भव वाले भव्य विशेष जो सिद्ध होंगे, वे चरम कहलाते हैं। इनसे विपरीत अचरम कहलाते हैं। ये अचरम हैं अभव्य और सिद्ध।

कायस्थितिसूत्र में चरम अनादि-सपर्यवसित हैं अन्यथा वह चरम नहीं कहा जा सकता। अचरमसूत्र में अचरम दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और सादि-अपर्यवसित। अनादि-अपर्यवसित-अचरम अभव्य जीव है और सादि-अपर्यवसित-अचरम सिद्ध हैं।

अन्तरद्वार में दोनों का अन्तर नहीं है। अनादि-सपर्यवसित-चरम का अन्तर नहीं है, क्योंकि चरमत्व के जाने पर पुनः चरमत्व सम्भव नहीं है। अचरम चाहे अनादि-अपर्यवसित हो, चाहे सादि-अपर्यवसित हो, उसका अन्तर नहीं है, क्योंकि इनका चरमत्व होता ही नहीं।

अल्पबहुत्वसूत्र में सबसे थोड़े अचरम हैं, क्योंकि अभव्य और सिद्ध ही अचरम हैं। उनसे चरम अनन्तगुण हैं। सामान्य भव की अपेक्षा से यह कथन समझना चाहिए, अन्यथा अनन्तगुण नहीं घट सकता। जैसा कि मूल टीकाकार ने कहा है—"चरम-अनन्तगुण हैं। सामान्य भव्यों की अपेक्षा से यह समझना चाहिए। सूत्रों का विषय-विभाग दुर्लक्ष्य है।[1]"

इस प्रकार सर्व जीव सम्बन्धी द्विविध प्रतिपत्ति पूरी हुई। इसमें कही गई द्विविध वक्तव्यता को संग्रहीत करनेवाली गाथा इस प्रकार है—

सिद्धसइंदियकाए जोए वेए कसायलेसा य।
नाणुवओगाहारा भाससरीरी य चरमो य ॥

इसका अर्थ स्पष्ट ही है।

---

१. "चरमा अनन्तगुणाः, सामान्यभव्यापेक्षमेतदिति भावनीयं, दुर्लक्ष्यः सूत्राणां विषयविभागः।"

सर्वजीव-त्रिविध-वक्तव्यता

२३७. तत्थ णं जेते एवमाहंसु तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु तं जहा—सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी।

सम्मदिट्ठी णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! सम्मदिट्ठी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ जेते साइए सपज्जवसिए, से जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

मिच्छादिट्ठी तिविहे—साइए वा सपज्जवसिए, अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए। तत्थ जेते साइए-सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

सम्मामिच्छादिट्ठी जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं।

सम्मदिट्ठिस्स अंतरं साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसणं अणंतकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं। मिच्छादिट्ठिस्स अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं। सम्मामिच्छादिट्ठिस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा सम्मामिच्छादिट्ठी, सम्मदिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।

२३७. जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव तीन प्रकार के हैं, उनका मंतव्य इस प्रकार है—यथा सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

भगवन् ! सम्यग्दृष्टि काल से सम्यग्दृष्टि कब तक रह सकता है ?

गौतम ! सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। जो सादि-सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि हैं, वे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकते हैं।

मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार के हैं—सादि-सपर्यवसित, अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। इनमें जो सादि-सपर्यवसित हैं वे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक जो यावत् देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है, मिथ्यादृष्टि रूप से रह सकते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है।

सम्यग्दृष्टि के अन्तरद्वार में सादि-अपर्यवसित का अंतर नहीं है, सादि-सपर्यवसित का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है, जो यावत् अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है।

अनादि-अपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर नहीं है, अनादि-सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का भी अन्तर नहीं है, सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है।

अल्पबहुत्वद्वार में सबसे थोड़े सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं, उनसे सम्यग्दृष्टि अनन्तगुण हैं और उनसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुण हैं।

विवेचन—सर्व जीव तीन प्रकार के हैं--सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। इनका स्वरूप पहले बताया जा चुका है। यहां इनकी कायस्थिति (संचिट्ठणा), अन्तर और अल्पबहुत्व को लेकर विवेचना की गई है।

कायस्थिति—सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित (क्षायिक सम्यग्दृष्टि) और सादि-सपर्यवसित (क्षायोपशमिक आदि सम्यग्दर्शनी)। इनमें जो सादि-सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि हैं, उनकी सञ्चिट्ठणा (कायस्थिति) जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि विचित्र कर्मपरिणाम होने से इतने काल के पश्चात् कोई जीव मिथ्यात्व में चला जा सकता है। उत्कर्ष से छियासठ सागरोपम तक वह रह सकता है। इसके बाद नियम से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन नहीं रहता।

मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार के हैं--अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमें जो सादि-सपर्यवसित है वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। इतने काल के बाद कोई जीव पुनः सम्यग्दर्शन पा सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल तक रह सकता है। यह अनन्तकाल कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है और क्षेत्रमार्गणा से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है, क्योंकि जिसने पहले एक बार भी सम्यक्त्व पा लिया हो, वह इतने काल के बाद पुनः अवश्य सम्यग्दर्शन पा लेता है। पूर्व सम्यक्त्व के प्रभाव से उसने संसार को परित्त कर लिया होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि उस रूप में जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है, क्योंकि स्वभावतः मिश्रदृष्टि का इतना ही कालप्रमाण है। केवल जघन्य से उत्कृष्ट पद अधिक है।

अन्तरद्वार—सादि-अपर्यवसित सम्यग्दृष्टि का अन्तर नहीं है, क्योंकि वह अपर्यवसित है। सादि-सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि सम्यक्त्व से गिरकर कोई जीव अन्तर्मुहूर्त काल में पुनः सम्यक्त्व पा लेता है। उत्कर्ष से उसका अन्तर अनन्तकाल अर्थात् अपार्धपुद्गलपरावर्त है।

अनादि-अपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर नहीं है, क्योंकि उसका मिथ्यात्व छूटता ही नहीं है। अनादि-सपर्यवसित मिथ्यात्व का भी अन्तर नहीं है, क्योंकि छूटकर पुनः होने पर अनादित्व नहीं रहता।

सादि-सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है, क्योंकि सम्यग्दर्शन का काल ही मिथ्यादर्शन का प्रायः अन्तर है। सम्यग्दर्शन का जघन्य और उत्कर्ष काल इतना ही है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादर्शन से गिरकर कोई अन्तर्मुहूर्त में फिर सम्यग्मिथ्यादर्शन पा लेता है। उत्कर्ष से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त का

अन्तर है। यदि सम्यग्मिथ्यादर्शन से गिरकर फिर सम्यग्मिथ्यादर्शन का लाभ हो तो नियम से इतने काल के बाद होता ही है, अन्यथा मुक्ति होती है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं, क्योंकि तद्योग्य परिणाम थोड़े काल तक रहते हैं और पृच्छा के समय वे अल्प ही प्राप्त होते हैं। उनसे सम्यग्दृष्टि अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्ध जीव भी सम्यग्दृष्टि हैं और वे अनन्त हैं। उनसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिजीव सिद्धों से भी अनन्तगुण हैं और वे मिथ्यादृष्टि हैं।

२३८. अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—परित्ता अपरित्ता नोपरित्ता-नोअपरित्ता।

परित्ते णं भंते! कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! परित्ते दुविहे पण्णत्ते—कायपरित्ते य संसारपरित्ते य। कायपरित्ते णं भंते! कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहन्नेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोगा।

संसारपरित्ते णं भंते! संसारपरित्तेत्ति कालओ केवचिरं होइ? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

अपरित्ते णं भंते० ? अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते—कायअपरित्ते य संसारअपरित्ते य। कायअपरित्ते णं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो।

संसारापरित्ते दुविहे पण्णत्ते—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

णोपरित्ते-णोअपरित्ते साइए अपज्जवसिए।

कायपरित्तस्स जहन्नेणं अंतरं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। संसारपरित्तस्स णत्थि अंतरं। कायपरित्तस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं पुढविकालो। संसारापरित्तस्स अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। अणाइयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं। णोपरित्त-नोअपरित्तस्सवि णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा परित्ता, णोपरित्ता-नोअपरित्ता अणंतगुणा, अपरित्ता अणंतगुणा।

२३८. अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के हैं—परित्त, अपरित्त और नोपरित्त-नोअपरित्त।

भगवन्! परित्त, परित्त के रूप में कितने काल तक रहता है? गौतम! परित्त दो प्रकार के हैं—कायपरित्त और संसारपरित्त।

भगवन्! कायपरित्त, कायपरित्त के रूप में कितने काल तक रहता है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असंख्येय काल तक यावत् असंख्येय लोक।

भंते! संसारपरित्त, संसारपरित्त के रूप में कितने काल तक रहता है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल जो यावत् देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्तरूप है।

भगवन्! अपरित्त, अपरित्त के रूप में कितने काल तक रहता है? गौतम! अपरित्त दो प्रकार के हैं—काय-अपरित्त और संसार-अपरित्त।

भगवन्! काय-अपरित्त, काय-अपरित्त के रूप में कितने काल रहता है? गौतम! जघन्य से अंतर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल तक रहता है।

संसार-अपरित्त दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित।

नोपरित्त-नोअपरित्त सादि-अपर्यवसित है। कायपरित्त का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है। संसारपरित्त का अन्तर नहीं है। काय-अपरित्त का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्येयकाल अर्थात् पृथ्वीकाल है। अनादि-अपर्यवसित संसारापरित्त का अंतर नहीं है। अनादि-सपर्यवसित संसारापरित्त का अन्तर नहीं है। अनादि-सपर्यवसित संसारापरित्त का भी अन्तर नहीं है। नोपरित्त-नोअपरित्त का भी अन्तर नहीं है। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े परित्त है, नोपरित्त-नोअपरित्त अनन्तगुण है और अपरित्त अनन्तगुण है।

विवेचन—अन्य विवक्षा से सर्व संसारी जीव तीन प्रकार के हैं—परित्त, अपरित्त और नोपरित्त-नोअपरित्त। परित्त का सामान्यतया अर्थ है सीमित। जिन्होंने संसार को तथा साधारण वनस्पतिकाय को सीमित कर दिया है, वे जीव परित्त कहलाते हैं। इससे विपरीत अपरित्त हैं तथा सिद्धजीव नोपरित्त-नोअपरित्त है। इन तीनों प्रकार के जीवों की कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व का विचार इस सूत्र में किया गया है।

कायस्थिति—परित्त दो प्रकार के हैं—कायपरित्त और संसारपरित्त। कायपरित्त अर्थात् प्रत्येकशरीर। संसारपरित्त अर्थात् जिसका संसार-परिभ्रमणकाल अपार्धपुद्गलपरावर्त के अन्दर-अन्दर है।

कायपरित्त जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक कायपरित्त रह सकता है। वह साधारणवनस्पति से परित्तों में अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः साधारण में चले जाने की अपेक्षा से है। उत्कर्ष से असंख्येयकाल तक रह सकता है। यह असंख्येयकाल असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्र से असंख्येय लोकों के आकाशप्रदेशों का प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर जितने समय में वे निर्लेप हो जायें, उतने समय तक का है। अथवा यों कह सकते हैं कि पृथ्वीकाय आदि प्रत्येकशरीरी का जितना संचिट्ठणकाल है, उतने काल तक रह सकता है। इसके पश्चात् नियम से साधारण रूप में पैदा होता है।

संसारपरित्त जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक उसी रूप में रह सकता है। इसके बाद कोई अन्तकृत्-केवली होकर मोक्ष में जा सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल तक उसी रूप में रह सकता है। वह अनन्तकाल कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप होता है और क्षेत्र से अपार्धपुद्गल-परावर्त होता है। इसके बाद नियम से वह सिद्धि प्राप्त करता है। अन्यथा संसारपरित्तत्व का कोई मतलब नहीं रहता।

अपरित्त दो प्रकार के हैं—काय-अपरित्त और संसार-अपरित्त। काय-अपरित्त साधारण-वनस्पति जीव हैं और संसार-अपरित्त कृष्णपाक्षिक जीव हैं।

काय-अपरित्त जघन्य से अन्तर्मुहूर्त उसी रूप में रह सकता है, तदनन्तर किसी भी प्रत्येक-शरीरी में जा सकता है। उत्कर्ष से वह अनन्तकाल तक उसी रूप में रह सकता है। यह अनन्तकाल वनस्पतिकाल है, जिसका स्पष्टीकरण पहले कालमार्गणा और क्षेत्रमार्गणा से किया जा चुका है।

संसार-अपरित्त दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित, जो कभी मोक्ष में नहीं जायेगा और अनादि-सपर्यवसित (भव्य विशेष)।

नोपरित्त-नोअपरित्त सिद्ध जीव हैं। वह सादि-अपर्यवसित है, क्योंकि वहां से प्रतिपात नहीं होता।

अन्तरद्वार—काय-परित्त का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। साधारणों में अन्तर्मुहूर्त तक रहकर पुनः प्रत्येकशरीरी में आया जा सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल पूर्वोक्त वनस्पतिकाल समझना चाहिए। उतने काल तक साधारण रूप में रह सकता है।

संसार-परित्त का अन्तर नहीं है। क्योंकि संसार-परित्तत्व से छूटने पर पुनः संसार-परित्तत्व नहीं होता तथा मुक्त का प्रतिपात नहीं होता।

काय-अपरित्त का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। प्रत्येक-शरीरों में अन्तर्मुहूर्त तक रहकर पुनः काय-अपरित्तों में आना संभव है। उत्कर्ष से असंख्येयकाल का अन्तर है। यह असंख्येयकाल पृथ्वी काल है। इसका स्पष्टीकरण कालमार्गणा और क्षेत्रमार्गणा से पहले किया जा चुका है। पृथ्वी आदि प्रत्येकशरीरी भवों में भ्रमणकाल उत्कर्ष से इतना ही है।

संसार-अपरित्तों में जो अनादि-अपर्यवसित हैं, उनका अन्तर नहीं होता अपर्यवसित होने से और अनादि-सपर्यवसित का भी अन्तर नहीं होता, क्योंकि संसार-अपरित्तत्व के जाने पर पुनः संसार-अपरित्तत्व संभव नहीं है।

नोपरित्त-नोअपरित्त का भी अन्तर नहीं है, क्योंकि वे सादि-अपर्यवसित होते हैं।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े परित्त हैं, क्योंकि काय-परित्त और संसार-परित्त जीव थोड़े हैं। उनसे नोपरित्त-नोअपरित्त अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। उनसे अपरित्त अनन्तगुण हैं, क्योंकि कृष्णपाक्षिक अतिप्रभूत हैं।

२३९. अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा, नोपज्जत्तगा-नोअपज्जत्तगा। पज्जत्तगे णं भंते! ० ? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। अपज्जत्तो णं भंते० ? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। नोपज्जत्त-नोअपज्जत्तए साइए अपज्जवसिए।

पज्जत्तगस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। अपज्जत्तगस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। तइयस्स णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा नोपज्जत्तग-नोअपज्जत्तगा, अपज्जत्तगा अणंतगुणा, पज्जत्तगा संखिज्जगुणा।

२३९. अथवा सब जीव तीन तरह के हैं—पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक।

भगवन्! पर्याप्तक, पर्याप्तक रूप में कितने समय तक रहता है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ सागरोपम) तक रह सकता है।

भगवन्! अपर्याप्तक, अपर्याप्तक के रूप में कितने समय तक रह सकता है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है।

नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक सादि-अपर्यवसित है।

भगवन् ! पर्याप्तक का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त है। अपर्याप्तक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपशत-पृथक्त्व है। तृतीय नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक हैं, उनसे अपर्याप्तक अनन्तगुण हैं, उनसे पर्याप्तक संख्येयगुण हैं।

विवेचन—पर्याप्तक की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। जो अपर्याप्तकों से पर्याप्तक में उत्पन्न होकर वहां अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर अपर्याप्त में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। उत्कृष्ट कायस्थिति दो सौ से लेकर नौ सौ सागरोपम से कुछ अधिक है। इसके बाद नियम से अपर्याप्तक रूप में जन्म होता है। यह कथन लब्धि की अपेक्षा से है, अतः अपान्तराल में उपपात अपर्याप्तकत्व के होने पर भी कोई दोष नहीं है। अपर्याप्त की कायस्थिति जघन्य और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, क्योंकि अपर्याप्तलब्धि का इतना ही काल है। जघन्य से उत्कृष्ट पद अधिक है। नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक सिद्ध हैं। वे सादि-अपर्यवसित है, अतः सदाकाल उसी रूप में रहते हैं।

पर्याप्तक का अन्तर जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि अपर्याप्तकाल ही पर्याप्तक का अन्तर है। अपर्याप्तकाल जघन्य से और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त ही है। अपर्याप्तक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सागरोपम-शतपृथक्त्व है। पर्याप्तक काल ही अपर्याप्तक अन्तर है और पर्याप्तकाल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक सागरोपशमतपृथक्त्व ही है।

नोपर्याप्त-नोअपर्याप्त का अन्तर नहीं है, क्योंकि वे सिद्ध हैं और वे अपर्यवसित हैं।

अल्पबहुत्वद्वार में सबसे थोड़े नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक हैं, क्योंकि सिद्ध जीव शेष जीवों की अपेक्षा अल्प हैं। उनसे अपर्याप्तक अनन्तगुण हैं, क्योंकि निगोदजीवों में अपर्याप्तक अनन्तानन्त सदैव लभ्यमान हैं। उनसे पर्याप्तक संख्येयगुण है, क्योंकि सूक्ष्मों में ओघ से अपर्याप्तकों से पर्याप्तक संख्येयगुण हैं।

२४०. अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा बायरा नोसुहुम-नोबायरा।

सुहुमे णं भंते ! सुहुमेत्ति कालओ केवचिरं होइ ? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखिज्जकालं पुढविकालो। बायरा जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखिज्जकालं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो। नोसुहुम-नोबायरे साइए अपज्जवसिए।

सुहुमस्स अंतरं बायरकालो। बायरस्स अंतरं सुहुमकालो। तइयस्स नोसुहुम-नोबायरस्स अंतरं णत्थि।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा नोसुहुम-नोबायरा, बायरा अणंतगुणा, सुहुमा असंखेज्जगुणा।

२४०. अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के हैं—सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोबादर।

भगवन् ! सूक्ष्म, सूक्ष्म के रूप में कितने समय तक रहता है। गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त

और उत्कर्ष से असंख्येयकाल अर्थात् पृथ्वीकाल तक रहता है। बादर, बादर के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्येयकाल तक रहता है। यह असंख्येयकाल असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है कालमार्गणा से। क्षेत्रमार्गणा से अंगुल का असंख्येयभाग है।

नोसूक्ष्म-नोबादर सादि-अपर्यवसित है। सूक्ष्म का अन्तर बादरकाल है और बादर का अन्तर सूक्ष्मकाल है। तीसरे नोसूक्ष्म-नोबादर का अन्तर नहीं है। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े नोसूक्ष्म-नोबादर हैं, उनसे बादर अनन्तगुण हैं और उनसे सूक्ष्म असंख्येयगुण हैं।

विवेचन—सूक्ष्म और बादर को लेकर तीन प्रकार के सर्व जीव कहे हैं—सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोबादर। इन तीनों की कायस्थिति, अन्तर तथा अल्पबहुत्व इस सूत्र में बताया है।

कायस्थिति—सूक्ष्म की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। उसके बाद पुनः बादरों में उत्पत्ति हो सकती है। उत्कर्ष से कायस्थिति असंख्येयकाल है। यह असंख्येयकाल असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है कालमार्गणा से, क्षेत्रमार्गणा से असंख्येय लोकाकाश के प्रदेशों के प्रति-समय एक-एक के अपहारमान से निर्लेप होने के काल के बराबर है। यही पृथ्वीकाल कहा जाता है।

बादर की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। इसके बाद कोई जीव पुनः सूक्ष्मों में चला जाता है। उत्कर्ष से असंख्येयकाल है। यह असंख्येयकाल असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है कालमार्गणा से, क्षेत्रमार्गणा से अंगुलासंख्येयभाग है। अर्थात् अंगुलमात्र क्षेत्र के असंख्येयभागवर्ती आकाश-प्रदेशों के प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार किये जाने पर निर्लेप होने के काल के बराबर है। इतने समय के बाद संसारी जीव सूक्ष्मों में नियमतः उत्पन्न होता है।

नोसूक्ष्म-नोबादर सिद्ध जीव हैं, सादि-अपर्यवसित होने से सदा उसी रूप में बने रहते हैं।

अन्तरद्वार—सूक्ष्म का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असंख्येयकाल है। यह असंख्येयकाल अंगुलासंख्येयभाग है। बादरकाल इतना ही है। बादर का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असंख्येयकाल है। यह असंख्येयकाल क्षेत्र से असंख्येय लोकप्रमाण है। सूक्ष्मकाल इतना ही है।

नोसूक्ष्म-नोबादर का अन्तर नहीं है, क्योंकि वह सादि-अपर्यवसित है। अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं होता।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े नोसूक्ष्म-नोबादर हैं, क्योंकि सिद्धजीव अन्य जीवों की अपेक्षा अल्प हैं। उनसे बादर अनन्तगुण हैं, क्योंकि बादरनिगोद जीव सिद्धों से भी अनन्तगुण हैं, उनसे सूक्ष्म असंख्येयगुण हैं क्योंकि बादरनिगोदों से सूक्ष्मनिगोद असंख्यातगुण हैं।

२४१. अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सण्णी, असण्णी, नोसण्णी-नोअसण्णी।

सण्णी णं भंते! कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। असण्णी जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। नोसण्णी-नोअसण्णी साइए-अपज्जवसिए।

सण्णिस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। असण्णिस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, तइयस्स णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा सण्णी, नोसण्णी-नोअसण्णी अणंतगुणा, असण्णी अणंतगुणा।

२४१. अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के हैं—संज्ञी, असंज्ञी, नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी।

भगवन्! संज्ञी, संज्ञी रूप मे कितने समय तक रहता है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से सागरोपमशतपृथक्त्व से कुछ अधिक समय तक रहता है। असंज्ञी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी सादि-अपर्यवसित है, अतः सदाकाल रहता है।

संज्ञी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। असंज्ञी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े संज्ञी हैं, उनसे नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी अनन्तगुण हैं और उनसे असंज्ञी अनन्तगुण हैं।

विवेचन—संज्ञी, असंज्ञी की विवक्षा से जीवों का त्रैविध्य इस सूत्र में बताकर उनकी संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन किया गया है।

कायस्थिति (संचिट्ठणा)—संज्ञी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक उसी रूप में रह सकता है। इसके बाद पुनः कोई असंज्ञियों में जा सकता है। उत्कर्ष से साधिक दो सौ सागरोपम से नौ सौ सागरोपम तक रह सकता है। इसके बाद संसारी जीव अवश्य असंज्ञी में उत्पन्न होता है।

असंज्ञी की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। इसके बाद वह पुनः संज्ञियों में उत्पन्न हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल तक असंज्ञियों में रह सकता है। यह अनन्तकाल वनस्पतिकाल है। कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्रमार्गणा से अनन्तलोक तथा असंख्येय पुद्गलपरावर्त रूप है। उन पुद्गलपरावर्तों का प्रमाण आवलिका के असंख्येयभागवर्ती समयों के बराबर है।

नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव सिद्ध है। वे सादि-अपर्यवसित है। अपर्यवसित होने से सदा उसी रूप में रहते हैं।

अन्तरद्वार—संज्ञी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो वनस्पतिकाल तुल्य है। असंज्ञी का अवस्थानकाल जघन्य और उत्कर्ष से इतना ही है।

असंज्ञी का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है, क्योंकि संज्ञी का अवस्थानकाल जघन्य-उत्कर्ष से इतना ही है।

नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी का अन्तर नहीं है, क्योंकि वे सादि-अपर्यवसित हैं। अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं होता।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े संज्ञी हैं, क्योंकि देव, नारक और गर्भव्युत्क्रान्तिक तिर्यंच और मनुष्य ही संज्ञी हैं। उनसे नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पति को छोड़कर शेष जीवों से सिद्ध अनन्तगुण हैं, उनसे असंज्ञी अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिजीव सिद्धों से अनन्तगुण हैं।

२४२. अहवा सव्वजीवा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवसिद्धिया अभवसिद्धिया, नोभवसिद्धिया-नोअभवसिद्धिया।

अणाइया सपज्जवसिया भवसिद्धिया, अणाइया अपज्जवसिया अभवसिद्धिया, साइय-अपज्जवसिया नोभवसिद्धिया-नोअभवसिद्धिया। तिण्हंपि नत्थि अंतरं। अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया, णोभवसिद्धिया-णोअभवसिद्धिया अणंतगुणा, भवसिद्धिया अणंतगुणा।

२४२. अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के हैं—भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक।

भवसिद्धिक जीव अनादि-सपर्यवसित हैं। अभवसिद्धिक अनादि-अपर्यवसित हैं और उभयप्रतिषेधरूप सिद्ध जीव सादि-अपर्यवसित हैं। अतः तीनों का अन्तर नहीं है। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े अभवसिद्धिक हैं, उभयप्रतिषेधरूप सिद्ध उनसे अनन्तगुण हैं और भवसिद्धिक उनसे अनन्तगुण हैं।

विवेचन—भव्य-अभव्य को लेकर सर्वजीवों का त्रैविध्य यहां बताया है। जिनकी सिद्धि होने वाली है वे भव्य हैं, जिनकी सिद्धि कभी नहीं होगी, वे अभव्य हैं और जो भव्यत्व और अभव्यत्व के विशेषण से रहित हैं, वे सिद्धजीव नोभव्य-नोअभव्य हैं।

भवसिद्धिक जीव अनादि-सपर्यवसित हैं, अन्यथा वे भवसिद्धिक नहीं हो सकते। अभवसिद्धिक अनादि-अपर्यवसित हैं, अन्यथा वे अभवसिद्धिक नहीं हो सकते। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक सादि-अपर्यवसित हैं, क्योंकि सिद्धों का प्रतिपात नहीं होता। अतएव इनकी अवधि न होने से काय-स्थिति सम्बन्धी प्रश्न नहीं है तथा इन तीनों का अन्तर भी नहीं घटता है, क्योंकि भवसिद्धिकत्व जाने पर पुनः भवसिद्धिकत्व असंभव है। अभवसिद्धिक का भी अन्तर नहीं है, क्योंकि वह अपर्यवसित होने से कभी नहीं छूटता। सिद्ध भी सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है। अल्पबहुत्वद्वार में सबसे थोड़े अभव्य हैं, क्योंकि वे जघन्य युक्तानन्तक के तुल्य है। उभयप्रतिषेधरूप सिद्ध उनसे अनन्तगुण हैं, क्योंकि अभव्यों से सिद्ध अनन्तगुण हैं और उनसे भवसिद्धिक अनन्तगुण हैं, क्योंकि भव्य जीव सिद्धों से भी अनन्तगुण हैं।

२४३. अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—तसा, थावरा, नोतसा-नोथावरा।

तसे णं भंते! कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइं। थावरस्स संचिट्ठणा वणस्सइकालो। णोतसा-नोथावरा साइ-अपज्जवसिया।

तसस्स अंतरं वणस्सइकालो। थावरस्स अंतरं दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइं। णोतस-थावरस्स नत्थि अंतरं। अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा तसा, नोतसा-नोथावरा अणंतगुणा, थावरा अणंतगुणा।

से तं तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२४३. अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के हैं—त्रस, स्थावर और नोत्रस-नोस्थावर।

भगवन्! त्रस, त्रस के रूप में कितने काल तक रहता है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त

और उत्कृष्ट साधिक दो हजार सागरोपम तक रह सकता है। स्थावर, स्थावर के रूप में वनस्पतिकाल पर्यन्त रह सकता है। नोत्रस-नोस्थावर सादि-अपर्यवसित हैं।

त्रस का अन्तर वनस्पतिकाल है और स्थावर का अन्तर साधिक दो हजार सागरोपम है। नोत्रस-नोस्थावर का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े त्रस हैं, उनसे नोत्रस-नोस्थावर (सिद्ध) अनन्तगुण है और उनसे स्थावर अनन्तगुण हैं।

यह सर्व जीवों की त्रिविध प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

(यह सूत्र वृत्ति में नहीं है। भवसिद्धिकादि सूत्र के बाद "से तं तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता" कहकर समाप्ति की गई है।)

सर्वजीव-चतुर्विध-वक्तव्यता

२४४. तत्थ णं जेते एवमाहंसु चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी, अजोगी।

मणजोगी णं भंते !० ? जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। एवं वइजोगीवि। कायजोगी जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अजोगी साइए अपज्जवसिए।

मणजोगिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। एवं वइजोगिस्सवि। कायजोगिस्स जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। अयोगिस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा मणजोगी, वइजोगी असंखेज्जगुणा, अजोगी अणंतगुणा, कायजोगी अणंतगुणा।

२४४. जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव चार प्रकार के हैं, उनके कथनानुसार वे चार प्रकार ये है—मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी।

भगवन् ! मनोयोगी, मनोयोगी रूप में कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। वचनयोगी भी इतना ही रहता है। काययोगी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल तक रहता है। अयोगी सादि-अपर्यवसित है।

मनोयोगी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। वचनयोगी का भी अन्तर इतना ही है। काययोगी का जघन्य अन्तर एक समय का है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अयोगी का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोडे मनोयोगी, उनसे वचनयोगी असंख्यातगुण, उनसे अयोगी अनन्तगुण और उनसे काययोगी अनन्तगुण हैं।

विवेचन—योग-अयोग की अपेक्षा से यहां सर्व जीवों के चार भेद कहे गये हैं—मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी। इन चारों की संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है।

संचिट्ठणा—मनोयोगी जघन्य से एक समय तक मनोयोगी रह सकता है। उसके बाद द्वितीय समय में मरण हो जाने से या मनन से उपरत हो जाने की अपेक्षा से एक समय कहा गया है। जैसाकि

पहले भाषक के विषय में कहा गया है। विशिष्ट मनोयोग्य पुद्गल-ग्रहण की अपेक्षा यह समझना चाहिए। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक मनोयोगी रह सकता है। तथारूप जीवस्वभाव से इसके बाद यह नियम से उपरत हो जाता है। वचनयोगी से यहां मनोयोगरहित केवल वाग्योगवान द्वीन्द्रियादि अभिप्रेत हैं। वे जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक रह सकते हैं। यह भी विशिष्ट वाग्द्रव्यग्रहण की अपेक्षा से ही समझना चाहिए।

काययोगी से यहां तात्पर्य वाग्योग-मनोयोग से विकल एकेन्द्रियादि ही अभिप्रेत हैं। वे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त उसी रूप में रहते हैं। द्वीन्द्रियादि से निकल कर पृथ्वी आदि में अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर द्वीन्द्रियों में गमन हो सकता है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल तक उस रूप में रहा जा सकता है।

अयोगी सिद्ध हैं। वे सादि-अपर्यवसित हैं, अतः वे सदा उसी रूप में रहते हैं।

अन्तरद्वार—मनोयोगी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। इसके बाद पुनः विशिष्ट मनोयोग्य पुद्गलों का ग्रहण संभव है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। इतने काल तक वनस्पति में रहकर पुनः मनोयोगियों में आगमन संभव है।

इसी तरह वाग्योगी का जघन्य और उत्कर्ष अन्तर भी जान लेना चाहिए।

काययोगी का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अंतर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह कथन औदारिककाययोग की अपेक्षा से कहा गया है। क्योंकि दो समय वाली अपान्तरालगति में एक समय का अन्तर है। उत्कर्ष से अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह कथन परिपूर्ण औदारिकशरीरपर्याप्ति की परिसमाप्ति की अपेक्षा से है। यहां विग्रह समय लेकर औदारिकशरीरपर्याप्ति की समाप्ति तक अन्तर्मुहूर्त का अन्तर है। अतः उत्कर्ष से अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। वृत्तिकार ने इस कथन के समर्थन में चूर्णिकार के कथन को उद्धृत किया है। साथ ही वृत्तिकार ने कहा है कि ये सूत्र विचित्र अभिप्राय से कहे गये होने से दुर्लक्ष्य हैं, अतएव सम्यक् सम्प्रदाय से इन्हें समझा जाना चाहिए। वह सम्यक् सम्प्रदाय इसी रूप में है, अतएव यह युक्तिसंगत है। सूत्राभिप्राय को समझे बिना अनुपपत्ति की उद्भावना नहीं करनी चाहिए। केवल सूत्रों की संगति करने में यत्न करना चाहिए।[1]

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े मनोयोगी हैं, क्योंकि देव, नारक, गर्भज तिर्यक् पंचेन्द्रिय और मनुष्य ही मनोयोगी हैं। उनसे वचनयोगी असंख्येयगुण हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय वाग्योगी हैं। उनसे अयोगी अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनसे काययोगी अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्धों से वनस्पति जीव अनन्तगुण हैं।

२४५. अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा नपुंसकवेयगा अवेयगा।

इत्थिवेयगा णं भंते ! इत्थिवेयएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! (एगेण आएसेणं०)

---

1. न चैतत् स्वमनीषिका विजृम्भितं, यत आह चूर्णिकृत्—"कायजोगिस्स जह एक्कं समयं, कहं ? एकसामयिकविग्रहगतस्य, उक्कोसं अंतोमुहुत्तं, विग्रहसमयादारभ्य औदारिकशरीरपर्याप्तस्य यावदेवं अन्तर्मुहूर्तम् द्रष्टव्यम्। सूत्राणि ह्यमूनि विचित्राभिप्रायतया दुर्लक्ष्याणीति सम्यक्सम्प्रदायादवगन्तव्यानि। सम्प्रदायश्च यथोक्तस्वरूपमिति न काचिदनुपपत्तिः। न च सूत्राभिप्रायमज्ञात्वा अनुपपत्तिरुद्भावनीया।

पलियसयं दसुत्तरं अट्ठारस चोद्दस पलियपुहुत्तं समओ जहण्णेणं। पुरिसवेयस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। नपुंसगवेयस्स जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो।

अवेयए दुविहे पण्णत्ते, साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। से जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

इत्थिवेयस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। पुरिसवेयस्स जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। नपुंसगवेयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। अवेयगो जह हेट्ठा। अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा पुरिसवेदगा, इत्थिवेदगा संखेज्जगुणा, अवेदगा अणंतगुणा, नपुंसकवेदगा अणंतगुणा।

२४५. अथवा सर्व जीव चार प्रकार के हैं—स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक।

भगवन्! स्त्रीवेदक, स्त्रीवेदक रूप में कितने समय तक रह सकता है? गौतम! विभिन्न अपेक्षा से (पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक) एक सौ दस, एक सौ, अठारह, चौदह पल्योपम तक तथा पल्योपमपृथक्त्व रह सकता है। जघन्य से एक समय तक रह सकता है।

पुरुषवेदक, पुरुषवेदक के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व तक रह सकता है। नपुंसकवेदक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक रह सकता है। अवेदक दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। सादि-सपर्यवसित अवेदक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है।

स्त्रीवेदक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। पुरुषवेद का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। नपुंसकवेद का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है। अवेदक का जैसा पहले कहा गया है, अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े पुरुषवेदक, उनसे स्त्रीवेदक संख्येयगुण, उनसे अवेदक अनन्तगुण और उनसे नपुंसकवेदक अनन्तगुण हैं।

विवेचन—वेद की अपेक्षा से सर्व जीवों के चार प्रकार बताये हैं—स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक। इनकी संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व यहां प्रतिपादित है।

संचिट्ठणा—स्त्रीवेदक, स्त्रीवेदक के रूप में कितना रह सकता है? इस प्रश्न में उत्तर में पांच अपेक्षाओं से पांच तरह का कालमान बताया गया है। यह विषय विस्तार से त्रिविध प्रतिपत्ति में पहले कहा जा चुका है, फिर भी संक्षेप में यहां दे रहे हैं। स्त्रीवेद की कायस्थिति एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट ११० पल्योपम की है। कोई स्त्री उपशमश्रेणी में वेदत्रय के उपशमन से अवेदकता का अनुभव करती हुई पुनः उस श्रेणी से पतित होती हुई कम-से-कम एक समय तक स्त्रीवेद के उदय को भोगती है। द्वितीय समय में वह मरकर देवों में उत्पन्न हो जाती है, वहां उसको पुरुषवेद प्राप्त हो जाता है। अतः उसके स्त्रीवेद का काल एक समय का घटित होता है।

कोई जीव पूर्वकोटि की आयुवाली मनुष्य या तिर्यंच स्त्री के रूप में पांच या छह भवों तक उत्पन्न हो, फिर वह ईशानकल्प में पचपन पल्योपम प्रमाण की आयुवाली अपरिगृहीता देवी की पर्याय में उत्पन्न होवे, वहाँ से पुनः पूर्वकोटि आयुवाली मनुष्य या तिर्यंच स्त्री के रूप में उत्पन्न होकर दूसरी बार ईशान देवलोक में पचपन पल्योपम की आयुवाली अपरिगृहीता देवी में उत्पन्न हो, इस तरह पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक ११० पल्योपम तक वह जीव स्त्रीपर्याय में लगातार रह सकता है।

दूसरी अपेक्षा से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम की कायस्थिति स्त्रीवेद की इस प्रकार घटित होती है—कोई पूर्वकोटि आयुवाली स्त्री पांच छह बार तिर्यंच या मनुष्य स्त्री के भवों में उत्पन्न होकर सौधर्म देवलोक की ५० पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली अपरिगृहीता देवी के रूप में उत्पन्न होकर पुनः मनुष्य-तिर्यंच में उत्पन्न होकर दुबारा ५० पल्योपम की आयु वाली अपरिगृहीता देवी के रूप में उत्पन्न हो। इस तरह पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम की स्त्रीवेद की कायस्थिति होती है।

तीसरी अपेक्षा से पूर्व विशेषणों वाली स्त्री ईशान देवलोक में उत्कृष्ट स्थितिवाली परिगृहीता देवी के रूप में नौ पल्योपम तक रहकर मनुष्य या तिर्यंच में उसी तरह रहकर दुबारा ईशान देवलोक में नौ पल्योपम की स्थितिवाली परिगृहीता देवी बने, इस अपेक्षा से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक १८ पल्योपम की स्थिति बनती है।

चौथी अपेक्षा से पूर्वोक्त विशेषण वाली स्त्री सौधर्म देवलोक की सात पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली परिगृहीता देवी के रूप में रहकर, मनुष्य या तिर्यंच का पूर्ववत् भव करके दुबारा सौधर्म देवलोक में उत्कृष्ट सात पल्योपम की स्थितिवाली परिगृहीता देवी बने, इस अपेक्षा से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक १४ पल्योपम की कायस्थिति होती है।

पांचवी अपेक्षा से स्त्रीवेद की कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक पल्योपम की है। वह इस प्रकार है—कोई जीव पूर्वकोटि की आयुवाली तिर्यंच या मनुष्य स्त्रियों में सात भव तक उत्पन्न होकर आठवें भव में देवकुरु आदिकों की तीन पल्योपम की स्थिति वाली स्त्रियों में उत्पन्न हो और वहां से मरकर सौधर्म देवलोक में जघन्यस्थिति वाली देवी के रूप में उत्पन्न हो, ऐसी स्थिति में पूर्वकोटिपृथक्त्वाधिक पल्योपमपृथक्त्व की कायस्थिति घटित होती है।

पुरुषवेद की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है। स्त्रीवेद आदि से निकलकर अन्तर्मुहूर्त काल पुरुषवेद में रहकर पुनः स्त्रीवेद को प्राप्त करने की अपेक्षा से जघन्यकायस्थिति बनती है। देव, मनुष्य और तिर्यंच भवों में भ्रमण करने से पुरुषवेद की कायस्थिति उत्कृष्ट से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व होती है। इतने समय बाद पुरुषवेद का रूपान्तर होता ही है।

यहां शंका की जा सकती है कि जैसे स्त्रीवेद, नपुंसकवेद की जघन्य कायस्थिति एक समय की कही है। (उपशमश्रेणी में वेदोपशमन के पश्चात् एक समय तक स्त्रीवेद या नपुंसकवेद के अनुभवन को लेकर) वैसे पुरुषवेद की एक समय की कायस्थिति जघन्यरूप से क्यों नहीं कही गई है। समाधान में कहा गया है कि उपशमश्रेणी में जो मरता है, वह पुरुषवेद में ही उत्पन्न होता है, अन्य

वेद में नहीं। अतः जन्मान्तर मे भी सातत्य रूप से गमन की अपेक्षा एकसमयता घटित नही होती है।

नपुंसकवेद की जघन्यस्थिति एक समय की है। स्त्रीवेद के अनुसार युक्ति कहनी चाहिए। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल पर्यन्त कायस्थिति है।

अवेदक दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित (क्षीणवेद वाले) और सादि-सपर्यवसित (उपशान्तवेद वाले)। सादि-सपर्यवसित अवेदक की कायस्थिति जघन्य से एक समय है, क्योंकि द्वितीय समय मे मरकर देवगति मे पुरुषवेद सम्भव है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त की कायस्थिति है। तदनन्तर मरकर पुरुषवेद वाला हो जाता है या श्रेणी से गिरता हुआ जिस वेद से श्रेणी पर चढ़ा, उस वेद का उदय हो जाने से वह सवेदक हो जाता है।

अन्तरद्वार—स्त्रीवेद का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि वेद का उपशम होने पर पुनः अन्तर्मुहूर्त काल में वेद का उदय हो सकता है। अथवा स्त्रीपर्याय से निकलकर पुरुषवेद या नपुंसकवेद में अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः स्त्रीपर्याय में आया जा सकता है। उत्कर्ष से अन्तर वनस्पतिकाल है।

पुरुषवेद का अन्तर जघन्य एक समय है। क्योंकि उपशमश्रेणी में पुरुषवेद का उपशम होने पर एक समय के अनन्तर मरकर पुरुषत्व रूप मे उत्पन्न होना सम्भव है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल अन्तर है।

नपुंसकवेद का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। युक्ति स्त्रीवेद में कथित अन्तर की तरह जानना चाहिए। उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व का अन्तर है। इसके बाद संसारी जीव अवश्य नपुंसक रूप में उत्पन्न होता है।

अवेदक में सादि-अपर्यवसित का अन्तर नही होता, अपर्यवसित होने से। सादि-सपर्यवसित अवेदक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अंतर्मुहूर्त के बाद पुनः श्रेणी का आरम्भ सम्भव है। उत्कर्ष से अनन्तकाल। यह अनन्तकाल कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्रमार्गणा से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है। इतने काल के पश्चात् जिसने पहले श्रेणी की है वह पुनः श्रेणी का आरम्भ करता ही है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े पुरुषवेदक हैं, क्योंकि देव-मनुष्य-तिर्यंचगति में वे अल्प ही हैं। उनसे स्त्रीवेदक संख्यातगुण हैं। क्योंकि तिर्यंचगति में स्त्रियां पुरुषों से तिगुनी हैं, मनुष्यगति में सत्ताईस गुणी हैं और देवगति में बत्तीस गुणी हैं। उनसे अवेदक अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनसे नपुंसकवेदक अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिजीव सिद्धो से अनन्तगुण हैं।

२४६. अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी अवधिदंसणी केवलदंसणी।

चक्खुदंसणी णं भंते! ० ? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं।

अचक्खुदंसणी दुविहे पण्णत्ते—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

ओहिदंसणी जहन्नेणं एक्कं समयं उक्को— —दोछावट्ठिसागरोवमाणं साइरेगाओ।

केवलदंसणी साइए अपज्जवसिए।

चक्खुदंसणिस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अचक्खुदंसणिस्स दुविहस्स नत्थि अंतरं। ओहिदंसणिस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। केवलदंसणिस्स णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा ओहिदंसणी, चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा, केवलदंसणी अणंतगुणा, अचक्खुदंसणी अणंतगुणा।

२४६. अथवा सर्व जीव चार प्रकार के हैं—चक्षुर्दर्शनी, अचक्षुर्दर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी।

भगवन्! चक्षुर्दर्शनी काल से लगातार कितने समय तक चक्षुर्दर्शनी रह सकता है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक एक हजार सागरोपम तक रह सकता है।

अचक्षुर्दर्शनी दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित।

अवधिदर्शनी लगातार जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से साधिक दो छियासठ सागरोपम तक रह सकता है।

केवलदर्शनी सादि-अपर्यवसित है।

चक्षुर्दर्शनी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। दोनों प्रकार के अचक्षुर्दर्शनी का अन्तर नहीं है। अवधिदर्शनी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष वनस्पतिकाल है। केवलदर्शनी का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े अवधिदर्शनी, उनसे चक्षुर्दर्शनी असंख्येयगुण हैं, उनसे केवलदर्शनी अनन्तगुण हैं और उनसे अचक्षुर्दर्शनी भी अनन्तगुण हैं।

विवेचन—दर्शन को लेकर सब जीवों का चातुर्विध्य इस सूत्र में बताकर उनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है।

कायस्थिति—चक्षुर्दर्शनी, चक्षुर्दर्शनीरूप में जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है। अचक्षुर्दर्शनी से निकलकर चक्षुर्दर्शनी में अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः अचक्षुर्दर्शनी में जा सकता है। उत्कर्ष से साधिक एक हजार सागरोपम तक रह सकता है।

अचक्षुर्दर्शनी दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित जो कभी सिद्धि प्राप्त नहीं करेगा और अनादि-सपर्यवसित भव्य जीव जो सिद्धि प्राप्त करेगा। अनादि और अपर्यवसित की कालमर्यादा नहीं है।

अवधिदर्शनी उसी रूप में जघन्य से एक समय तक रहता है। अवधिदर्शन प्राप्त करने के पश्चात् कोई एक समय में ही मरण को प्राप्त हो जाय अथवा मिथ्यात्व में जाने से या दुष्ट अध्यवसाय के कारण अवधि से प्रतिपात हो सकता है। उत्कर्ष से साधिक दो छियासठ (६६+६६) सागरोपम तक रह सकता है। इसकी युक्ति इस प्रकार है—

कोई विभंगज्ञानी तिर्यंच या मनुष्य नीचे सप्तम पृथ्वी में उत्पन्न हुआ। वहां तेतीस सागरोपम तक रहा। उद्वर्तनाकाल नजदीक आने पर सम्यक्त्व को पाकर पुनः उसे छोड़ देता है और विभंगज्ञान सहित पूर्वकोटि आयु वाले तिर्यंच में उत्पन्न हुआ और वहां से पुनः विभंगसहित ही अधःसप्तमी पृथ्वी में उत्पन्न हुआ और तेतीस सागरोपम तक स्थित रहा। उद्वर्तनाकाल में थोड़ी देर सम्यक्त्व पाकर उसे छोड़ देता है और विभंग सहित पुनः पूर्वकोटि आयु वाले तिर्यंच में उत्पन्न होता है। इस प्रकार दो बार सप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होने तथा दो बार तिर्यंच में उत्पन्न होने से साधिक ६६ सागरोपम काल होता है। विग्रह में विभंग का प्रतिषेध होने से अविग्रह रूप से उत्पन्न होना कहना चाहिए।[1]

उक्त कथन में जो बीच-बीच में थोड़ी देर के लिए सम्यक्त्व होने की बात कही गई है, वह इसलिए कि विभंगज्ञान देशोन तेतीस सागरोपम पूर्वकोटि अधिक तक ही उत्कर्ष से रह सकता है।[2] अतएव बीच में सम्यक्त्व का थोड़ी देर के लिए होना कहा गया है।

उक्त रीति से साधिक एक ६६ सागरोपम तक रहने के बाद वह विभंगज्ञानी अपतित विभंग की स्थिति में ही मनुष्यत्व पाकर सम्यक्त्व पूर्वक संयम की आराधना करके विजयादि विमानों मे दो बार उत्पन्न हो तो दूसरे ६६ सागरोपम तक वह अवधिदर्शनी रहा। अवधिदर्शन तो अवधिज्ञान और विभंगज्ञान में तुल्य ही होता है। इस अपेक्षा से अवधिदर्शनी दो छियासठ सागरोपम तक उस रूप में रह सकता है।

केवलदर्शनी सादि-अपर्यवसित है, अतः कालमर्यादा नहीं है।

अन्तरद्वार—चक्षुदर्शनी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल का अचक्षुदर्शन का व्यवधान होकर पुनः चक्षुदर्शनी हो सकता है। उत्कर्ष से अन्तर वनस्पतिकाल है।

अनादि-अपर्यवसित अचक्षुदर्शन का अन्तर नही है। अनादि-सपर्यवसित का भी अंतर नहीं है। अचक्षुदर्शनित्व के चले जाने पर फिर अचक्षुदर्शनित्व नहीं होता; जिसके घातिकर्म क्षीण हो गये हों, उसका प्रतिपात नहीं होता।

अवधिदर्शनी का जघन्य अन्तर एक समय का है। प्रतिपात के अनन्तर समय में ही पुनः उसका लाभ हो सकता है। कहीं-कहीं अन्तर्मुहूर्त ऐसा पाठ है। इतने व्यवधान के बाद पुनः उसकी प्राप्ति हो सकती है। उक्त पाठ निर्मूल नहीं है, क्योंकि मूल टीकाकार ने भी मतान्तर के रूप में उसका उल्लेख किया है। उत्कर्ष से अवधिदर्शनी का अन्तर वनस्पतिकाल है। इतने व्यवधान के बाद पुनः अवश्य अवधिदर्शन होता है। अनादि मिथ्यादृष्टि को भी होने में कोई विरोध नहीं है। ज्ञान तो सम्यक्त्व सहित ही होता है, किन्तु दर्शन, सम्यक्त्वसहित हो हो ऐसा नहीं है।

केवलदर्शनी सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्वद्वार—अवधिदर्शनी सबसे थोड़े हैं, क्योंकि वह देव, नारक और कतिपय गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य को ही होता है। उनसे चक्षुदर्शनी असंख्येयगुण हैं, क्योंकि सम्मूर्छिम तिर्यक् पंचेन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों को भी वह होता है। उनसे केवलदर्शनी अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनसे अचक्षुदर्शनी अनन्तगुण हैं, क्योंकि एकेन्द्रियों के भी अचक्षुदर्शन होता है।

१. विभंगणाणी पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया मणुया य आहारगा, नो अनाहारगा।

२. "विभंगणाणी जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइं ति"।

२४७. अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—संजया असंजया संजयासंजया नोसंजया-नोअसंजया-नोसंजयासंजया।

संजए णं भंते! ० ? जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। असंजया जहा अण्णाणी। संजयासंजए जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजए साइए अपज्जवसिए। संजयस्स संजयासंजयस्स दोण्हवि अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। असंजयस्स आदि दुवे णत्थि अंतरं। साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। चउत्थगस्स णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा संजया, संजयासंजया असंखेज्जगुणा, णोसंजय-णोअसंजय-णोसंजयासंजया अणंतगुणा, असंजया अणंतगुणा।

सेत्तं चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२४७. अथवा सर्व जीव चार प्रकार के हैं—संयत, असंयत, संयतासंयत और नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत।

भगवन्! संयत, संयतरूप में कितने काल तक रहता है?

गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रहता है। असंयत का कथन अज्ञानी की तरह कहना। संयतासंयत जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत सादि-अपर्यवसित है।

संयत और संयतासंयत का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है। असंयतों के तीन प्रकारों में से आदि के दो प्रकारों में अन्तर नहीं है। सादि-सपर्यवसित असंयत का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है। चौथे नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े संयत हैं, उनसे संयतासंयत असंख्येयगुण हैं, उनसे नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत अनन्तगुण हैं और उनसे असंयत अनन्तगुण हैं। इस प्रकार सर्व जीवों की चतुर्विध प्रतिपत्ति पूरी हुई।

विवेचन—संयत, असंयत को लेकर सर्व जीवों के चार प्रकार इस सूत्र में बताकर उनकी कायस्थिति, अन्तर तथा अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

सर्व जीव चार प्रकार के हैं—१. संयत, २. असंयत, ३. संयतासंयत और ४. नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत।

कायस्थिति—संयत, संयत के रूप में जघन्य एक समय तक रह सकता है। सर्वविरति परिणाम के अनन्तर समय में किसी का मरण भी हो सकता है, इस अपेक्षा से जघन्य एक समय कहा गया है। उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि तक रह सकता है।

असंयत तीन प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। अनादि-अपर्यवसित असंयत वह है जो कभी संयम नहीं लेगा। अनादि-सपर्यवसित असंयत वह है जो

संयम लेगा और उसी प्राप्त संयम से सिद्धि प्राप्त करेगा। सादि-सपर्यवसित असंयत वह है, जो सर्वविरति या देशविरति से परिभ्रष्ट हुआ है। आदि दो की अनादि और अपर्यवसित होने से कालमर्यादा नहीं है, सादि-सपर्यवसित असंयत जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। इसके बाद पुनः कोई संयत हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल तक जो अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप (कालमार्गणा से) है और क्षेत्रमार्गणा से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है।

संयतासंयत की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। संयतासंयतत्व की प्राप्ति बहुत सारे भंगों से होती है, फिर भी उसका जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तो है ही। उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है। बालकाल में उसका अभाव होने से देशोनता जाननी चाहिए।

नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत सिद्ध हैं। वे सादि-अपर्यवसित हैं। सदा उस रूप में रहते हैं।

अन्तरद्वार—संयत का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल के असंयतत्व से पुनः कोई संयतत्व में आ सकता है। उत्कर्ष से अन्तर अनन्तकाल है, जो क्षेत्र से देशोन पुद्गलपरावर्त रूप है। जिसने पहले संयम पाया है, वह इतने काल के व्यवधान के बाद नियम से संयम लाभ करता है।

अनादि-अपर्यवसित असंयत का अन्तर नहीं है।

अनादि-सपर्यवसित असंयत का भी अन्तर नही है। सादि-सपर्यवसित असंयत का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है। असंयतत्व का व्यवधान रूप संयतकाल और संयतासंयतकाल उत्कर्ष से इतना ही है।

संयतासंयत का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि उससे गिरकर कोई पुनः इतने काल में संयतासंयत हो सकता है। उत्कर्ष से संयत की तरह कहना चाहिए।

नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत सिद्ध हैं। वे सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नही है। अपर्यवसित होने से सदा उस रूप में रहते हैं।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े संयत हैं, क्योंकि वे संख्येय कोटि-कोटि प्रमाण हैं। उनसे संयतासंयत असंख्येयगुण हैं, क्योंकि असंख्येय तिर्यंच देशविरति वाले हैं। उनसे त्रितयप्रतिषेध रूप सिद्ध अनन्तगुण हैं और उनसे असंयत अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्धों से वनस्पतिजीव अनन्तगुण हैं।

सर्वजीव-पञ्चविध-वक्तव्यता

२४८. तत्थ जेते एवमाहंसु पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—कोहकसाई माणकसाई मायाकसाई लोभकसाई अकसाई।

कोहकसाई माणकसाई मायाकसाई णं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। लोभकसाई जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। अकसाई दुविहे जहा हेट्ठा।

कोहकसाई-माणकसाई-मायाकसाई णं अंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। लोहकसाइस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। अकसाई तहा जहा हेट्ठा।

अप्पाबहुयं—अकसाइणो सव्वत्थोवा, माणकसाई तहा अणंतगुणा। कोहे माया लोभे विसेसहिया मुणेयव्वा।

२४८. जो ऐसा कहते हैं कि पांच प्रकार के सर्व जीव हैं, उनके अनुसार वे पांच भेद इस प्रकार हैं—क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी।

क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप में रहते हैं।

लोभकषायी जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप में रह सकता है।

अकषायी दो प्रकार के हैं (जैसा कि पहले कहा है) सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। सादि-सपर्यवसित जघन्य एक समय, उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप में रह सकता है।

क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है। लोभकषायी का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अंतर्मुहूर्त है। अकषायी के विषय में जैसा पहले कहा गया है, वैसा ही समझना।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े अकषायी हैं, उनसे मानकषायी अनन्तगुण हैं, उनसे क्रोधकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी क्रमशः विशेषाधिक जानना चाहिए।

विवेचन—कषाय-अकषाय की विवक्षा से सर्व जीवों के पांच प्रकार इस तरह हैं—क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी। इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

कायस्थिति—क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि कहा गया है कि क्रोधादि का उपयोगकाल अन्तर्मुहूर्त है।[1] लोभकषायी जघन्य से एक समय तक उस रूप में रहता है। यह कथन उपशमश्रेणी से गिरते समय लोभकषाय के उदय होने के प्रथम समय के अनन्तर समय में मरण हो जाने की अपेक्षा से है। मरण के समय किसी के क्रोधादि का उदय सम्भव है। क्रम से गिरना मरणाभाव की स्थिति में होता है, मरण में नहीं। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त की कायस्थिति है।

अकषायी दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित (केवली) और सादि-सपर्यवसित (उपशान्त-कषाय)। सादि-सपर्यवसित अकषायी की कायस्थिति जघन्य से एक समय है, द्वितीय समय में मरण होने से क्रोधादि का उदय होने से सकषायत्व की प्राप्ति हो सकती है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उपशान्तमोहगुणस्थान का काल इतना ही है। अन्य आचार्यों का कथन है कि जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त ही कहना चाहिए, क्योंकि ऐसा वृद्धप्रवाद है कि लोभोपशम के लिए प्रवृत्त का अन्तर्मुहूर्त से पहले मरण नहीं होता। यह कथन सूत्रकार के अभिप्राय से भी युक्त लगता है, क्योंकि उन्होंने आगे चलकर लोभकषायी की कायस्थिति जघन्य और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त कही है।

अन्तरद्वार—क्रोधकषायी का अन्तर जघन्य एक समय है, क्योंकि उपशमसमय के अनन्तर मरण होने से पुनः किसी के उसका उदय हो सकता है, उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है। इसी तरह मानकषायी और मायाकषायी का भी अन्तर कहना चाहिए। लोभकषायी का जघन्य से भी और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त का अन्तर है, केवल जघन्य से उत्कृष्ट बृहत्तर है।

१. क्रोधाद्युपयोगकालो अन्तर्मुहूर्तमितिवचनात्।

सादि-अपर्यवसित अकषायी का अन्तर नही है। सादि-सपर्यवसित अकषायी का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल के बाद पुनः श्रेणीलाभ हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो क्षेत्र से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है। पूर्व-अनुभूत अकषायित्व की इतने काल में पुनः नियम से प्राप्ति होती ही है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े अकषायी, क्योंकि सिद्ध ही अकषायी हैं। उनसे मानकषायी अनन्तगुण हैं, क्योंकि निगोद-जीव सिद्धों से अनन्तगुण हैं। उनसे क्रोधकषायी विशेषाधिक हैं, क्योंकि क्रोधकषाय का उदय चिरकालस्थायी है, उनसे मायाकषायी विशेषाधिक हैं और उनसे लोभकषायी विशेषाधिक है, क्योंकि माया और लोभ का उदय चिरतरकाल स्थायी है।

२४९. अहवा पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा सिद्धा। संचिट्ठणंतराणि जह हेट्ठा भणियाणि।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा मणुस्सा, णेरइया असंखेज्जगुणा, देवा असंखेज्जगुणा, सिद्धा अणंतगुणा, तिरिया अणंतगुणा।

सेत्तं पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२४९. अथवा सब जीव पांच प्रकार के हैं—नैरयिक, तिर्यक्योनिक, मनुष्य, देव और सिद्ध। संचिट्ठणा और अन्तर पूर्ववत् कहना चाहिए। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े मनुष्य, उनसे नैरयिक असंख्येयगुण, उनसे देव असंख्येयगुण, उनसे सिद्ध अनन्तगुण और उनसे तिर्यग्योनिक अनन्तगुण हैं।

इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व पहले कहा जा चुका है।

इस तरह पंचविध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

सर्वजीव-षड्विध-वक्तव्यता

२५०. तत्थ णं जेते एवमाहंसु छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा— आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी अण्णाणी।

आभिणिबोहियणाणी णं भंते! आभिणिबोहियणाणित्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं, एवं सुयणाणीवि।

ओहिणाणी णं भंते! ० ? जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं।
मणपज्जवणाणी णं भंते! ० ? जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।
केवलणाणी णं भंते०!? साइए अपज्जवसिए।

अण्णाणिणो तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ साइए सपज्जवसिए जहन्नेणं अंतो० उक्को० अणंतकालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं।

अंतरं—आभिणिबोहियणाणिस्स जह० अंतो०, उक्को० अणंतं कालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं सुयणाणिस्स ओहिणाणिस्स मणपज्जवणाणिस्स अंतरं। केवलणाणिणो णत्थि अंतरं। अण्णाणिस्स साइयपज्जवसियस्स जह० अंतो०, उक्को० छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं।

२४८. जो ऐसा कहते हैं कि पांच प्रकार के सर्व जीव हैं, उनके अनुसार वे पांच भेद इस प्रकार हैं—क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी, लोभकपायी और अकपायी।

क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप में रहते है।

लोभकपायी जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप में रह सकता है।

अकपायी दो प्रकार के हैं (जैसा कि पहले कहा है) सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। सादि-सपर्यवसित जघन्य एक समय, उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप में रह सकता है।

क्रोधकपायी, मानकपायी और मायाकपायी का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है। लोभकपायी का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अंतर्मुहूर्त है। अकपायी के विषय में जैसा पहले कहा गया है, वैसा ही समझना।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े अकपायी है, उनसे मानकपायी अनन्तगुण है, उनसे क्रोधकपायी, मायाकपायी और लोभकपायी क्रमशः विशेषाधिक जानना चाहिए।

विवेचन—कपाय-अकपाय की विवक्षा से सर्व जीवों के पांच प्रकार इस तरह हैं—क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी, लोभकपायी और अकपायी। इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

कायस्थिति—क्रोधकपायी, मानकपायी और मायाकपायी की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि कहा गया है कि क्रोधादि का उपयोगकाल अन्तर्मुहूर्त है।[1] लोभकपायी जघन्य से एक समय तक उस रूप में रहता है। यह कथन उपशमश्रेणी से गिरते समय लोभकपाय के उदय होने के प्रथम समय के अनन्तर समय में मरण हो जाने की अपेक्षा से है। मरण के समय किसी के क्रोधादि का उदय सम्भव है। क्रम से गिरना मरणाभाव की स्थिति में होता है, मरण में नहीं। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त की कायस्थिति है।

अकपायी दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित (केवली) और सादि-सपर्यवसित (उपशान्त-कपाय)। सादि-सपर्यवसित अकपायी की कायस्थिति जघन्य से एक समय है, द्वितीय समय में मरण होने से क्रोधादि का उदय होने से सकपायत्व की प्राप्ति हो सकती है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उपशान्तमोहगुणस्थान का काल इतना ही है। अन्य आचार्यों का कथन है कि जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त ही कहना चाहिए, क्योंकि ऐसा वृद्धप्रवाद है कि लोभोपशम के लिए प्रवृत्त का अन्तर्मुहूर्त से पहले मरण नहीं होता। यह कथन सूत्रकार के अभिप्राय से भी युक्त लगता है, क्योंकि उन्होंने आगे चलकर लोभकपायी की कायस्थिति जघन्य और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त कही है।

अन्तरद्वार—क्रोधकपायी का अन्तर जघन्य एक समय है, क्योंकि उपशमसमय के अनन्तर मरण होने से पुनः किसी के उसका उदय हो सकता है, उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है। इसी तरह मानकपायी और मायाकपायी का भी अन्तर कहना चाहिए। लोभकपायी का जघन्य से भी और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त का अन्तर है, केवल जघन्य से उत्कृष्ट बृहत्तर है।

१. क्रोधाद्युपयोगकालो अन्तर्मुहूर्तमितिवचनात्।

सादि-अपर्यवसित अकषायी का अन्तर नहीं है। सादि-सपर्यवसित अकषायी का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल के बाद पुनः श्रेणीलाभ हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो क्षेत्र से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है। पूर्व-अनुभूत अकषायित्व की इतने काल में पुनः नियम से प्राप्ति होती ही है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े अकषायी, क्योंकि सिद्ध ही अकषायी हैं। उनसे मानकषायी अनन्तगुण हैं, क्योंकि निगोद-जीव सिद्धों से अनन्तगुण हैं। उनसे क्रोधकषायी विशेषाधिक हैं, क्योंकि क्रोधकषाय का उदय चिरकालस्थायी है, उनसे मायाकषायी विशेषाधिक है और उनसे लोभकषायी विशेषाधिक हैं, क्योंकि माया और लोभ का उदय चिरतरकाल स्थायी है।

२४९. अहवा पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा सिद्धा। संचिट्ठणंतराणि जह हेट्ठा भणियाणि।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा मणुस्सा, णेरइया असंखेज्जगुणा, देवा असंखेज्जगुणा, सिद्धा अणंतगुणा, तिरिया अणंतगुणा।

सेत्तं पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२४९. अथवा सब जीव पांच प्रकार के हैं—नैरयिक, तिर्यक्योनिक, मनुष्य, देव और सिद्ध। संचिट्ठणा और अन्तर पूर्ववत् कहना चाहिए। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े मनुष्य, उनसे नैरयिक असंख्येयगुण, उनसे देव असंख्येयगुण, उनसे सिद्ध अनन्तगुण और उनसे तिर्यग्योनिक अनन्तगुण हैं।

इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व पहले कहा जा चुका है।

इस तरह पंचविध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

सर्वजीव-षड्विध-वक्तव्यता

२५०. तत्थ णं जेते एवमाहंसु छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा— आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी अण्णाणी।

आभिणिबोहियणाणी णं भंते! आभिणिबोहियणाणित्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं, एवं सुयणाणीवि।

ओहिणाणी णं भंते! ० ? जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं।
मणपज्जवणाणी णं भंते! ० ? जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।
केवलणाणी णं भंते०!? साइए अपज्जवसिए।

अण्णाणिणो तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ साइए सपज्जवसिए जहन्नेणं अंतो० उक्को० अणंतकालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं।

अंतरं—आभिणिबोहियणाणिस्स जह० अंतो०, उक्को० अणंतं कालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं सुयणाणिस्स ओहिणाणिस्स मणपज्जवणाणिस्स अंतरं। केवलणाणिणो णत्थि अंतरं। अण्णाणिस्स साइयपज्जवसियस्स जह० अंतो०, उक्को० छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणिणो, ओहिणाणिणो असंखेज्जगुणा, आभिणिबोहियणाणिणो सुयणाणिणो विसेसाहिया सट्ठाणे दोवि तुल्ला, केवलणाणिणो अणंतगुणा, अण्णाणिणो अणंतगुणा ।

अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया अणिंदिया । संचिट्ठणा तहा हेट्ठा ।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा पंचेंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेइंदिया विसेसाहिया, बेइंदिया विसेसाहिया, अणिंदिया अणंतगुणा, एगिंदिया अणंतगुणा ।

२५०. जो ऐसा कहते हैं कि सब जीव छह प्रकार के हैं, उनका प्रतिपादन ऐसा है—सब जीव छह प्रकार के हैं, यथा—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी और अज्ञानी ।

भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी के रूप में कितने समय तक लगातार रह सकता है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकता है । इसी प्रकार श्रुतज्ञानी के लिये भी समझना चाहिए ।

अवधिज्ञानी उसी रूप में कितने समय तक लगातार रह सकता है ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकता है ।

भगवन् ! मनःपर्यायज्ञानी उसी रूप में कितने समय तक रह सकता है ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि तक रह सकता है ।

भगवन् ! केवलज्ञानी उसी रूप में कितने समय तक रहता है ? गौतम ! केवलज्ञानी सादि-अपर्यवसित है ।

अज्ञानी तीन तरह के हैं—१. अनादि-अपर्यवसित, २. अनादि-सपर्यवसित और ३. सादि-सपर्यवसित । इनमें जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल तक जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है । इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यायज्ञानी का अन्तर कहना चाहिए । केवलज्ञानी का अन्तर नहीं है ।

सादि-सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है ।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े मनःपर्यायज्ञानी हैं, उनसे अवधिज्ञानी असंख्येयगुण हैं, उनसे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक हैं और दोनों स्वस्थान में तुल्य हैं । उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुण हैं और उनसे अज्ञानी अनन्तगुण हैं ।

अथवा सर्व जीव छह प्रकार के हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय । इनकी कायस्थिति और अन्तर पूर्वकथनानुसार कहना चाहिए ।

अल्पबहुत्व में—सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अनिन्द्रिय अनन्तगुण और उनसे एकेन्द्रिय अनन्त-गुण है।

विवेचन—ज्ञानी और अज्ञानी की अपेक्षा से सर्व जीव के छह भेद इस प्रकार बताये है—१. आभिनिबोधिकज्ञानी (मतिज्ञानी), २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यायज्ञानी, ५. केवलज्ञानी, ६. अज्ञानी। इनकी संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व इस सूत्र में वर्णित है। वह इस प्रकार है—

संचिट्ठणा (कायस्थिति)—आभिनिबोधिकज्ञानी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक लगातार उस रूप में रह सकता है। क्योंकि जघन्य से सम्यक्त्वकाल इतना ही है। उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकता है। यह विजयादि में दो बार जाने की अपेक्षा समझना चाहिये। श्रुतज्ञानी की कायस्थिति भी इतनी ही है, क्योंकि आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों अविनाभूत हैं। कहा गया है कि जहां आभिनिबोधिकज्ञान है वहां श्रुतज्ञान है और जहां श्रुतज्ञान है वहां आभिनिबोधिकज्ञान है। ये दोनों अन्योन्य-अनुगत हैं।[1] अवधिज्ञानी की कायस्थिति जघन्य से एक समय है। यह एकसमयता या तो अवधिज्ञान होने के अनन्तर समय में मरण हो जाने से अथवा प्रतिपात से मिथ्यात्व में जाने से (विभंगपरिणत होने से) जाननी चाहिए। उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम की है, जो मतिज्ञानी की तरह जाननी चाहिए। मनःपर्यायज्ञानी की कायस्थिति जघन्य एक समय है, क्योंकि द्वितीय समय में मरण होने से प्रतिपात हो सकता है। उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है। क्योंकि चारित्रकाल उत्कर्ष से भी इतना ही है। केवलज्ञानी सादि-अपर्यवसित है। अतः उस भाव का कभी त्याग नहीं होता।

अज्ञानी तीन प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमें जो सादि-सपर्यवसित है, उसकी कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उसके बाद कोई सम्यक्त्व पाकर पुनः ज्ञानी हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल है जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है, क्योंकि ज्ञानित्व से परिभ्रष्ट होने के बाद इतने काल के अन्तर से अवश्य पुनः ज्ञानी बनता ही है।

अन्तरद्वार—आभिनिबोधिकज्ञानी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। परिभ्रष्ट होने के इतने काल के बाद पुनः वह आभिनिबोधिकज्ञानी हो सकता है। उत्कर्ष से अन्तर देशोन अपार्धपुद्गल-परावर्त काल है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यायज्ञानी का अन्तर भी जानना चाहिए। केवलज्ञानी का अन्तर नहीं है, क्योंकि वह सादि-अपर्यवसित है।

अनादि-अपर्यवसित अज्ञानी का तथा अनादि-सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर नहीं है, क्योंकि अपर्यवसित और अनादि होने से। सादि-सपर्यवसित का जघन्य अन्तर अंतर्मुहूर्त है। क्योंकि इतने काल में वह पुनः ज्ञानी से अज्ञानी हो सकता है। उत्कर्ष से अन्तर साधिक छियासठ सागरोपम है।

---

१. 'जत्थ आभिणिबोहियनाण तत्थ सुयणाणं, जत्थ सुयणाणं तत्थ आभिणिबोहियनाणं, दोवि एयाइं अण्णोन्न-मणुगयाइं' इति वचनात्।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े मनःपर्यायज्ञानी है, क्योंकि मनःपर्यायज्ञान केवल विशिष्ट चारित्रवालों को ही होता है।[1] उनसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुण हैं, क्योकि देवों और नारको को भी अवधिज्ञान होता है। उनसे आभिनिवोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों विशेषाधिक है तथा ये स्वस्थान में परस्पर तुल्य हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुण हैं, क्योंकि केवलज्ञानी सिद्ध अनन्त है। उनसे अज्ञानी अनन्त है, क्योंकि अज्ञानी वनस्पतिकायिक जीव सिद्धों से भी अनन्तगुण हैं।

अथवा इन्द्रिय और अनिन्द्रिय की विवक्षा से सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये है—एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय। अनिन्द्रिय सिद्ध हैं। इनकी कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व पूर्व में कहा जा चुका है।

२५१. अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालियसरीरी वेउव्वियसरीरी आहारगसरीरी तेयगसरीरी कम्मगसरीरी असरीरी।

ओरालियसरीरी णं भंते! कालओ केवचिरं होइ? जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमयऊणं उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं जाव अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। वेउव्वियसरीरी जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। आहारगसरीरी जहन्नेणं अंतो० उक्को० अंतोमुहुत्तं। तेयगसरीरी दुविहे पण्णत्ते—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए। एवं कम्मगसरीरीवि। असरीरी साइए-अपज्जवसिए।

अंतरं ओरालियसरीरस्स जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। वेउव्वियसरीरस्स जह० अंतो० उक्को० अणंतकालं वणस्सइकालो। आहारगस्स सरीरस्स जह० अंतो० उक्को० अणंतकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। तेयगसरीरस्स कम्मसरीरस्स य दोण्हवि णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा आहारगसरीरी, वेउव्वियसरीरी असंखेज्जगुणा, ओरालियसरीरी असंखेज्जगुणा, असरीरी अणंतगुणा, तेयाकम्मसरीरी दोवि तुल्ला अणंतगुणा।

सेत्तं छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२५१. अथवा सर्व जीव छह प्रकार के हैं—औदारिकशरीरी, वैक्रियशरीरी, आहारकशरीरी, तैजसशरीरी, कार्मणशरीरी और अशरीरी।

भगवन्! औदारिकशरीरी लगातार कितने समय तक रह सकता है?

गौतम! जघन्य से दो समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से असंख्येयकाल तक। यह असंख्येयकाल अंगुल के असंख्यातवें भाग के आकाशप्रदेशों के अपहारकाल के तुल्य है। वैक्रियशरीरी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रह सकता है। आहारकशरीरी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक ही रह सकता है। तेजसशरीरी दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। इसी तरह कार्मणशरीरी भी दो प्रकार के हैं। अशरीरी सादि-अपर्यवसित हैं।

१. 'तं संजयस्स सव्वप्पमायरहियस्स विविधरिद्धिमतो' इति वचनात्।

औदारिकशरीर का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है। वैक्रियशरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है, जो वनस्पतिकालतुल्य है। आहारकशरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है। तेजस-कार्मण-शरीरी का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े आहारकशरीरी, वैक्रियशरीरी उनसे असंख्यातगुण, उनसे औदारिकशरीरी असंख्यातगुण हैं, उनसे अशरीरी अनन्तगुण हैं और उनसे तेजस-कार्मणशरीरी अनन्तगुण हैं और ये स्वस्थान में दोनों तुल्य हैं।

इस प्रकार षड्विध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—शरीर-अशरीर को लेकर सर्व जीव छह प्रकार के हैं—औदारिकशरीरी, वैक्रियशरीरी, आहारकशरीरी, तेजसशरीरी, कार्मणशरीरी और अशरीरी। इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

कायस्थिति—औदारिकशरीर उस रूप में लगातार जघन्य से दो समय कम क्षुल्लकभव तक रह सकता है। विग्रहगति में आदि के दो समय में कार्मणशरीरी होने से दो समय कम कहा है। उत्कर्ष से असंख्येयकाल तक रह सकता है। इतने काल तक अविग्रह से उत्पाद सम्भव है। यह असंख्येयकाल अंगुल के असंख्यातवें भागवर्ती आकाश-प्रदेशों को प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर जितने समय में वे निर्लेप हो जायें, उतने काल के बराबर है।

वैक्रियशरीरी जघन्य से एक समय तक उसी रूप में रहता है। विकुर्वणा के अनन्तर समय में ही किसी का मरण सम्भव है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रहता है। कोई चारित्रसम्पन्न संयति वैक्रियशरीर करके अन्तर्मुहूर्त जीकर स्थितिक्षय से अविग्रह द्वारा अनुत्तरविमानों में उत्पन्न हो सकता है, इस अपेक्षा से जानना चाहिए।

आहारकशरीरी जघन्य से और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक ही उस रूप में रह सकता है।

तेजसशरीरी और कार्मणशरीरी दो-दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित (ये कभी मुक्त नहीं होंगे) और अनादि-सपर्यवसित (मुक्तिगामी)। ये दोनों अनादि और अपर्यवसित होने से कालमर्यादा रहित हैं। अशरीरी सादि-अपर्यवसित हैं, अतः सदा उस रूप में रहते हैं।

अन्तरद्वार—औदारिकशरीरी का अन्तर जघन्य से एक समय है। यह दो समयवाली अपान्तराल गति में होता है, प्रथम समय में कार्मणशरीरी होने से। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है। यह उत्कृष्ट वैक्रियकाल है।

वैक्रियशरीरी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। एक बार वैक्रिय करने के बाद इतने व्यवधान पर दुबारा वैक्रिय किया जा सकता है। मानव और देवों में ऐसा होता है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर स्पष्ट ही है।

आहारकशरीरी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। एक बार करने के बाद इतने व्यवधान से पुनः किया जा सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है। तेजस-कार्मणशरीर का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े आहारकशरीरी हैं, क्योंकि ये अधिक से अधिक दो हजार से न हजार तक ही होते हैं। उनसे वैक्रियशरीरी असंख्येयगुण हैं, क्योंकि देव, नारक, गर्भज तिर्यंच पंचे न्द्रिय, मनुष्य और वायुकाय वैक्रियशरीरी हैं। उनसे औदारिकशरीरी असंख्येयगुण है। निगोदों अनन्तजीवों का एक ही औदारिकशरीर होने से असंख्यगुणत्व ही घटित होता है, अनन्तगुण नहीं जैसा कि मूल टीकाकार ने कहा—औदारिकशरीरियों से अशरीरी अनन्तगुण हैं, सिद्धों के अनन्त होने से, औदारिकशरीरी शरीर की अपेक्षा असंख्येय हैं।[1]

औदारिकशरीरियों से अशरीरी अनन्तगुण है, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनसे तेजस-कार्मण शरीरी अनन्तगुण हैं, क्योंकि निगोदों में तेजस-कार्मणशरीर प्रत्येक जीव के अलग-अलग हैं और वे अनन्तगुण हैं। तेजस और कार्मणशरीर परस्पर अविनाभावी हैं और परस्पर तुल्य हैं।

इस प्रकार षड्विध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

सर्वजीव-सप्तविध-वक्तव्यता

२५२. तत्थ णं जेते एवमाहंसु सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तं जहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया अकाइया।

संचिट्ठणंतरा जहा हेट्ठा।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा तसकाइया, तेउकाइया असंखेज्जगुणा, पुढविकाइया विसेसाहिया, आउकाइया विसेसाहिया, वाउकाइया विसेसाहिया, सिद्धा (अकाइया) अणंतगुणा, वणस्सइकाइया अणंतगुणा।

२५२. जो ऐसा कहते हैं कि सब जीव सात प्रकार के हैं, वे ऐसा प्रतिपादन करते हैं, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक।

इनकी संचिट्ठणा और अंतर पहले कहे जा चुके हैं।

अल्पबहुत्व इस प्रकार है—सबसे थोड़े त्रसकायिक, उनसे तेजस्कायिक असंख्यातगुण, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक, उनसे अकायिक अनन्तगुण और उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण है। इनका स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है।

२५३. अहवा सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा तेउलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा अलेस्सा।

कण्हलेस्से णं भंते! कण्हलेस्सेत्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। णीललेस्से णं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दससागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं। काउलेस्से णं जह० अंतो० उक्को० तिण्णि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं। तेउलेस्से णं जह० अंतो०उक्को०दोण्णि

---

१. आह च मूलटीकाकार—औदारिकशरीरिभ्योऽशरीरा अनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तत्वात्, औदारिकशरीरिणां च शरीरापेक्षयाऽसंख्येयत्वादिति।

सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं । पम्हलेस्से णं जह० अंतो० उक्को० दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं । सुक्कलेस्से णं भंते ! ०? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं । अलेस्से णं भंते ! ०? साइए अपज्जवसिए ।

कण्हलेसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं । एवं नीललेसस्सवि, काउलेसस्सवि । तेउलेसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ० ? जहन्नेणं अंतो० उक्को० वणस्सइकालो । एवं पम्हलेसस्सवि सुक्कलेसस्सवि, दोण्हवि एवमंतरं । अलेसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ।

एएसि णं भंते ! जीवाणं कण्हलेसाणं नीललेसाणं काउलेसाणं तेउलेसाणं पम्हलेसाणं सुक्कलेसाणं अलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा, तेउलेस्सा संखेज्जगुण, अलेस्सा अणंतगुणा, काउलेस्सा अणंतगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया ।

सेत्तं सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ।

२५३. अथवा सर्व जीव सात प्रकार के कहे गये हैं—कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले, तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले, शुक्ललेश्या वाले और अलेश्य ।

भगवन् ! कृष्णलेश्या वाला, कृष्णलेश्या वाले के रूप में काल से कितने समय तक रह सकता है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रह सकता है ।

भगवन् ! नीललेश्या वाला उस रूप में कितने समय तक रह सकता है, गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पल्योपम का असंख्येयभाग अधिक दस सागरोपम तक रह सकता है । कापोतलेश्या वाला जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पल्योपमासंख्येयभाग अधिक तीन सागरोपम रहता है । तेजोलेश्या वाला जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पल्योपमासंख्येयभाग अधिक तीन सागरोपम तक रह सकता है । पद्मलेश्या वाला जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पल्योपमासंख्येयभाग अधिक दस सागरोपम तक रहता है । शुक्ललेश्या वाला जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रह सकता है । अलेश्य जीव सादि-अपर्यवसित है, अतः सदा उसी रूप में रहते हैं ।

भगवन् ! कृष्णलेश्या का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम का है । इसीतरह नीललेश्या, कापोतलेश्या का भी जानना चाहिए । तेजोलेश्या का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है । इसीप्रकार पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या—दोनों का यही अन्तर है ।

भगवन् ! अलेश्य का अन्तर कितना है ? गौतम ! अलेश्य जीव सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है ।

भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले और अलेश्यों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले, उनसे पद्मलेश्या वाले संख्यातगुण, उनसे तेजोलेश्या वाले संख्यातगुण, उनसे अलेश्य अनंतगुण, उनसे कापोतलेश्या वाले अनंतगुण, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में छह लेश्या वाले और एक अलेश्य यों सर्व जीव के सात प्रकार बताये हैं। उनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कायस्थिति—कृष्णलेश्या लगातार जघन्य से अन्तर्मुहूर्त रहती है, क्योंकि तिर्यंच-मनुष्यों में कृष्णलेश्या अन्तर्मुहूर्त तक रहती है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रहती है। देव और नारक पाश्चात्यभवगत चरम अन्तर्मुहूर्त और अग्रेतनभवगत अवस्थित प्रथम अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थित लेश्या वाले होते हैं। अधःसप्तमपृथ्वी के नारक कृष्णलेश्या वाले हैं और तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले हैं। उनके पाश्चात्यभव का अन्तर्मुहूर्त और अग्रेतनभव का एक अन्तर्मुहूर्त यों दो अन्तर्मुहूर्त होते हैं। लेकिन अन्तर्मुहूर्त के असंख्येय भेद होने से उनका एक ही अन्तर्मुहूर्त में समावेश हो जाता है। इस अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट कायस्थिति कृष्णलेश्या की घटित होती है।

नीललेश्या की जघन्य कायस्थिति एक अन्तर्मुहूर्त है, युक्ति पूर्ववत् है। उत्कर्ष से पल्योपम का असंख्येयभाग अधिक दस सागरोपम की है। यह धूमप्रभापृथ्वी के प्रथम प्रस्तर के नैरयिक, जो नीललेश्या वाले हैं, और इतनी स्थिति वाले हैं, उनकी अपेक्षा से है। पाश्चात्य और अग्रेतन भव के क्रमशः चरम और आदिम अन्तर्मुहूर्त पल्योपम के असंख्येयभाग में समाविष्ट हो जाते हैं, अतएव अलग से नहीं कहे हैं।

कापोतलेश्या की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। युक्ति पूर्ववत् है। उत्कर्ष से पल्योपमासंख्येयभाग अधिक तीन सागरोपम की है। यह वालुकप्रभा के प्रथम प्रस्तर के नारकों की अपेक्षा से है। वे कपोतलेश्या वाले और इतनी स्थिति वाले हैं।

तेजोलेश्या की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। युक्ति पूर्ववत् है। उत्कर्ष से पल्योपमासंख्येयभाग अधिक दो सागरोपम है। यह ईशानदेवों की अपेक्षा से है।

पद्मलेश्या की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। युक्ति पूर्ववत् है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है। यह ब्रह्मलोकदेवों की अपेक्षा से है।

शुक्ललेश्या की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त। युक्ति पूर्ववत् है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है। यह अनुत्तरदेवों की अपेक्षा से है। वे शुक्ललेश्या वाले और इतनी स्थिति वाले हैं।

अन्तरद्वार—कृष्णलेश्या का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि तिर्यंच मनुष्यों की लेश्या का परिवर्तन अन्तर्मुहूर्त में हो जाता है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है, क्योंकि शुक्ललेश्या का उत्कृष्टकाल कृष्णलेश्या के अन्तर का उत्कृष्टकाल है। इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्या का भी जघन्य और उत्कर्ष अन्तर जानना चाहिए। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष अन्तर वनस्पतिकाल है। अलेश्यों का अन्तर नहीं है, क्योंकि वे अपर्यवसित हैं।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले हैं, क्योंकि लान्तक आदि देव, पर्याप्त गर्भज कतिपय पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों में ही शुक्ललेश्या होती है। उनसे पद्मलेश्या वाले संख्येयगुण हैं, क्योंकि सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में सब देव और प्रभूत पर्याप्त गर्भज तिर्यंच और मनुष्यों में पद्मलेश्या होती है। यहां शंका हो सकती है कि लान्तक आदि देवों से सनत्कुमारादि कल्पत्रय के देव असंख्यातगुण हैं, तो शुक्ललेश्या से पद्मलेश्या वाले असंख्यातगुण होने चाहिए, संख्येयगुण क्यों कहा ? समाधान दिया गया है कि जघन्यपद में भी असंख्यात सनत्कुमारादि कल्पत्रय के देवों की अपेक्षा से असंख्येयगुण पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में शुक्ललेश्या होती है। अतः पद्मलेश्या वाले शुक्ललेश्या वालों से संख्यातगुण ही प्राप्त होते हैं। उनसे तेजोलेश्या वाले संख्येयगुण हैं, क्योंकि उनसे संख्येयगुण तिर्यक् पंचेन्द्रियों, मनुष्यों और भवनपति व्यन्तर ज्योतिष्क तथा सौधर्म-ईशान देवलोक के देवों में तेजोलेश्या पायी जाती है। उनसे अलेश्य अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनसे कापोतलेश्या वाले अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्धों से अनन्तगुण वनस्पतिकायिकों में कापोतलेश्या का सद्भाव है। उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं। उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं, क्योंकि क्लिष्टतर अध्यवसाय वाले प्रभूत होते हैं। यह सप्तविध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

सर्वजीव-अष्टविध-वक्तव्यता

२५४. तत्थ णं जेते एवमाहंसु अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तं जहा—आभिनिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी मइअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगणाणी।

आभिणिबोहियणाणी णं भंते ! आभिणिबोहियणाणित्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जह० अंतो० उक्को० छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं। एवं सुयणाणीवि। ओहिणाणी णं भंते! ०? जह० एक्कं समयं उक्को० छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं। मणपज्जवणाणी णं भंते ! ०? जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। केवलणाणी णं भंते ! ०? साइए अपज्जवसिए।

मइअण्णाणी णं भंते ! ०? मइअण्णाणी तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जेसे साइए सपज्जवसिए से जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। सुयअण्णाणी एवं चेव। विभंगणाणी णं भंते ! ०? जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइं।

आभिणिबोहियणाणिस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? जह० अंतो०, उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं सुयणाणिस्सवि। ओहिणाणिस्सवि, मणपज्जवणाणिस्सवि। केवलणाणिस्स णं भंते ! अंतरं० ? साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। मइ-अण्णाणिस्स णं भंते ! अंतरं० ? अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं। एवं सुय-अण्णाणिस्सवि। विभंगणाणिस्स णं भंते ! अंतरं० ? जह० अंतो०, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

एएसि णं भंते ! आभिणिबोहियणाणीणं सुयणाणीणं ओहि० मण० केवल० मइअण्णाणीणं सुयअण्णाणीणं विभंगणाणीणं कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी, ओहिणाणी असंखेज्जगुणा, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी असंखेज्जगुणा, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी एए

दोवि तुल्ला विसेसाहिया, विभंगणाणी असंखेज्जगुणा, केवलणाणिणो अणंतगुणा, मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य दोवि तुल्ला अणंतगुणा ।

२५४. जो ऐसा कहते हैं कि आठ प्रकार के सर्व जीव है, उनका मन्तव्य है कि सब जीव आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी के भेद से आठ प्रकार के हैं।

भगवन्! आभिनिबोधिकज्ञानी आभिनिवोधिकज्ञानी के रूप में कितने समय तक रहता है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है। श्रुतज्ञानी भी इतना ही रहता है। अवधिज्ञानी जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है। मनःपर्यायज्ञानी जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रहता है। केवलज्ञानी सादि-अपर्यवसित होने से सदा उस रूप में रहता है।

मति-अज्ञानी तीन प्रकार के हैं—१. अनादि-अपर्यवसित, २. अनादि-सपर्यवसित और ३. सादि-सपर्यवसित। इनमें जो सादि-सपर्यवसित है वह जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप तक रहता है। श्रुत-अज्ञानी भी इतने ही समय तक रहता है। विभंगज्ञानी जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम तक रहता है।

आभिनिवोधिकज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल, जो देशोन पुद्गलपरावर्त रूप है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यायज्ञानी का अंतर भी जानना चाहिए। केवलज्ञानी का अन्तर नहीं है, क्योंकि वह सादि-अपर्यवसित है।

मति-अज्ञानियों में जो अनादि-अपर्यवसित हैं, उनका अन्तर नहीं है। जो अनादि-सपर्यवसित हैं, उनका अन्तर नहीं है। जो सादि-सपर्यवसित है, उनका अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है। इसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी का अन्तर भी जानना चाहिए। विभंगज्ञानी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

भगवन्! इन आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोड़े मनःपर्यायज्ञानी हैं। उनसे अवधिज्ञानी असंख्येयगुण हैं, उनसे मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी विशेषाधिक हैं और स्वस्थान में तुल्य हैं, उनसे विभंगज्ञानी असंख्येयगुण हैं, उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुण हैं और उनसे मति-अज्ञानी श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुण हैं और स्वस्थान में तुल्य हैं।

विवेचन—इसका विवेचन सर्व जीव की छठी प्रतिपत्ति में किया जा चुका है। अतएव जिज्ञासु यहां देख सकते हैं।

२५५. अहवा अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ मणुस्सा मणुस्सीओ देवा देवीओ सिद्धा।

णेरइए णं भंते! णेरइएत्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। तिरिक्खजोणिए णं भंते! ०? जह० अंतो० उक्कोसेणं वणस्सइ-

कालो। तिरिक्खजोणिणी णं भंते ! ०? जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं। एवं मणूसे मणूसी। देवे जहा नेरइए। देवी णं भंते ! ०? जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्को० पणपन्नं पलिओवमाइं। सिद्धे णं भंते ! सिद्धेत्ति० ? गोयमा साइए अपज्जवसिए।

णेरइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो। तिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। तिरिक्खजोणिणी णं भंते ० ? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो। एवं मणुस्सवि मणुस्सीएवि। देवस्सवि देवीएवि। सिद्धस्स णं भंते! ०? साइयस्स अपज्जवसिए णत्थि अंतरं।

एएसि णं भंते ! णेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं मणूसाणं मणूसीणं देवाणं सिद्धाणं य कयरे० ? गोयमा सव्वत्थोवा मणुस्सीओ, मणूसा असंखेज्जगुणा, नेरइया असंखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ, देवा संखेज्जगुणा, देवीओ संखेज्जगुणाओ, सिद्धा अणंतगुणा, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। सेत्तं अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२५५. अथवा सब जीव आठ प्रकार के कहे गये हैं, जैसे कि—नैरयिक, तिर्यग्योनिक, तिर्यंग्योनिकी, मनुष्य, मनुष्यनी, देव, देवी और सिद्ध।

भगवन् ! नैरयिक, नैरयिक रूप में कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम तक रहता है। तिर्यग्योनिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल तक रहता है। तिर्यंग्योनिकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहती है। इसी तरह मनुष्य और मानुषी स्त्री के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। देवों का कथन नैरयिक के समान है। देवी जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से पचपन पल्योपम तक रहती है। सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से सदा उस रूप में रहते हैं।

भगवन् ! नैरयिक का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। तिर्यंग्योनिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है। तिर्यंग्योनिकी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार मनुष्य का, मानुषी स्त्री का, देव का और देवी का भी अन्तर कहना चाहिए। सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

भगवन् ! इन नैरयिकों, तिर्यग्योनिकों, तिर्यग्योनिनियों, मनुष्यों, मानुषीस्त्रियों, देवों, देवियों और सिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़ी मानुषीस्त्रियां, उनसे मनुष्य असंख्येयगुण, उनसे नैरयिक असंख्येयगुण, उनसे तिर्यग्योनिक स्त्रियां असंख्यातगुणी, उनसे देव संख्येयगुण, उनसे देवियां संख्येयगुण, उनसे सिद्ध अनन्तगुण, उनसे तिर्यग्योनिक अनन्तगुण हैं।

विवेचन—इनका विवेचन संसारसमापन्नक जीवों की सप्तविध प्रतिपत्ति नामक छठी प्रतिपत्ति में देखना चाहिए। यह अष्टविध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

सर्वजीव-नवविध-वक्तव्यता

२५६. तत्थ णं जेते एवमाहंसु णवविधा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु तं जहा—एगिंदिया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया णेरइया पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा देवा सिद्धा।

एगिंदिए णं भंते! एगिंदिएत्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। बेंदिए णं भंते! ०? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। एवं तेइंदिएवि, चउरिंदिएवि। णेरइए णं भंते! ०? जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। पंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! ०? जह० अंतो०, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं। एवं मणूसेवि। देवा जहा णेरइया। सिद्धे णं भंते! ०? साइए अपज्जवसिए।

एगिंदियस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जह० अंतो०, उक्को० दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं। बेंदियस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो। एवं तेंदियस्सवि चउरिंदियस्सवि णेरइयस्सवि पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्सवि मणूसस्सवि देवस्सवि सव्वेसिं एवं अंतरं भाणियव्वं। सिद्धस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

एएसि णं भंते! एगेंदियाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं णेरइयाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुसाणं देवाणं सिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो० ? गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा, णेरइया असंखेज्जगुणा, देवा असंखेज्जगुणा, पंचेंदियातिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेंदिया विसेसाहिया, बेंदिया विसेसाहिया, सिद्धा अणंतगुणा, एगिंदिया अणंतगुणा।

२५६. जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव नौ प्रकार के हैं, वे नौ प्रकार इस तरह बताते हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक, मनुष्य, देव और सिद्ध।

भगवन्! एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियरूप में कितने काल तक रहता है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है। द्वीन्द्रिय जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येयकाल तक रहता है। त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

भगवन्! नैरयिक, नैरयिक के रूप में कितने काल तक रहता है? गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से तेतीस सागरोपम तक रहता है। पंचेन्द्रियतिर्यंच जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है। इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी कहना चाहिए। देवों का कथन नैरयिक के समान है। सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने के सदा उसी रूप में रहते हैं।

भगवन्! एकेन्द्रिय का अन्तर कितना है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से संख्येय वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। द्वीन्द्रिय का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, पंचेन्द्रियतिर्यंच, मनुष्य और देव—सबका इतना ही अन्तर है। सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से उनका अन्तर नहीं होता है।

भगवन् ! इन एकेन्द्रियों, द्वीन्द्रियों, त्रीन्द्रियों, चतुरिन्द्रियों, नैरयिकों, तिर्यंचों, मनुष्यों, देवों और सिद्धों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े मनुष्य हैं, उनसे नैरयिक असंख्येयगुण हैं, उनसे देव असंख्येयगुण हैं, उनसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंख्येयगुण हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं और उनसे सिद्ध अनन्तगुण हैं और उनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं ।

विवेचन—सूत्रार्थ स्पष्ट ही है । इनकी भावना और युक्ति पूर्व में स्थान-स्थान पर स्पष्ट की जा चुकी है ।

२५७. अहवा णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तं जहा—पढमसमयणेरइया अपढमसमयणेरइया पढमसमयतिरिक्खजोणिया अपढमसमयतिरिक्खजोणिया पढमसमयमणुस्सा अपढमसमयमणुस्सा पढमसमयदेवा अपढमसमयदेवा सिद्धा य ।

पढमसमयणेरइया णं भंते ! कालओ० ? गोयमा ! एक्कं समयं । अपढमसमयणेरइए णं भंते ! ०? जहण्णेणं दस वाससहस्साइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समय-ऊणाइं ।

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! ० ? एक्कं समयं । अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयऊणं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

पढमसमयमणूसे णं भंते ! ० ? एक्कं समयं । अपढमसमयमणूसे णं भंते ! ० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयऊणं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं ।

देवे जहा णेरइए । सिद्धे णं भंते ! सिद्धेत्ति कालओ केवचिरं होई ? गोयमा ! साइए अपज्जवसिए ।

पढमसमयणेरइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

अपढमसमयणेरइयस्स णं भंते ! अंतरं ० ? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ० ? जहण्णेणं दो खुड्डागाइं भवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ ० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं ।

पढमसमयमणूसस्स जहा पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स । अपढमसमयमणूसस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं, समयाहियं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

पढमसमयदेवस्स जहा पढमसमयणेरइयस्स । अपढमसमयदेवस्स जहा अपढमसमयणेरइयस्स ।

सिद्धस्स णं भंते ! ० ? साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयणेरइयाणं पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं पढमसमयदेवाण य कयरे ० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा, पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा ।

एएसि णं भंते ! अपढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयमणूसाणं अपढमसमयदेवाण य कयरे ० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अपढमसमयमणूसा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयनेरइयाण य कयरे ० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयनेरइया, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयतिरिक्खजोणिया, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ।

मणुयदेव-अप्पाबहुयं जहा नेरइयाणं ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं पढमसमयदेवाणं अपढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयमणूसाणं अपढमसमयदेवाणं सिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा, अपढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा, पढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, सिद्धा अणंतगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा । सेत्तं नवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ।

२५७. अथवा सर्व जीव नौ प्रकार के हैं—

१. प्रथमसमयनैरयिक, २. अप्रथमसमयनैरयिक, ३. प्रथमसमयतिर्यंग्योनिक, ४. अप्रथमसमयतिर्यंग्योनिक, ५. प्रथमसमयमनुष्य, ६. अप्रथमसमयमनुष्य, ७. प्रथमसमयदेव, ८. अप्रथमसमयदेव और ९. सिद्ध ।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयनैरयिक के रूप में कितने समय रहता है ? गौतम ! एक समय । अप्रथमसमयनैरयिक जघन्य एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है ।

प्रथमसमयतिर्यंग्योनिक एक समय तक और अप्रथमसमयतिर्यंग्योनिक जघन्य एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण तक और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल तक । प्रथमसमयमनुष्य एक समय और अप्रथमसमयमनुष्य जघन्य समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है । देव का कथन नैरयिक के समान है ।

भगवन् ! सिद्ध, सिद्ध रूप में कितने समय रहता है ? गौतम ! सिद्ध सादि-अपर्यवसित है। सदा उसी रूप में रहता है।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयनैरयिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

प्रथमसमयतिर्यग्योनिक का अन्तर जघन्य समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है।

प्रथमसमयमनुष्य का अन्तर प्रथमसमयतिर्यंच के समान है। अप्रथमसमयमनुष्य का अन्तर समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

प्रथमसमयदेव का अन्तर प्रथमसमयनैरयिक के समान है। अप्रथमसमयदेव का अन्तर अप्रथमसमयनैरयिक के समान है।

सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

भगवन् ! इन प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयतिर्यग्योनिक, प्रथमसमयमनुष्य और प्रथमसमय-देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयमनुष्य, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्यगुण, उनसे प्रथमसमय-देव असंख्यातगुण, उनसे प्रथमसमयतिर्यग्योनिक असंख्यातगुण हैं।

भगवन् ! इन अप्रथमसमयनैरयिक, अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक, अप्रथमसमयमनुष्य और अप्रथम-समयदेवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े अप्रथमसमयमनुष्य है, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण हैं, उनसे अप्रथमसमयदेव असंख्येयगुण हैं और उनसे अप्रथमसमयतिर्यंच अनन्तगुण हैं।

भगवन् ! इन प्रथमसमयनैरयिकों और अप्रथमसमयनैरयिकों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयनैरयिक है और उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुण है।

भगवन् ! इन प्रथमसमयतिर्यंचों और अप्रथमसमयतिर्यंचों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ? गौतम ! प्रथमसमयतिर्यंच सबसे थोड़े और अप्रथमसमयतिर्यंच अनन्तगुण है।

मनुष्य और देवों का अल्पबहुत्व नैरयिकों की तरह कहना चाहिए।

भगवन् ! इन प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयतिर्यंच, प्रथमसमयमनुष्य, प्रथमसमयदेव, अप्रथमसमयनैरयिक, अप्रथमसमयतिर्यंच, अप्रथमसमयमनुष्य, अप्रथमसमयदेव और सिद्धों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयमनुष्य, उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुण, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुण, उनसे प्रथमसमयदेव असंख्यातगुण, उनसे प्रथमसमयतिर्यंच असंख्यातगुण, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुण, उनसे अप्रथमसमयदेव असंख्यातगुण, उनसे सिद्ध अनन्तगुण और उनसे अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक अनन्तगुण हैं।

इस प्रकार सर्वजीवों की नवविधप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—इनकी युक्ति और भावना पूर्व में प्रतिपादित की जा चुकी है। सर्वजीव नवविध-प्रतिपत्ति पूर्ण।

सर्वजीव-दसविध-वक्तव्यता

२५८. तत्थ णं जेते एवमाहंसु दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तें एवमाहंसु, तं जहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया अणिंदिया।

पुढविकाइया णं भंते ! पुढविकाइएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्को० असंखेज्जं कालं—असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोया। एवं आउ-तेउ-वाउकाइए।

वणस्सइकाइए णं भंते ! ० ? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्को०, वणस्सइकालो।

बेंदिए णं भंते! ०? जह० अंतो०, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। एवं तेइंदिएवि, चउरिंदिएवि। पंचिंदिए णं भंते ! ०? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं।

अणिंदिए ण भंते ! ०? साइए अपज्जवसिए।

पुढविकाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो। एवं आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स।

वणस्सइकाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ०? जा चेव पुढविकाइयस्स संचिट्ठणा, बिय-तिय-चउरिंदिया-पंचेंदियाणं एएसि चउण्हंपि अंतरं जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो।

अणिंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं आउ-तेउ-वाउ-वण-बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं अणिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेंदिया विसेसाहिया, बेंदिया विसेसाहिया, तेउकाइया असंखेज्जगुणा, पुढविकाइया विसेसाहिया, आउकाइया विसेसाहिया, वाउकाइया विसेसाहिया, अणिंदिया अणंतगुणा, वणस्सइकाइया अणंतगुणा।

२५८. जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव दस प्रकार के हैं, वे इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिक के रूप में कितने समय तक रहते हैं ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असंख्यातकाल तक, जो असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप (कालमार्गणा) से है और क्षेत्रमार्गणा से असंख्येय लोकाकाशप्रदेशों के निर्लेपकाल के तुल्य है। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक की सञ्चिट्ठणा जाननी चाहिए।

भगवन् ! वनस्पतिकायिक की संचिट्ठणा कितनी है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

भगवन् ! द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय रूप में कितने समय तक रह सकता है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रह सकता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की भी संचिट्ठणा जाननी चाहिए।

भगवन् ! पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय रूप में कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष साधिक एक हजार सागरोपम तक रह सकता है।

भगवन् ! अनिन्द्रिय, अनिन्द्रिय रूप में कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! वह सादि-अपर्यवसित होने से सदा उसी रूप में रहता है।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक का अन्तर कितना है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक का भी अन्तर जानना चाहिए। वनस्पतिकायिकों का अन्तर वही है जो पृथ्वीकायिक की संचिट्ठणा है, अर्थात् जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असंख्येय काल है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन चारों का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अनिन्द्रिय सादि-अपर्यवसित होने से उसका अन्तर नहीं है।

भगवन् ! इन पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रियों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे तेजस्कायिक असंख्यगुण हैं, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक हैं, उनसे अनिन्द्रिय अनन्तगुण हैं और उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण हैं।

विवेचन—इन सबकी युक्ति और भावना पूर्व में स्थान-स्थान पर कही गई है। अतः पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है। जिज्ञासुजन यथास्थान पर देखें।

२५९. अहवा दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—१. पढमसमयनेरइया, २. अपढमसमय-नेरइया, ३. पढमसमयतिरिक्खजोणिया, ४. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया, ५. पढमसमयमणूसा, ६. अपढमसमयमणूसा, ७. पढमसमयदेवा, ८. अपढमसमयदेवा, ९. पढमसमयसिद्धा १०. अपढमसमय-सिद्धा।

पढमसमयनेरइए णं भंते ! पढमसमयनेरइएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! एक्कं समयं।

अपढमसमयनेरइए णं भंते ! ० ? जहण्णेणं दस वाससहस्साइं समय-
सागरोवमाइं समय-ऊणाइं ।

पढमसमयतिरिक्खजोणिए णं भंते ! ० ? गोयमा ! एक्कं समयं । अपढ
णं भंते ! ० ? गोयमा ! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयऊणं, उक्कोसेणं वणस्

पढमसमयमणुस्से णं भंते ! ० ? एक्कं समयं । अपढमसमयमणुस्से० ?
गाहणं समयऊणं, उक्कोसेणं तिण्णिपलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं ।

देवे जहा णेरइए । पढमसमयसिद्धे णं भंते ! ० ? एक्कं समयं । अपढमसम
साइए अपज्जवसिए ।

पढमसमयनेरइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! ज
सहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

अपढमसमयनेरइयस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइ

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स अंतरं केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं दो खुड्
समयऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहि
सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं ।

पढमसमयमणूसस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समयऊणाइं,
वणस्सइकालो ।

अपढमसमयमणूसस्स णं भंते ! अंतरं० ? जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं,
वणस्सइकालो ।

देवस्स णं अंतरं जहा णेरइयस्स ।

पढमसमयसिद्धस्स णं भंते ! ० ? अंतरं णत्थि ।

अपढमसमयसिद्धस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! साइयस्स अप
सियस्स णत्थि अंतरं ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयणेरइयाणं पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणू
पढमसमयदेवाणं पढमसमयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा, पढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा, पढमसमयनेरइ
असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा ।

एएसि णं भंते ! अपढमसमयनेरइयाणं जाव अपढमसमयसिद्धाण य कयरे० ? गोयमा !
सव्वत्थोवा अपढमसमयमणूसा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा,
अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयनेरइयाण य कयरे० ?
पढमसमयनेरइया, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाण य कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयतिरिक्खजोणिया, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

एएसि णं भंते ! पढमसमयमणूसाणं अपढमसमयमणूसाण य कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा, अपढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा। जहा मणूसा तहा देवावि।

एएसि णं भंते ! पढमसमयसिद्धाणं अपढमसमयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा, अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा।

एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयनेरइयाणं पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं अपढमसमयमणूसाणं पढमसमयदेवाणं अपढमसमयदेवाणं पढमसमयसिद्धाणं अपढमसमयसिद्धाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा, पढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा, अपढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा, पढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

सेत्तं दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता। सेत्तं सव्वजीवाभिगमे।

इति जीवाजीवाभिगमसुत्तं सम्मत्तं।

(सूत्रे ग्रन्थाग्रम् ४७५० ।।)

२५९. अथवा सर्व जीव दस प्रकार के हैं, यथा—

१. प्रथमसमयनैरयिक, २. अप्रथमसमयनैरयिक, ३. प्रथमसमयतिर्यग्योनिक ४. अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक, ५. प्रथमसमयमनुष्य, ६. अप्रथमसमयमनुष्य, ७. प्रथमसमयदेव, ८. अप्रथमसमयदेव, ९. प्रथमसमयसिद्ध, १०. अप्रथमसमयसिद्ध।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयनैरयिक के रूप में कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! एक समय तक।

भगवन् ! अप्रथमसमयनैरयिक उसी रूप मे कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! एक समय कम दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है।

भगवन् ! प्रथमसमयतिर्यग्योनिक उसी रूप में कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! एक समय तक।

अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण तक और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल तक रहता है।

भगवन् ! प्रथमसमयमनुष्य उस रूप मे कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! एक समय तक।

अप्रथमसमयमनुष्य जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है।

देव का कथन नैरयिक की तरह है।

भगवन् ! प्रथमसमयसिद्ध उस रूप में कितने समय रहता है ?

गौतम ! एक समय तक। अप्रथमसमयसिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से सदाकाल रहता है।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक का अन्तर कितना है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयनैरयिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

भगवन् ! प्रथमसमयतिर्यग्योनिक का अन्तर कितना है ?

गौतम ! जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण है, उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है।

भगवन् ! प्रथमसमयमनुष्य का अन्तर कितना है ?

गौतम ! जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयमनुष्य का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

देव का अन्तर नैरयिक की तरह कहना चाहिए।

भगवन् ! प्रथमसमयसिद्ध का अन्तर कितना है ? प्रथमसमयसिद्ध का अन्तर नहीं है।

भगवन् ! अप्रथमसमयसिद्ध का अन्तर कितना है ? अप्रथमसमयसिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयतिर्यग्योनिक, प्रथमसमयमनुष्य, प्रथमसमयदेव और प्रथमसमयसिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयसिद्ध, उनसे प्रथमसमयमनुष्य असंख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयदेव असंख्यातगुण और उनसे प्रथमसमयतिर्यग्योनिक असंख्येयगुण हैं।

भगवन् ! इन अप्रथमसमयनैरयिक यावत् अप्रथमसमयसिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े अप्रथमसमयमनुष्य, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयदेव असंख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयसिद्ध अनन्तगुण और उनसे अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक अनन्तगुण हैं।

भगवन् ! इन प्रथमसमयनैरयिकों और अप्रथमसमयनैरयिकों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं।

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयनैरयिक हैं, उनसे असंख्यातगुण अप्रथमसमयनैरयिक हैं।

भगवन् ! इन प्रथमसमयतिर्यग्योनिकों और अप्रथमसमयतिर्यग्योनिकों में कौन किससे अल्पादि हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयतिर्यग्योनिक हैं और उनसे अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक अनन्तगुण हैं।

भगवन् ! इन प्रथमसमयमनुष्यों और अप्रथमसमयमनुष्यों में कौन किससे अल्पादि हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयमनुष्य है, उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुण हैं।

जैसा मनुष्यों के लिए कहा है, वैसा देवों के लिए भी कहना चाहिए।

भगवन् ! इन प्रथमसमयसिद्धों और अप्रथमसमयसिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयसिद्ध हैं, उनसे अप्रथमसमयसिद्ध अनन्तगुण हैं।

भगवन् ! इन प्रथमसमयनैरयिक, अप्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयतिर्यग्योनिक, अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक, प्रथमसमयमनुष्य, अप्रथमसमयमनुष्य, प्रथमसमयदेव, अप्रथमसमयदेव, प्रथमसमयसिद्ध और अप्रथमसमयसिद्ध, इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े प्रथमसमयसिद्ध हैं, उनसे प्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुण हैं, उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुण हैं, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुण हैं, उनसे प्रथमसमयदेव असंख्यातगुण हैं, उनसे प्रथमसमयतिर्यंच असंख्यातगुण हैं, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुण हैं, उनसे अप्रथमसमयदेव असंख्यातगुण हैं, उनसे अप्रथमसमयसिद्ध अनन्तगुण हैं, उनसे अप्रथमसमय तिर्यंच अनन्तगुण हैं।

इस तरह दसविध सर्वजीव-प्रतिपत्ति का और सर्वजीवाभिगम का वर्णन समाप्त हुआ।

॥ जीवाजीवाभिगमसूत्र समाप्त ॥

(सूत्र ग्रन्थाग्रम् ४७५०) ॥



अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, तं जहा—अट्ठी, मंसं, सोणित्ते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गये हैं। जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३-४.—गर्जित-विद्युत्—गर्जन और विद्युत प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. निर्घात—विना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्यायकाल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल में श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज उद्घात—वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी मांस और रुधिर—पंचेंद्रिय तिर्यंच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहां से यह वस्तुएं उठाई न जाएं जब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इसमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया , मद्रास
२. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरड़िया, बैंगलोर
५. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस. किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री कंवरलालजी बैताला, गोहाटी
८. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया मद्रास
९. श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
१०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री जे. अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१५. श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचंदजी, सागरमलजी संचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटंगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४. श्री श० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चांगाटोला
७. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
९. श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड़, मदुरान्तकम्
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K. G. F.) जाड़न
११. श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२. श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५. श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनांदगांव
१६. श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७. श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टंगला
१८. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
१९. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५. श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६. श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२७. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा डोंडीलोहारा
२८. श्री गुणचंदजी दलीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
२९. श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३०. श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१. श्री भंवरलालजी मूलचंदजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री बादलचंदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, अजमेर
३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बेंगलोर
३६. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३७. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३८. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३९. श्री घेवरचंदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४०. श्री जवरचन्दजी गेलड़ा, मद्रास
४१. श्री जड़ावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३. श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढ़ा, मद्रास
४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसा, मेड़तासिटी
२. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भंवरलालजी चोपड़ा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकड़िया, सेलम
८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९. श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
१५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
१७. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
१८. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
१९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
२०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचंदजी गोठी, जोधपुर
२१. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२. श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री जंवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५. श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
२६. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९. श्री नेमीचंदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड कं०, जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३. श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी सांड, जोधपुर
३४. श्री बच्छराजी सुराणा, जोधपुर
३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.) जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७. श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
४९. श्री भंवरलालजी नवरत्नमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१. श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
५४. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५. श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
५९. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
६०. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१. श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कलां
६२. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४. श्री भींवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा, राजनांदगांव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२. श्री गंगारामजी इन्द्रचंदजी बोहरा, कुचेरा
७३. श्री फतेहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४. श्री बालचंदजी थानचन्दजी भरट, कलकत्ता
७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६. श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८०. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
८२. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठ
८३. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७. श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३. श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी, बैंगलोर
९५. श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचंदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७. श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगांव

९८. श्री प्रकाशचंदजी जैन, नागौर
९९. श्री कुशालचंदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराजजी कोठारी, मांगलियावास
१०३. सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०४. श्री अमरचंदजी छाजेड़, पादु बड़ी
१०५. श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७. श्रीमती कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भंवरलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
१११. श्री मांगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुलीचंदजी बोकड़िया, मेड़ता सिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकुंवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमल लोढा, बम्बई
११७. श्री मांगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बैंगल
११८. श्री सांचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
११९. श्री भीखमचन्दजी माणकचन्दजी खाविया, (कुडालोर) मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकुंवर धर्मपत्नी श्री चम्पालाल संघवी, कुचेरा
१२१. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीखमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
१२५. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगड़ीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाड़ा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं., बैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़ □□